"मानस"

की रूसी

भूमिका

अनुवादक

डॉ० केसरी नारायण शुक्ल

'मानस' की (रूसी) भूमिका

[प्रोफेसर वरान्नीकोव द्वारा 'रामचरितमानस'
के रूसी रूपांतर के भूमिका-भाग का
हिंदी-अनुवाद]

मूल लेखक
स्व० श्री ए० पी० वरान्नीकोव

अनुवादक
डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, एम० ए०, डी० लिट्०
रीडर, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा

लखनऊ

पहली बार,

१९५५

मू० ३॥)

मुद्रक

नवभारत प्रेस,

लखनऊ

भूमिका

तुलसी हमारी हिन्दी के ही नहीं भारत के श्रेष्ठ कवि हैं। यही नहीं, वह विश्व के गिने-चुने महाकवियों में हैं। उनकी लोकप्रियता के बारे में कुछ कहना व्यर्थ है। हिन्दी-क्षेत्र की सीमा बतलाने के लिये यह कहना पर्याप्त है कि जहाँ-जहाँ तुलसी की रामायण और उनका पद चलता है, वही हिन्दी-क्षेत्र है। तुलसी ने सबसे पहिले हमारे देश के जन-साधारण के हृदय को जीता, जिससे स्पष्ट है कि उनकी कृतियों में लोक-साहित्य के अद्भुत गुण मौजूद हैं। आज ही नहीं, काफी पहिले से तुलसी को हमारे विद्वानों का भी सम्मान प्राप्त हुआ, और आज तो तुलसी की कीर्ति-कौमुदी विश्व के अन्य सभ्य देशों में भी फैल चुकी है। आज तुलसी "सर्वत्र पूज्यते"।

तुलसी का अध्ययन आज हरेक शिक्षित के लिये ही अनिवार्य नहीं है, बल्कि वह हरेक छात्र के अनिवार्य पठनीय है। तुलसी से परिचय प्राप्त करने के लिये अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। डाक्टर केसरीनारायण शुक्ल ने प्रो० वरान्नीकोव को कृति को हिंदी में लाकर भी वैसा करके पिष्ट-पेषण नहीं किया। उनका यह छोटा-सा ग्रंथ तुलसी और उनकी कृतियों का परिचय कराते हुए इस बात का ध्यान रखता है कि ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अपलाप न होने पाये। उन्हीं तुलसी के संबंध में गढ़े गये नाना पुराणों को इसी लिये महत्व नहीं दिया गया; वैसे विवादास्पद जंगल में सुकुमारमति छात्रों को भटकना कभी अच्छा नहीं समझा जा सकता। यदि वह ऐसे साहित्य को पढ़ना चाहेंगे, तो वह भागा नहीं जा रहा है।

डा० केसरीनारायण जी के इस अनुवाद का एक महत्व है, तुलसी को उनके काल और देश के परिपार्श्व में देखना और समझने की कोशिश करना। तुलसी अकबर से दस वर्ष बड़े और अकबर-जहाँगीर पिता-पुत्र के समय में पैदा हुए। इस समय शासकों की धर्मान्धता का वेग खतम हो चुका था, और दूसरा वैसा दौर आने में अभी पाव सदी की देर थी। तुलसी के समय अधार्मिक रावण-राज्य की कथायें भर रह गयीं थीं, ऐसे समय तुलसी का आशावादी होना स्वाभाविक था।

पुस्तक में तुलसी के जीवन में व्यर्थ के पृष्ठों को काला न करने का दूसरी तौर से उपयोग किया गया है। यहाँ संक्षेप में तुलसी की भाषा और कवि-कर्म के अतिरिक्त तुलसी को अन्य प्रकार से समझाने की कोशिश की गयी है। ऐसे ग्रंथ की बड़ी आवश्यकता थी। क्या ही अच्छा होता, यदि इसी तरह के छोटे-छोटे ग्रंथ सूर और दूसरे हिन्दी के महान् कवियों पर लिखे जायें?

२६-१-५५
दिल्ली

राहुल सांकृत्यायन

वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ स्वर्गीय प्रोफेसर वरान्नीकोव की रूसी पुस्तक के भूमिका-भाग का हिंदी रूपांतर है। प्रोफेसर वरान्नीकोव ने तुलसीदास के रामचरितमानस का रूसी पाठकों के लिए रूसी भाषा में पद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया और उसकी मुख्य विशेषताओं, भावों तथा स्थलों से परिचित कराने के लिए इस ग्रंथ की विस्तृत आलोचनात्मक भूमिका भी लिखी तथा स्थान-स्थान पर महत्वपूर्ण पाद-टिप्पणियाँ भी प्रस्तुत कीं। प्रस्तुत ग्रंथ केवल उस भूमिका-भाग का ही हिंदी रूपांतर है। रूसी विद्वान् तथा प्राच्यविद्याविद् प्रोफेसर वरान्नीकोव के तुलसी-सम्बन्धी विचारों से हिंदी-भाषी जनता को अवगत कराने के लिए ही मूल रूसी से इसका अनुवाद किया गया है। हिंदी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि के विषय में देश-विदेश के विद्वानों के क्या विचार हैं और वे किन दृष्टियों से उसका मूल्यांकन करते हैं, इसकी जानकारी हमारे लिए महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। प्रस्तुत अनुवाद इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रोफेसर वरान्नीकोव की गणना उच्चकोटि के प्राच्य-विद्याविदों में है। भारतीय विद्या-विज्ञान के लिए की गई आपकी सेवाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए १९३९ में आपको सोवियत् संघ की अकादिमी के लिए चुनकर आपको सर्वोच्च सम्मान का पद दिया गया। "अनेक सालों तक सोवियत् संघ की विज्ञान-अकादिमी की प्राच्य-इंस्टीच्यूट में आप अधिकारपूर्ण पद पर आसीन रहे। लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाओं के विज्ञान सम्बन्धी विभाग के भी अध्यक्ष थे।"

"अकदमीशियन वरान्नीकोव ने अपने वैज्ञानिक काम से सोवियत

संघ और भारत की जनता के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध को मजबूत बनाया। सोवियत सरकार ने इस कार्य की भारी सराहना की और १९४५ में उन्हें इसके लिये 'आर्डर-आफ लेनिन' से सम्मानित किया। १९४६ में आपको महान कौमी-युद्ध-सम्बन्धी वीरतापूर्ण श्रम का पदक प्रदान किया गया।"

४ सितम्बर १९५२ को आपका देहांत हो गया। आपके निधन से भारतीय विद्या-विज्ञान की बड़ी क्षति हुई है। सोवियत्-भारतीय सांस्कृतिक संबंध का बड़ा सहायक संसार से उठ गया।

अकदमीशियन बरान्नीकोव की प्रमुख देन इस बात में है कि उन्होंने भारतीय विद्याध्ययन के दृष्टिकोण को हीं बदल दिया। अक्तूबर की महान क्रांति के पहले रूस के प्राच्य-विद्याविद् अपने अध्ययन और अनुसन्धान को अधिकतर भारत के प्राचीन धर्म, दर्शन, इतिहास तथा भाषाओं तक ही सीमित रखते थे। वे भारत की आधुनिक भाषाओं, साहित्य और इतिहास की ओर बहुत कम ध्यान देते थे। आधुनिक विषयों का उनकी दृष्टि में अधिक महत्व न था। वरान्नीकोव ने "सोवियत् संघ में भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण का सूत्रपात किया—हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगाली और पंजाबी का। लेनिनग्राद ओरिएण्टल इंस्टीच्यूट और लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में आपने इन भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की और पुरानपंथी स्कूल के प्रतिनिधियों द्वारा डाली गयी बाधाओं को पार किया जो भारत-विद्या-विज्ञान का क्षेत्र मुख्य रूप से संस्कृत और भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन तक सीमित रखना चाहते थे।........कारण कि वैज्ञानिक ठोस आधार पर ही आधुनिक भारत का, उसकी संस्कृति का जिसके प्रति अक्टूबर क्रांति के बाद भारी दिलचस्पी का उदय हो गया था, उसके आधुनिक और सामाजिक इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।"

अकदमीशियन वरान्नीकोव ने आधुनिक भाषाओं के अध्ययन का

संगठन करने के साथ-साथ, इनके अध्ययन कार्य को आगे बढ़ाने के लिए पाठ्य पुस्तकों की एक माला भी प्रकाशित की। इसमें आपकी पुस्तक "हिन्दुस्तानी (उर्दू और हिंदी)" बहुत महत्वपूर्ण है। आपकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ "हिंदुस्तानी की पेचीदा क्रिया-पद्धति," "उर्दू में फारसी के तत्व", "हिंदी की समस्याएँ," और "भारतीय भाषाओं की परम्परा में ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति के तत्व" हैं।

अकदमीशियन वरान्नीकोव के जीवन के अनेक वर्ष भारतीय साहित्य की महान कृतियों के अनुवाद संपादित करने में बीते। "आप ही थे, जिन्होंने सोवियत् पाठकों को लल्लूलाल जी कृत "प्रेमसागर", साथ ही अज़ीज़ुद्दीन अहमद तथा प्रेमचन्द जी जैसे लेखकों की रचनाओं से परिचित कराया," आपके जीवन के अन्तिम वर्ष उन्नीसवीं शती के सुप्रसिद्ध भारतविद्याविद् प्रोफेसर मिनाएव की "भारतीय डायरियाँ" को प्रकाशन के लिए संपादित करने में बीते।

अकदमीशियन वरान्नीकोव की ख्याति का प्रधान आधार तुलसीदासकृत रामचरितमानस का रूसी पद्यात्मक अनुवाद है। यह अनुवाद 'द्वितीय महायुद्ध के उन वर्षों में संपादित किया गया, जब कि फासिस्त जर्मन ने रूस पर आक्रमण कर दिया। प्रोफेसर वरान्नीकोव ने शरणार्थी के रूप में कज़ाकिस्तान में जाकर इसे पूरा किया और वहाँ की कम्यूनिष्ट पार्टी की कलेक्टिव सेंट्रल कमेटी की अकेडेमी और उसके अध्यक्ष की सहायता का साभार उल्लेख किया। यह तथ्य प्रोफेसर वरान्नीकोव और सोवियत् सरकार के भारतीय जनता के प्रति प्रेम का स्पष्ट द्योतक है।

प्रोफेसर वरान्नीकोव की प्रतिभा का क्षेत्र यद्यपि अत्यन्त व्यापक था, फिर भी उसकी मूल प्रेरणा तथा उसका मुख्य संचालन उनके भारतीय जनता तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम में निहित है। भारतीय जनता और उसकी संस्कृति के प्रति उनके हृदय में बड़ा सम्मान था। रूसी जनता को भारतीय जनता, साहित्य तथा संस्कृति से

परिचित कराने के उदार तथा उदात्त उद्देश्य को कार्यान्वित करने में वे सदैव दत्तचित्त रहे। इस अनुवाद के प्राक्कथन का पहला वाक्य है—"भारत में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त करते हुए तुलसीदास ने रामायण मनोरंजन व पठन-मात्र के लिए नहीं लिखा, उनके देशवासी विजेताओं द्वारा धूलधूसरित थे, और उन्होंने अपने इस काव्य द्वारा अपने देश की रक्षा के लिए अपूर्व मौलिक मार्ग प्रदर्शन की चेष्टा की।" इस प्राक्कथन का अंतिम वाक्य है—"मुझे आशा है कि यह कृति दोनों देशों के सांस्कृतिक नैकट्य में सहायता देगी।" पहला वाक्य तुलसी और तुलसी के महत्व को प्रकट कर रहा है और अन्तिम वाक्य में लेखक का उदार मन्तव्य झलक रहा है; और यह अनुवाद सोवियत् संघ की उस महान परम्परा का परिणाम है जिससे अनुप्राणित होकर रूस के प्राच्य विद्याविद् अपने देशवाशियों को भारतीय संस्कृति से परिचित कराने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं। प्रोफेसर वरान्नीकोव इनमें अग्रगण्य हैं। "भारतीय और सोवियत् जनता को और भी ज्यादा घनिष्ठरूप में एक दूसरे के नज़दीक लाने और उनके बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान को मज़बूत बनाने में आपने बहुत भारी योग दिया था।" रामचरित-मानस का रूसी-अनुवाद इसी उदार भावना और चेतना का निदर्शन है।

अकदमीशियन वरान्नीकोव की ज्ञानगरिमा का सब आदर करते हैं, किन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन उनके ज्ञान-क्षेत्र की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनका जीवन उनके अदम्य साहस और अटूट साधना का प्रतीक है और सबसे अधिक उन सम्भावनाओं का प्रतीक है जो अक्तूबर की क्रान्ति के बाद रूसी जनता में सभी को समान रूप से प्राप्य हैं। अकदमीशियन अलेक्सेइ पेत्रोविच वरान्नीकोव का जन्म १८६० में एक बढ़ई के घर में हुआ था। "परिवार की आमदनी में सहारा देने के लिए छोटी उम्र में ही आपको खेतों में काम करना पड़ा था। लेकिन बावजूद जानतोड़ मेहनत के, ज्ञान प्राप्त करने की आपकी

आकांक्षा भरी नहीं। पहाड़ ऐसी बाधाओं को पार करते हुए और सारी मुसीबतों को सहते हुए आपने माध्यमिक स्कूल की मंजिल पार की। कीव विश्वविद्यालय में आप भर्ती हुए और १९१४ में ग्रेजुएट की डिग्री आपने प्राप्त की। इसी विश्वविद्यालय में पूर्वीय भाषाओं के इतिहास और भाषा-विज्ञान के विभाग में आपने सबसे पहले संस्कृत का अध्ययन शुरू किया, लेकिन अध्ययन के अपने प्रमुख क्षेत्र के रूप में भारतीय भाषाओं और भाषा-विज्ञान को आपने बाद में अपनाया—उस समय जब आप सन्त पीतर्सबर्ग विश्वविद्यालय में खोज-विद्यार्थी थे, १९१६ में आपने, अकदमीशियन फ० ई० श्चेरबात्स्की और स० फ० ओल्डनबर्ग के तत्वावधान में संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन शुरू किया"। १९१७ में आपने मास्टर की डिग्री प्राप्त की। "इससे भी कुछ पहले तक प्राच्य विद्याविदों के बीच भारत विद्या-विज्ञान में अपने काम के कारण इस योग्य युवक खोज-विद्यार्थी की ख्याति व्यापक रूप में फैल चुकी थी"। इस समय से लेकर अपने जीवन के अन्त तक प्रोफेसर बरान्नीकोव रूसी जनता के लिए भारतीय-संस्कृति के दूत और दुभाषिए बने रहे। *

रामचरित मानस की यह विस्तृत भूमिका बरान्नीकोव को उन पाश्चात्य विद्वानों की श्रेणी में बिठा देती है जो तुलसी की प्रतिभा से सदैव मुग्ध रहे हैं, और जिन्होंने तुलसी-साहित्य की खोज और मूल्यांकन में अपना पर्याप्त समय लगाया है। ऐसे विद्वानों में गार्सां द तासी, ग्राउज़, ग्रियर्सन, ग्रीब्ज, केई, कारपेंटर और हिल मुख्य हैं। मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति को प्रभावित करने वाले, हिंदी के इस सर्व

---

* सोवियत् भूमि नं ११, १ जून १९५३ में व० व० बालाबुशेविच के "सोवियत् भारतीय विद्या-विज्ञान को अकदमीशियन अ० प० बरान्नीकोव की देन" शीर्षक लेख के आधार पर।

श्रेष्ठ कवि के, प्रभाव और प्रभुत्व को सभी स्वीकार करते हैं। रामचरितमानस के रचनाकाल से लेकर कवि की नित्यप्रति बढ़ती हुई लोकप्रियता और उसके जनाधिकार को देखकर ही उसके ग्रंथों (विशेषतया रामचरित मानस) के गंभीर, वैज्ञानिक और सुनियोजित अध्ययन और समझने की आवश्यकता का लोगों ने अनुभव किया और वे इस कवि के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। इन अनुसंधायकों की लगन और साधना सर्वथा सराहनीय है और हमारे लिए स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है।

प्रोफेसर वरान्नीकोव का महत्त्व इन पूर्वोक्त विद्वानों से किसी प्रकार कम नहीं है। ग्रियर्सन को छोड़कर दूसरों ने इतने विस्तार से विचार नहीं किया है और यद्यपि ग्राउज और हिल ने रामचरितमानस की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं फिर भी उनमें इस रूसी भूमिका की सर्वांगीणता नहीं है।

रामचरितमानस का यह रूसी पद्यानुवाद एक विशाल ग्रन्थ है। ग्रन्थ की विशालता के अनुरूप ही अनुवादक ने इसमें शताधिक पृष्ठों की विस्तृत विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी जोड़ दी है जिसमें अनेक दृष्टियों से तुलसीदास और रामचरितमानस पर विचार किया गया है। भूमिका के अध्याय ये हैं—'तुलसीदास का युग', 'तुलसीदास और उनकी कारयित्री प्रतिभा', 'तुलसीदास के रामायण की प्रबंधात्मकता' 'तुलसीदास की कविता का विशिष्ट स्वरूप', 'तुलसीदास के दार्शनिक विचार', 'तुलसीदास के धार्मिक विचार', 'तुलसीदास के सामाजिक एवं नैतिक कथन', 'ऐतिहासिक महान-ग्रंथ के रूप में रामायण' और 'अनुवाद के स्वरूप के विषय में। इन अध्यायों के शीर्षक से ही लेखक की व्यापक और सर्वांगीण मनोदृष्टि की झलक मिल जाती है। रामचरितमानस पर विचार करते हुए लेखक ने युग-संस्कृति, भावपक्ष, कलापक्ष, भाषा-शैली, सभी पर गंभीर विचार व्यक्त किए हैं और कोई महत्वपूर्ण पक्ष छूटने नहीं पाया है।

'तुलसीदास का युग' अध्याय में लेखक ने देश के राजनीतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संकट और सामाजिक-अस्तव्यस्तता का संकेत किया है। तुलसीदास के आविर्भाव-काल की परिस्थितियों का चित्रण करता हुआ वह स्पष्ट रूप से कहता है कि राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमानों के आधिपत्य-स्थापन के बीच देश पर लूटपाट, हिंसा, भूख-ज्वाला का प्रवाह फैल गया। युद्ध और आक्रमण के बीच ऐसी स्थिति-अनिवार्य ही होती है। वरान्नीकोव ने मुसलमान-शासन का जो ऐतिहासिक संक्षेप प्रस्तुत किया है, वह इसे स्पष्ट कर देता है। उसका यह कथन युक्तियुक्त ही है, "इसका (मुगल साम्राज्य का) प्रसार भी युद्ध संबंधी जुल्मों, लूटमार, हिंसा, शहरों और गाँवों के नाश और त्रासकारी भूख की ज्वाला और अत्याचार से समन्वित था।........ऐसे त्रासकारी वर्षों में तुलसीदास का शैशव और युवाकाल व्यतीत हुआ। उनका जन्म १५३२ ई० में हुआ और मुगल वंश के सबसे बड़े सम्राट अकबर से वे केवल दस साल बड़े थे।

विदेशी एवं विधर्मी राज्यसत्ता के युद्धकालीन वर्षों के बीच जो अव्यवस्था, अशांति एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक अनैतिकता, अस्त-व्यस्तता और छिन्न-भिन्नता फैल जाती है, उसका स्वयं कवि ने कई जगह प्रकट तथा अप्रकट रूप से संकेत दिया है। रामचरितमानस में राक्षसों के अत्याचार में इसी लूट-पाट, अग्निकांड तथा हत्या आदि का संकेत है। उत्तरकांड में कलियुग-वर्णन में भी देश-व्यापी सर्वांगीण दुर्दशा का उल्लेख है। वह स्पष्ट कहता है कि 'नृप पापपरायन धर्म नहीं, करि दंड विडंब प्रजा नितहीं' और 'भूप प्रजासन' हैं। कलिकाल में बारम्बार अकाल पड़ता है और लोग अन्न के बिना मर रहे हैं--- 'कलि बारहिं बार दुकाल परै, बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' और लोग 'धनहीन दुखी' हैं। तुलसी के समय में भयानक अकाल पड़े थे जिनका उल्लेख इतिहासकारों ने किया है। इस भूख और अव्यवस्था का उल्लेख तुलसी के अन्य ग्रंथों में भी मिलता है। कवितावली में

भी कवि राजा की क्रूरता और राज-समाज के छल का उल्लेख करता है—'काल कराल, नृपाल कृपाल न, राज-समाज बड़ोई छली है।' कवितावली में कवि ने देश-व्यापी दुर्व्यवस्था का पर्याप्त वर्णन किया है—

'दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख,
दुरित दुराज, सुख सुकृति सकोचु है।'*

भूख, बेकारी और हाहाकार का इससे स्पष्ट चित्र कौन हो सकता है। लोगों की समझ में नहीं आता है कि कहाँ जायें और क्या करें। अपने उद्योग-धन्धों से वंचित होकर सब लोग जीविका-विहीन होकर दुःख पा रहे हैं और—

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को न वनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई का करी।'' +

राज्य-सत्ता में उथल-पुथल होने पर जो अव्यवस्था और अनैतिकता फैलती है उसका प्रभाव राजनीति के क्षेत्र के अतिरिक्त समाज के अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता है। सबसे पहले तो समाज के मूल्य ही बदल जाते हैं और अवसरवादी तथा वंचकों की बन आती है। जो दूसरों का धन हड़प सके वही सयाना है, जो झूठ बोल सके वही गुण-वान है, जो दूसरों का नुकसान कर सके वही गौरवशाली है। इन्हीं लोगों को लक्षित कर तुलसीदास कहते हैं—

"सोई सयान जो परधन हारी।"×

---

* कवितावली, संपादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २५७।

+" वही, पृ० २४६

×वही पृ० २४६

"जो कह झूठ मसखरी जाना, कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।"
"जे अपकारीचार तिन्ह कर गौरव मान्य बहु।"

इसी प्रकार कवितावली में कवि कहता है कि पापियों की मनमानी है और अच्छे मनुष्य बुरे फल पा रहे हैं और ऐसा समय आ गया है कि नीच उदार और सज्जन को गाली देते हैं। सारा काम उल्टा हो रहा है :—

"भांगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है।"

तथा—

"बंबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है॥"*

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए वरान्निकोव ने राजनीतिक उथल-पुथल और अशांति के साथ उस दूसरी अशांति तथा अव्यवस्था को भी लक्षित किया है जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक थी और जो देश के अपने विशिष्ट स्वरूप की रक्षा के लिए कम महत्त्वपूर्ण न थी। भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था उन नए पंथों के सृजन से अस्तव्यस्त और शिथिल हो रही थी जो इस्लामी संस्कृति के प्रभाव-स्वरूप उद्भूत हुए थे। वस्तुस्थिति का संक्षेप किंतु सारगर्भित कथन करते हुए लेखक का यह उदार मत युक्तियुक्त है कि "हिंदू-समाज ने अपने को दो संकटों के बीच पाया, एक ओर से असह्य-अत्याचार......जो मुसलमान शासकों की ओर से पाँच शताब्दियों से अधिक धारा के रूप में प्रवाहित हो रहा था........दूसरी

---

* कवितावली—सम्पादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ २४९।

और मुस्लिम प्रभाव से महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रसूत धर्म की अंतर्विरोधी शाखाओं (Heresy) से उत्पन्न हिंदू-समाज के इस आंतरिक संकट के लेखक ने रामचरितमानस से पर्याप्त उदाहरण दिए हैं। यहाँ उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर केवल इतना ही कह देना आवश्यक है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था के विरोधी 'पंथों' द्वारा उद्भूत सामाजिक अस्तव्यस्तता का उल्लेख कवि ने रामचरितमानस के साथ-साथ अन्य ग्रंथों में भी किया है। इससे संकट की गम्भीरता और कवि की व्याकुलता, दोनों का पता चल जाता है। तत्कालीन अवस्था को लक्षित करते हुए कवि स्पष्ट कहता है कि— "वर्न-बिभाग न आस्रम धर्म दुनी दुख दोष दरिद्रदली है।" इसी भाव को कवि ने कवितावली में कई स्थानों पर पल्लवित किया है। कवितावली की निम्न-लिखित पंक्तियाँ सामाजिक-अव्यवस्था को बड़े स्पष्ट ढंग से सामने प्रस्तुत करती हैं—

"बरन धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनों परो सो है।
करम उपासना कुवासना बिनास्यो, ज्ञान,
बचन, बिराग बेष, जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो कलि ही छरो सो है।" +

हिन्दू-धर्म और समाज पर इस्लाम का जो सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा है, उसका लेखक ने काफ़ी विस्तार से वैष्णवता तथा अन्य 'पंथों' के विकास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। इसी सम्बन्ध में उसने तुलसी की भाषा पर अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है। लेखक के मतानुसार इस्लामी संस्कृति का प्रभाव इस रूप में भी दिखायी पड़ता है कि "तुलसीदास ने राम के

+ कवितावली—सम्पादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ २५८।

विरोधी के युद्धशस्त्रों का वर्णन करते हुए प्राय: फारसी की शब्दावली को उद्धृत किया (या उधार लिया) है,"""""उनकी प्राचीन समृद्ध भारतीय भाषा में ऐसे शब्द न मिल सके जो अत्यधिक शक्ति और शक्ति के वाहक को अभिव्यक्ति दे सकते।" इसी प्रकार तुलसीदास दशरथ या राम की राजसभा का वर्णन करते हुए उसे 'दरबार' कहते हैं। कवि परब्रह्म के अवतार राम को अरबी के शब्द 'साहब' से अभिहित करते हैं।

लेखक के भाषा-सम्बन्धी ये निष्कर्ष विचारणीय हैं। भारत और अरब (या इस्लामी दुनिया) के व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध काफी प्रचलित हैं। वे मुसलमानी आक्रमणों से प्राचीन हैं। ऐसे संपर्क के बीच शब्दों का स्वच्छन्द विनिमय भी सहज और स्वाभाविक हो जाता है और वे एक दूसरे की भाषा में घुल-मिलकर उस भाषा की सहज सम्पत्ति बन जाते हैं। जनता उनका स्वाभाविक रूप से निस्संकोच प्रयोग करने लगती है और इस प्रकार उन विदेशी शब्दों का 'विदेशीपन' छूट जाता है (उनकी रूपाकृति और उच्चारण भाषा के अनुरूप हो जाते हैं) और 'शब्द-परिवार' में पर्यायों के बीच उनमें कोई विशेष भेद-भाव नहीं रह जाता। जिस प्रकार जनता उन शब्दों को अपना लेती है उसी प्रकार उसका भाव-जगत या साहित्य भी उनको ग्रहण कर लेता है। धन-दौलत, हर-एक, शादी-ब्याह आदि अनेक पर्याय-युग्म उस युग के सांस्कृतिक संपर्क के मेल-जोल की कथा कह रहे हैं।"

तुलसीदास कवि ही नहीं सर्वश्रेष्ठ कवि थे। वे भाषा की आवश्यकता और शब्दों की आत्मा को पहचानते थे, अपने काव्य को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए वे जहाँ जिस शब्द को ठीक समझते थे वहाँ उसका प्रयोग करते थे और उन शब्दों में देशी या विदेशी का कोई भेद-भाव नहीं रखते थे। उनके लिए कोई शब्द 'अछूत' या 'हराम' न था। संस्कृत को छोड़कर 'भाषा' में अपना

काव्य लिखने पर जब काशी के पण्डितों ने उनकी आलोचना की तो उन्होंने संस्कृत की रेशम या शाल और भाषा की कम्बल से समता देते हुए भी भाषा का पक्ष प्रतिपादित किया क्योंकि वही 'काम आती' है—

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरो का लै करिअ कुमाच ॥*

जो 'काम आवे', जिससे सच्ची संवेदना या प्रेम अभिव्यक्त हो सके, वही भाषा सफल है और उसी का प्रयोग सार्थक है। कवि की दृष्टि भाषा में पाए जाने वाले शब्दों की जात-पाँत नहीं देखती, । वैष्णव कवि जिस प्रकार देवताओं में द्वेष रखने को पाप समझता था उसी प्रकार शब्दों में भेदभाव करना उसके अनुरूप न था। यदि महान पापी राम-नाम के सम्बन्ध से पवित्र हो सकते हैं और स्वयं उसका काव्य राम के नाम के संसर्ग से उसी प्रकार चमक सकता है जिस प्रकार कि 'सिअनि सोहावनि टाट पटोरे' तो ये विदेशी शब्द जो इतने दिनों के निवास से देशी बन गए थे वे भी राम-नाम के साहचर्य से सार्थक और दोषहीन बन सकते थे।

किन्तु साहित्यिक तथ्य को धार्मिक कथन द्वारा पुष्ट करना मेरा उद्देश्य नहीं है और न यह पर्याप्त ही होगा और न समीचीन। मेरा यही कहना है कि 'दरबार', 'साहब' तथा इसी प्रकार के अन्य विदेशी शब्दों के पर्यायों का हिन्दी-भाषा में अभाव नहीं है और न इस देश का जीवन ही मुसलमानों के आधिपत्य के पहले इन शब्दों के द्योतक वस्तु या भावों से अपरिचित या अनभिज्ञ था। स्वयं रामचरितमानस में कवि ने दरबार के साथ साथ 'राज सभा' सभा का भी दरबार-भाव में प्रयोग किया है। कवि ने तो दरबार के ही संदर्भ में 'राज सभा'

---

* दोहावली—गीता प्रेस, पृ० ३१३, दोहा ५७२।

'सभा दरबार' शब्द का प्रयोग किया है।* इसी प्रकार 'साहिब' के लिए 'प्रभु' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने अनेक पर्यायों का (जिसमें विदेशी शब्द भी हैं) प्रयोग अनेकरूपता के संचार और जी उबानेवाली एकरसता से बचाव के लिये किया है। इसलिए ऐसा कहना युक्तियुक्त न होगा कि तुलसीदास ने इन विदेशी शब्दों का प्रयोग इसीलिये किया कि हिन्दी भाषा में उनके समानार्थी शब्दों का अभाव था।

---

* (१) निम्नलिखित अवतरण में राज-सभा का दरबार के रूप में वर्णन है जहाँ अन्य नृपति महाराज दशरथ की ओर संभ्रम-से देख रहे हैं :—

"एक समय सब सहित समाजा, राज सभा रघुराज बिराजा।
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे, लोकप करहिं प्रीति रुख राखै॥

(अयो० १, ५, चौ०, पृष्ठ ४९)

(२) राज सभा के इस वर्णन में सचिव, मान्य, महाजन सभी उपस्थित हैं :—

"सुदिन सोधि मुनिवर तब आये, सचिव महाजन सकल बोलाये।
बैठे राज सभा सब जाई, पठये बालि भरत दोउ भाई।

(अयो० चौ० ६३, पृष्ठ ४९६)

(३) सभा के इस वर्णन में रावण मंत्रियों से परामर्श कर रहा है :—

"नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई, सभा बहोरि बैठ सो जाई।
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा, करब कवन विधि रिपु सैं जूझा।
कहहिं सचिव सुन निसिचर नाहा, बार-बार प्रभु पूछउ काहा।

(लंका ३, ४, पु० ८१५)

इसी प्रकार राम के विरोधी के युद्ध-शस्त्रों के वर्णन में फारसी शब्दावली का प्रयोग भी इस मात्रा में नहीं है जो हिन्दी भाषा के अभाव को व्यक्त करता हो। तुलसीदास ने शस्त्रों के जो नाम गिनाये हैं उनमें अधिकांश भारतीय हैं और फारसी समन्वित नाम बहुत कम हैं (गोला आदि कतिपय को छोड़कर) + इसलिये यह कहना कि 'उनकी (तुलसीदास की) प्राचीन समृद्ध भारतीय भाषा में ऐसे शब्द न मिल सके

---

(४) प्रस्तुत वर्णन में अंगद रावण के दरबार में जा रहा है, उसके आने की खबर पाकर रावण उसे दरबार में बुलाता है। "सभासद", 'सभा-दरबार' शब्द दृष्टव्य हैं :—

"गयउ सभा दरबार तब, सुमिरि रामपद कंज।
सिंह ठवनि इतउत चितव, धीर-बीर बल पुंज॥
तुरित निसाचर एक पठावा, समाचार रावनहिं जनावा।
सुनत बिहँस बोला दस सीसा, आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥
गयउ सभा मन नेकु न मुरा, बालि तनय अति बल बाँकुरा।
उठे सभासद कपि कहुँ देखी, रावन उर भर क्रोध बिसेखी॥
जथा मत्त गज जूथ महँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सँभारि उर बैठि सभा सिरु नाई॥

(लंका पृ० ८२६-८२७)

(५) निम्नलिखित वर्णन में रावण सभा में जाकर सिंहासन पर बैठता है :—

नारि वचन सुनि बिसिख समाना, सभा गयउ उठि होत बिहाना।
बैठि जाइ सिंहासन फूली, अति अभिमान त्रास सब भूली॥

(लंका पृ० ८२७)

+शस्त्रों का वर्णन :—

(१) "बिगत बिषाद निषाद पति, सबहिं बढ़ाइ उछाहु।
सुमिर राम मागेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥

जो अत्यधिक शक्ति और शक्ति के वाहक को अभिव्यक्ति दे सकते', वस्तुस्थिति के पूर्णतया अनुरूप नहीं है। भारतीय भाषा में शक्ति, वैभव और प्रभुत्व के द्योतक शब्दों की कमी नहीं है।

भाथा बांधि चढ़ाइन्ह धनुहीं ॥
अँगरी पहिरि कुंडि सिर धरहीं, फरसा बाँस सेल सम करहीं।
एक कुसल अति ओड़न खांड़े, कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े।

(अयो० पृष्ठ ५१५-५१६)

(२) सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसुधरा।
छांड़े विपुल नाराच लगे कटन त्रिकट पिसाच"

(अरण्य, ६१६-६१७)

(३) निसिचर सिखर समूह ढहावहिं,
कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं,"
"धरि कुधर खंड प्रचंड मरकट भालु गढ़ पर डारहीं।

(लंका. पृ० ८५१)

"बहु आयुध धरि सुभट सब, भिरहिं प्रचारि प्रचार।
कीन्हें व्याकुल भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्ह मार ॥"

(लंका. पृष्ठ ८५२)

"पुनि कृपालु हँसि चाप चढ़ावा, पावक सायक सपदि चलावा

(लंका. पृष्ठ ८५६)

"ढहे महीधर सिखर कोटिन्ह, बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत, जनु प्रलय के बादले।"

(लंका. पृष्ठ ८५९)

"भूधर नख विटपायुध धारी, चापे कपि जय राम पुकारी।'
"मुठिकन्ह लातन्ह दातन्हकाटहिं,कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।'
"वीरघातिनी छाँड़ेसि सांगी, तेज पुंज लछिमन उर लागी ॥"

(लंका. ८६२-६३)

लेखक का यह अध्याय कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से समन्वित तुलसीकालीन सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थिति का इतना स्पष्ट, सत्य और विस्तृत विवेचन इने-गिने ग्रंथों में ही मिलेगा।

दूसरा अध्याय 'तुलसीदास और उनकी कारयित्री प्रतिभा' है। इसमें लेखक ने अध्ययन के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री के अभाव का संकेत देकर तुलसीदास के जीवन और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया है। ऐतिहासिक सामग्री का अभाव तुलसीदास के सभी अध्येताओं को खटका है। तुलसीदास के संबंध में अभी तक जो कुछ अनुसंधान और खोज का कार्य हुआ है वह तुलसी के जीवन के संबंध में कोई ठोस सामग्री नहीं दे सका है। विद्वानों को अनुश्रुतियों पर ही

"सक्ति सूल तरवारि कृपाना, अस्त्र सस्त्र, कुलिसायुध नाना।
डारइ परसु परिघ पाषाना, लागेउ वृष्टिकरइ वहु बाना॥
(लंका. ८८४)

"प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा"
(लंका. पृष्ठ ८८८)

"नाना कार सिलीमुख धाये,
अनलबान छाँड़ेउ रघुवीरा।
छांड़ेसि तीव्र सक्ति खिसिआई,
"भये कुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥"
(लंका. पृष्ठ ९०७)

"उर मांझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परे॥"
(लंका. पृ० ९११)

"गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म सक्ति विराजते॥"
(उत्तर. पृ० ९६९)

सन्तोष करना पड़ रहा है, और तुलसी की रचनाओं में जो दो चार अत्यन्त संक्षिप्त आत्मकथन इधर उधर छिपे और बिखरे मिले हैं उन्हीं के आधार पर जनश्रुतियों से उनका संबंध जोड़कर अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत करना पड़ रहा है।* इसी प्रकार तुलसी की कृतियों

---

* (१) शैवों द्वारा किए गये दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में:—

"गाँव वसत वामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
आधि भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहैं, सठसाहिब सिहोरे॥"

—(वि० प० पृष्ठ ७४ छंद संख्या ८)

(२) गंगातीर पर निवास:—

"तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका॥"

—(वि० प० पृ० ६० छं १७)

(३) तुलसीदास पर आए हुए किसी संकट का संकेत:—

"ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहब कहूँ न राम से, तोसे न उसीले॥
तेरे देखत सिंह के सिसु मेढ़क लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुन गन कीले॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले।"

—(वि० प० पृ० ११६ छं ३८)

(४) आत्मपरक कथन (नाम राम बोला, मधुकरी वृत्ति, विपन्नता, गुरुशरण तथा रामभक्ति):—

"राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।

रोटी लूगा नीके राखै, आगे हू की बेद भाखै,
भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं।
बूझ्यो ज्योंही, कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू,
मेरो कोऊ नाहिं, चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं॥

—(वि० प० पृ० २२१ छं० ७२)

(५) राम नाम के प्रताप से तुलसी का समादर। मातापिता द्वारा परित्यागः—

"जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।
फिर्‌यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे,
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे॥

—(वि० प० पृ० ५१६ छं २२७)

(६) रोग जर्जरितः—

"रोगबस तनु, कुमनोरथ मलित मन,
पर अपवाद मिथ्यावाद बानी हई।"

—(वि० प० ५७४ छं० २५२)

(७) चित्रकूट यात्राः—

"अगनित गिरि कानन फिर्‌यो, बिनु आगि जर्‌यो हौं।
चित्रकूट गये हौं लखी कलि की कुचालि सब,
अब अपडरनि डर्‌यो हौं। (वि० प० छं० ३ पृ० २६६)

(८) वृद्धावस्था या अंतिम समय—

"जो चितवनि सौंधी लगै चितइये सबेरे।

तुलसीदास अपनाइये, कीजै न ढील,
अब जीवन अवधि-अति नेरे।

—(वि० प० ६१८ छं २७३)

(९) आत्मपरक कथनदीन दयनीय दशा, माता-पिता द्वारा त्याग,

"द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष,
दलन छम कियो न संभाषन काहूँ।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।
काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही।
अभाग मासों सकुचत छुइ सब छाहूँ।
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ।"

—(वि० प० ६२१ छं २७५)

(१०) कष्टमय जीवनः—

"कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो।
राम! रावरे बिन भये जन जनमि जनमि,
जग दुख दसहूँ दिसि पायो।
आस बिवस खास दास ह्वै नीच प्रभुति जनायो।
हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार,
परी न छार मुँह बायो।
असन वसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि,
खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो॥"

—(वि० प० पृ० ६२३, छं २७६)

(११) सूकर खेत में कथा-श्रवणः—

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब-अति रहेउँ अचेत ॥
(मानस)

(११ अ) मानस का प्रारंभ—
संवत सोरह सै इकतीसा, करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा, अवध पुरी यह चरित प्रकाशा ॥"

(१२) गुरू का नाम नरहरिदास:—
'बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुञ्ज जासु बचन रविकर निकर ॥"
(मानस)

(१३) महामारी का वर्णन (१६१८ ई० से ८ वर्ष तक आगरे में)
"शंकर सहर नर नारि वारिचर गर,
विकल सकल महामारी माया भई है।
उछरत, उतरात, हहरात मरिजात,
भभरि भगात जल थल मीचु भई है॥
देवन दयालु महिपालु न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।"
(कवितावली)

(१४) माता-पिता द्वारा परित्याग:—
"मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर-भाजन, कादर कूकर टूकन लागि ललाई।"
(क० पृ० २२८, छं० ५७)

(१५) मधुकरी वृत्ति: –
"जाति के सुजाति के, कुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सबके, बिछित बात दुनी सो।"
(क० पृ० २३९ छं. ७२)

(१६) जन्म तथा कष्टः—

"जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारिफल चारि ही चनक को॥"
(क० २४०, छं. ७३)

(१७) किसी गहरे संकट का टलना (परम्परानुसार डाकुओं का आक्रमण विफल):—

"धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आइ मीचु मिटति जपत रामनाम को॥"
(क. २४३, छं. ७५)

(१८) निरवलंबता तथा राम-भक्ति तुलसी का स्वभावः—

"भाइ को भरोसो न खरो सो बैर बैरी हूँ सो,
बल आपनो न, हितू जननी न जनको।
राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु, तुलसी के मन को॥"
(क. पृ. २४३, छं. ७७)

(१८ अ) सम्मान की प्राप्तिः—

"छार ते सँवार कै पहार हू तें भारो कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ के।
हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कैकै,
पेट भरों राम रावरोई गुन गाइकै॥"

(१९) राम बोला नामः—

"साहिब सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो,
राम बोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को॥'
(क २५९, छं. १००)

(२०) गंगातट का निवासः—

"भागीरथी जल पान करौं, अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।"

(क. २६०, छं. १०२)

(२१) आत्मपरक कथन (स्वतंत्र स्वभाव)

"धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ,
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहबे, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ,
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहौ कछु ओऊ
मांगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैंबे को एक न दैबै को दोऊ ॥"

(क. २६३ छं. १०६)

(२२) आत्मपरक कथन (किसी के भरोसे नहीं):—

मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
साधु कै असाधु, कै भलो, कै पोच, सोचकहा,
का काहू के द्वार परो ? जो हौं सो हौं राम को ॥"

(क. पृ. २६३, छं. १०७)

(२३) तुलसी के अयोध्या में जन्म लेने का आधारः—

राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घर जायऊ है घर को।"

(क. पृ. २७४, छं. १२२)

(४) वैरागियों का वेष :—

'वेष विराग को, राग भरो मनु, माय !
कहौं सति भाव हौं तो सों।"

(पृ० २८४ छं० १३७)

(२५) काशी के शैवों द्वारा दुर्व्यवहार :—

"देवसरि सेवौं वामदेव गाँव रावरे ही,
नाम राम ही के मांगि उदर भरत हौं।

दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोचन करत हौं।
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं,
काल कला कासीनाथ कहे निबरत हौं॥"
(क० पृ० ३०४, छं० १६५)

(२६) काशी का निवास, शारीरिक (प्लेग) पीड़ा—
"चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर।
पाइ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं
अधिभूत - वेदन विषम होत भूतनाथ!
'तुलसी' विकल, पाहि पचत कुपरि हौं।
मारिए तो अनायास कासी बास ास फल,
ज्याइये तो कृपा करि निरुज सरीर हौं।"
(क० ३०५ छं० १६६)

(२७) रोग का प्रकोप :—
जीबे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहि,
मालुम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं।
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइए तो जानकी रमन-जन जानि जिय,
मारिए तो माँगी मोचु सूधियै कहतु हौं।"
(क० ३०६ छ० १६७)

(२८) काशी में अत्याचार पर तुलसी की उक्ति—
"मारग मारी, महीसुर मार, कुमारग कोटिक कैधन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारी कै हीयो

कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ-अधार कै आपनो कीयो ,
आजु की काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चारि दिवारी को दीयो'
(क० २१५ छं० १७९)

(२९) काशी की कदर्थना पर कवि का उद्गार:—

"हा हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम ! ऐसी ,
कासी की कदर्थना कराल कलि काल की ।"
(क० ३१७ छं० १८८)

(३०) महामारी की शांति :—

"संकर सरोष महामारि ही तें जानियत ,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदो ।
तुलसी सभीत पाल सुमिरे कृपालु राम ,
समय सकला सराहि सनकारि दी ॥"
(क० पृ० ३१८ छं० १८३)

हनुमान बाहुक में तुलसी की बाहुपीड़ा का उल्लेख :—

(क) साहसी समीर के दुलारे रघुवीर जी के ।
बाँहपीर महाबीर बेगही निवारिये ।
(ख) बाहु तरु मूल बसाहु सूल कपि कछु बेलि ।
उपजी सकेलि कपि केलि ही उपारिये ।
(ग) आन हनुमान की दोहाई बलवान की ।
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की ॥
(घ) आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें ।
बढ़ी है बाँह बेदन सही न कही जाति है ॥
(ङ) "पाय पीर पेट पीर बाँह पीर मुँह पीर,
ज्वराजूर सकल सरीर पीरभई है ।"
(च) "भारी पीर दुसह शरीर तें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु दूरि सकै करि को ।"

की संख्या और उनके परिमाण के निर्धारण का आधार भी परम्परा और जनश्रुति ही है।+

(छ) रोग से एक बार निवृत्तिः--

"घेरि लियो रोगनि कुयोगनि कुलोगनि ज्यों
बासर सजल घन घटा धुकि धाई है।
बरखत बारि पीर जारिये जवास ज्यों
सरोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है।
करुना निधान हनुमान महा बलवान हेरि
हँसि हाँकि फौज फूँकि ते उड़ाई है।
खाये हुति तुलसी कुरोग राँड राकसिनि
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।"

अन्त समय क्षेमकरी का दर्शनः—

"पेखु सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है।"
(क० ३१६ छं० १८०)

तुलसीदास जी का अन्तिम दोहाः—

"राम नाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सोन॥"

+ 'मानस' का संपादन करते हुए काशी हिंदू विश्व विद्यालय के प्रोफेसर पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र को तुलसी-सम्बन्धी कुछ साहित्य प्राप्त हुआ है जिसमें तुलसीदास के संबन्ध में कतिपय महत्त्व-पूर्ण तथ्यों का उल्लेख है।

इस सम्बन्ध की दो पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो 'प्रेमरामायण' है और दूसरी 'गौतम चंद्रिका' है। 'प्रेमरामायण' रामचरित मानस का संस्कृत रूपांतर है जिसे तुलसीदास के शिष्य रामू द्विवेदी या 'रामू' ने प्रस्तुत किया है। इसमें रामू ने तुलसीदास की वंदना करते

हुए बताया है कि उनके शरीर का वर्ण गौर है और (राम के स्थान पर) 'रा' के श्रवणमात्र से ही उन्हें रोमांच हो जाता है। उनके हृदय पर तुलसी की मोटी गुरियों की माला है।

वे बार बार 'भरत भे ठाढ़े' (गीतावली का 'भरत भए ठाढ़े कर जोरि') इस पद को गम्भीर स्वर में गाते हैं। प्रस्तुत छंद इस प्रकार है:—

"गौरं 'रा' पद मात्र संश्रवणतोऽप्युद्भूतरोमांकुर
वक्षः श्री तुलसी प्ररूढ़ गुटिका मालं पटी शालिनम्
वारंवारमिदं पदं 'भरतु भे ठाढ़े' तिगाढ़ं स्वरं
गायन्तं नर रूपिणं कमपितं वंदेऽनवद्ये हितम्

इसमें तुलसी की रूपाकृति तथा स्वभाव का संक्षिप्त संकेत है। तुलसी की दृष्टि में भरत आदर्श भक्त हैं। इसी से गीतावली के उक्त पद के भरत-कथन का तुलसी द्वारा बार बार गाया जाना उनकी रुचि तथा स्वभाव के अनुकूल ही पड़ता है। इसकी हिंदी मिश्रित शैली भी दर्शनीय है। इसी शैली में तुलसी की वंदना करता हुआ 'रामू' का कथन है कि तुलसी के प्रसाद से ही मूक रामू कवि हो गया। वह यह भी कहता है कि प्रस्तुत टीका उसके द्वारा की गयी है। यह अच्छी है, फिर भी जो हृदय के कुटिल हैं उनके लिए यह अत्यन्त फीकी है:—

"वंदे श्री तुलसीदासं निवासं जानकीपतेः।
यत्प्रसादेन रामू को मूकोऽपि कवितांगतः॥
प्रेम रामायणस्यैषा टीका नीका मया कृता।
नीरसस्य परं फीका यो हीका कुटिलः सदा॥"

दूसरे ग्रंथ 'गीतम चंद्रिका' में तुलसी के संबंध में अधिक विस्तार से लिखा गया है। इसके रचयिता कृष्णदत्त कसिवार हैं और उनके गुरु का नाम आनन्द कानन ब्रह्मचारी है।

इसके अनुसार तुलसी का जन्मसंवत् १६०० वि० ठहरता है।

तुलसी के निधन का संवत् १६८० तो प्रसिद्ध ही है—

संवत् सोरह स असी, असी गङ्ग के तीर ।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

परम्परा इस दोहा को स्वीकार करती आयी है । कतिपय ग्रंथों में "असी गंग के तीर' के स्थान पर 'असी बयस के तीर' भी मिलता है । इस प्रकार इस दोहे का पूर्वार्ध इस रूप में भी प्राप्त है, 'संवत् सोरह सै असी, असी बरस के तीर।' इसके अनुसार निधन के समय तुलसी की अवस्था अस्सी वर्ष की थी अर्थात् सं१६००में उनका जन्म हुआ था। 'गौतम चंद्रिका' में निधन के संबंध में दिया गया दोहा भी उनकी आयु अस्सी वर्ष की बताता है । इस सम्बन्ध में जो विवरण मिलता है उसके अनुसार कदाचित उनका शव गंगा में प्रवाहित किया गया जो इस देश की परम्परा के अनुरूप ही है । निधन का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:—

"सोरह अनु गुन असी वय, तुलसी सहित हुलास ।
राम राम करि बिदा ह्वै, असी गङ्ग के वास ॥"

'प्रवाह के सम्बन्ध का निम्नलिखित दोहा काव्यत्व तथा भावुकता से परिपूर्ण है:—

"राम कृपा हुलसी जनित, तुलसी बिरवा सोय।
लै हलरावति सुर धुनी, जल अञ्चल मैं गोय ॥"

इस दोहे में 'हुलसी जनित' दृष्टव्य है, इससे हुलसी का तुलसी की माता होने की जनश्रुति को समर्थन प्राप्त होता है ।

इसमें तुलसी के ग्रंथों का भी विवरण मिलता है । लेखक ने कवि के आठ ग्रंथों का उल्लेख अष्टांगयोग के नाम से किया है । 'अष्टांगयोग' का विवरण इस प्रकार है :—

"राम गीत अवली सुर सरिता, पद अवली बानी धुनि भरिता ।
कृष्न गीत अवली जमुनोई, श्रुति गुन कांड त्रिबेनी सोई ।
राम चरित मानस रस बरसै, भव दुख दव झरसै सुख सरसै ।
तुलसी मति सीपी की मोती, कृत बरवै सिंगार मति मोती ।
दोहावली सुगुन गन माला, कवितावलि कवि कुल गुरु साला ।

सदन सोहिलो सङ्गल जाके, सिसु वर दुलहिनि सम्पति ताके।
यह अष्टांग जोग तुलसी को, साधै सो लहु श्रुति फल नीको ॥"

तुलसी के गुरु के सम्बंध में जो उल्लेख मिलता है उससे ऐसा आभास होता है कि जमुनातट पर उनकी ससुराल थी और कदाचित जमुना उनकी पत्नी का नाम था। लेखक का कथन है कि 'तुलसीदास अपने गुरु नरहरि' से मिलनें अयोध्या से काशी आए। वहाँ आने पर पता चला कि नरहरिदास नर्मदा के तट पर विराजमान हैं। कवि नर्मदा की ओर चला, किंतु बीच में यमुना के तट पर यमुना के घर में अनुरक्त होकर रम रहा। एक वर्ष तक कामदेव का गान चलता रहा। फिर 'यमुना' की सीख से 'सरयू' की याद आई अर्थात यमुना की शिक्षा से कवि श्री राम की ओर उन्मुख हुआ। परम्परा रत्नावली को तुलसी की शृङ्गारी वृत्ति को भक्ति की ओर उन्मुख करने वाली बताती है। प्रस्तुत ग्रंथ में संकेतात्मक ढंग से यह काम यमुना द्वारा सम्पन्न हुआ बताया जाता है:—

"कहु केहँ गृही वेप सँवराये, नर हरि कहाँ इहाँ कहुँ आये।
आप अवध तें कासी आये, कुटी नर्मदा तर गुरु छाये।
हमहुँ आदि कवि बन मति आचे,जमुना तट जमुना गृह राचे।"
वर्ष पंचसर गीता गाई, जमुना सिख सरऊ सुधि आई॥

लेखक ने तुलसी के संगी-साथियों का विस्तार से उल्लेख किया है, इसमें प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम के साथ नाऊ, गोड़, हरवाहा आदि की भी चर्चा है जिनसे कि तुलसीदास का सम्पर्क था। रामलीला करनेवाले मेघा भगत गंगा राम ज्योतिषी तथा टोडरमल जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ-साथ 'धाढ़ी मीर जसन जुलहाहू' भी हैं। इससे पता चलता है कि कवि का सम्पर्क कितना व्यापक तथा अनेक रूपात्मक था। संक्षिप्त उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है:—

"पंडित काशीनाथ महामति, समर सिंह रजपूत ग्रामपति।
गंगाराम परम सतसंगी, कवि कैलास कवित्त उमंगी।
नगर सेठ जैराम उजागर, ताम्बूली सियाराम उजागर।
नाथू नापित केवट रामू, अरु रैदास खेलावन नामू।
बोधी गोड़ हरी हरवाहू, धाढ़ी मीर जसन जुलहाहू।

ब्राह्मण कासीवार जो, सम पितु तन भगवान।
टोडर सदन समान सो, तुलसी बाग बितान॥
कमछा के मैया भगत, कर सुरधुनी नहान।
तुलसी चरन पखारि गृह, भजत राम धनु बान॥"

इसी प्रकार तुलसी के सम्बंध के अन्य उल्लेख भी इस ग्रंथ में मिलते हैं जो कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। तुलसी के समय में जो भीषण प्लेग फैला था उसका भी इसमें वर्णन है। यह भी बताया गया है कि जो तुलसी 'मधुकरी' पर रहते थे वह संकट के समय दीन-दुखियों तथा अपंगु को भोजन देते हैं। तुलसी की यात्राओं का विवरण देते हुए यह कहा गया है कि उन्होंने मानसरोवर की यात्रा कई साथियों के साथ की और वहाँ से लौटने के उपरांय वह रामचरित मानस की रचना में लगे।

इस प्रकार 'गौतम चन्द्रिका' से तुलसी के सम्बन्ध में कई महत्व पूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं। इस ग्रंथ के विवरण अत्यन्त विश्वसनीय प्रतीत होते हैं और इनसे तुलसी के जीवन तथा व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यद्यपि इस ग्रंथ की अभी पूरी पूरी विवेचना नहीं हुई है फिर भी तुलसी सम्बन्धी नवीन सामग्री को प्रस्तुत करने वाले इस ग्रंथ का अपना महत्व है। इसीसे यहाँ पर इसका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक समझा गया। इसकी प्रति मुझे प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा देखने को मिली। मैं इसके लिए उनका कृतज्ञ हूँ।

तुलसी सम्बन्धी इस प्रकार की उपलब्ध नवीन सामग्री की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी यह कहना पड़ता है कि तुलसी के व्यक्तिगत जीवन के ज्ञान के सम्बन्ध में हमारी स्थिति तथा हमारा स्तर संतोष जनक नहीं है। ग्रियर्सन आदि विद्वानों से लेकर आजतक के अन्वेषकों को परम्परा तथा जनश्रुति पर ही संतोष करना पड़ रहा है। वरान्नी-कोव ने भी इसकी ओर संकेत किया है ऐसी स्थिति में, ठोस सामग्री के अभाव में प्रोफेसर बरान्नीकोव ने इस अध्याय का कलेवर न बढ़ा कर ठीक ही किया।

इसके बाद लेखक ने 'तुलसीदास की रामायण की कथावस्तु' का संक्षिप्त सारांश दिया है और उसके मुख्य अंग तथा पक्ष की ओर संकेत किया है। राम कथा से भारतीय तो सर्वथा परिचित हैं, संभव हैं कि उनको यह पिष्टपेषण प्रतीत हो, किंतु लेखक ने इससे अन्य दो उद्देश्यों को सिद्ध किया है। प्रथमतः वह रूसी पाठकों को रामकथा से अवगत करना चाहता है, और दूसरे वह 'काव्य की कथावस्तु की संक्षिप्त व्याख्या' द्वारा 'सामग्री की व्यापकता और अनेक रूपकता' को प्रकट करना चाहता है, यद्यपि प्रबंध-योजना की दृष्टि से लेखक ने मानस की कथावस्तु पर आगे विचार किया है फिर भी वह यहीं संकेत दे देता है कि बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड राम के जीवन से अपेक्षाकृत बहुत कम संश्लिष्ट हैं और ऐसा दार्शनिक, सामाजिक तथा अन्य काव्येतर भावनाओं की प्रबलता तथा प्रभाव के कारण हुआ है। इस संक्षिप्त व्याख्या के द्वारा लेखक रूसी पाठकों को भारतीय जीवन, मनोदृष्टि, आदर्श, कर्त्तव्य तथा दार्शनिक एवं सामाजिक विचारों आदि के प्रति उन्मुख करना चाहता है। उत्तरकाण्ड का संक्षिप्त परिचय देते हुए लेखक ने लिखा है कि सीता के दो पुत्र लव और कुश होते हैं। उनके पुत्र और पौत्र होते हैं। मानस में तो केवल पुत्रों का ही उल्लेख मिलता है पौत्रों का नहीं, कवि कहता है कि 'दुइ सुत सुंदर सीता जाये, लव कुश वेद पुरानन्हि गाये।' तथा दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। कदाचित् लेखक का केवल यही मंतव्य हो कि अयोध्या का राज-परिवार फला फूला।

'तुलसीदास के रामायण को प्रबंधात्मकता' शीर्षक अध्याय में लेखक ने काव्य की प्रबंध-कल्पना या प्रबंध योजना पर विचार किया है और इस संबंध में जिन भिन्न-भिन्न प्रकार के कारणों का प्रभाव पड़ा है उनका उल्लेख किया है।

'मानस' की प्रबंध योजना पर प्रभाव डालने वाले कारणों में

लेखक ने पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा, कवि के साम्प्रदायिक या दार्शनिक सिद्धान्त, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, विभिन्न छंद तथा भाषा का उल्लेख किया है।

पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा के प्रभाव रूप में वह असंख्य कहानियाँ हैं जो कि रामायण में सन्निविष्ट हैं। ये स्वतः कवि की कल्पना से प्रसूत न होकर उसे परम्परा रूप में प्राप्त हुई हैं और जिनमें से बहुतों का उपयोग पूर्ववर्ती कवियों द्वारा पहले हो चुका है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ अन्य काव्यों में 'समाविष्ट वस्तु-विषय हमेशा कलात्मकता को नहीं प्राप्त कर पाता' वहाँ तुलसी के काव्य में "काकभुशुण्डि की कथा के अतिरिक्त........शेष संगृहीत कहानियाँ मुख्य वस्तु विषय के अधीन हैं और उसे पुष्ट करती हैं।" पूर्ववर्ती कथावस्तु के अत्यधिक ग्रहण की परम्परा का मुख्य कारण हमारा यह विचार है कि कवि की कलात्मकता कथावस्तु की सर्वथा नवीन कल्पना में न होकर काव्य की प्रबंधात्मकता तथा स्वरूप-संगठन और काव्य युक्तियों के कौशलपूर्ण उपयोग में है। लेखक ने इन कथाओं की मूल प्रेरणा और प्रयोजन को भी स्पष्ट किया और बताया है कि ये अधिकारिक कथा को पुष्ट करती हैं या उसे नई दिशा में संचालित कर एक या दूसरे प्रतिपाद्य को प्रमाणित करती हैं।

साहित्यिक परम्परा का दूसरा प्रभाव हमें मानस के कांड-विभाजन में दिखाई पड़ रहा है। मानस का सात कांडों में विभाजन निश्चय ही परम्परा-पालन की दृष्टि से हुआ है। बालमीकि के रामायण में भी यही क्रम है। लेखक यहाँ यह भी स्पष्ट कर देता है कि इस प्रकार यद्यपि तुलसी ने परम्परा का निर्वाह तो कर लिया, किंतु इसके कारण प्रबन्धामक कौशल में कमी आ गई और कथावस्तु की श्रृंखला शिथिल हो गई। "प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से विफलता पहले और अन्तिम काण्ड में दृष्टिगोचर होती है" जहाँ मुख्य कथा का वर्णन गौण हो जाता है। "यदि तुलसीदास केवल काव्य सामग्री

के तर्कपूर्ण समावेश से प्रेरित होते तो वह काव्य की जटिलता को ध्यान म रखते हुए पहले और अन्तिम कांड को दो में विभाजित कर देते।'

प्रबंध-योजना के स्वरूप पर सबसे गंभीर प्रभाव कवि के अपने दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों का पड़ा। उन विचारों के कारण ही समाविष्ट प्रासंगिक कथाओं के चयन और विस्तार में मानस और दूसरी रामायणों में बड़ा भेद हो गया। उद्देश्य तया लक्ष्य की भिन्नता के कारण ही आदिकवि वाल्मीकि और तुलसीदास के रामायण में बड़ा भेद है। लेखक ने इस अंतर की ओर संकेत किया है। वाल्मीकि केवल कवि थे! उनके कथानायक राम केवल राजकुमार हैं। किन्तु तुलसी भक्त हैं और राम परम तत्व के साकार रूप हैं। तुलसी के राम का यह नया स्वरूप जिस दार्शनिक व्याख्या की माँग कर रहा था, उसे कवि ने इन प्रासंगिक कथाओं में महत्वपूर्ण ढग से स्पष्ट किया है। दार्शनिक व्याख्या की आवश्यकता ने ही तुलसी के बालकांड एवं उत्तरकांड में प्रबंधात्मक शिथिलता उत्पन्न कर दी तथा तुलसी के रामायण में समाविष्ट कहानियों के चयन और विस्तार में वाल्मीकि के रामायण से जो अंतर दिखाई पड़ता है वह भी इसी कारण है। तुलसी के मतवादी सिद्धान्त महत्वपूर्ण ढंग से इन समाविष्ट कहानियों में कहे गए हैं। कवि के निजी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के सन्निवेश के कारण ही अन्य रामकाव्यों से मानस का स्वरूप ही बिल्कुल दूसरा हो गया।

मानस की प्रबन्ध रचना में भारतीय काव्य-शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों के अनुसरण की चर्चा करते हुए लेखक ने बताया है कि काव्यशास्त्र में वर्णित मुख्य सिद्धातों का इसमें समावेश है। महाकाव्य के जो लक्षण बताये गए हैं और जो वस्तु विषय वर्णनीय ठहराए गए हैं उनका इस काव्य में पालन हुआ है। रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, अप्रस्तुत या अलंकार-विधान तथा नखशिख, ऋतु-वर्णन और सुभाषित आदि

काव्ययुक्तियों के उपयोग में कवि पारंगत और अद्वितीय है। काव्यात्मक अभिव्यक्ति के सभी माध्यम इस रचना से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। तुलसीदास की काव्य प्रतिभा स्वतः स्पष्ट है। इस संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता भी नहीं। यद्यपि शिष्टाचारवश तुलसी अपने को कवि कहने में संकुचित होते हैं, फिर भी हम सब जानते हैं कि उनका काव्यशास्त्र का ज्ञान कितना विस्तृत था और वे कितने सहृदय और भावुक थे। हिन्दी साहित्य में सिद्ध वाणी का सरस कवि केवल उन्हीं को कहा जाता है।

तुलसी की वाणी का भारतीयों के हृदय पर जो अमिट प्रभाव है उसके मूल कारणों में सुभाषित या 'सूक्ति' मुख्य हैं। लेखक ने सुभाषित-प्रयोग पर भी विचार किया है और तुलसी के सुभाषितों की व्यापकता और लोकप्रियता का उल्लेख किया है। सुभाषितों के सबंध में उसने मौलिक ढंग से विद्वानों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि इनके सहारे मानस के 'प्रक्षिप्त' अंश की परीक्षा की जा सकती है। सुभाषित की दो चौपाइयों के बीच में टूट जाने की स्थिति बाद की प्रक्षिप्तता के परिणाम की ओर इंगित करती है।

लेखक के विवेचन की मौलिकता वहाँ सबसे अधिक स्पष्ट होती है जहाँ वह प्रबन्धात्मकता पर वृत्तों और भाषा के प्रयोग के प्रभाव की चर्चा करता है। लेखक ने मानस में प्रयुक्त प्रत्येक छन्द के विशिष्ट कार्य को बड़ी मौलिकता से बताया है। उसने प्रतिपादित किया है कि इनमें से प्रत्येक वृत्तात्मक स्वरूप का अपना विशिष्ट कार्य है और वे अपने पारस्परिक निश्चित क्रम में पाए जाते हैं तथा काव्य की प्रबन्धात्मकता में इनका निश्चित अर्थगत कार्य है। चौपाई में काव्य की मुख्य कथा चलती है। दोहा या सोरठा कहानी को आरम्भ करता है, या चौपाइयों के विस्तृत निष्कर्ष को व्यक्त करता है और कहानी को आगे प्रेरित करता है। छद कथा के गत्यात्मक विकास में

योग न देकर भावातिरेक को व्यंजित करता है। संस्कृत के श्लोक से प्रत्येक कांड शुरू होता है। उनमें देवताओं की स्तुति है और कविता की कथावस्तु का संकेत दिया गया है। यतिभंग के संबन्ध में उसका कहना है कि यह 'क्षेपक' का संदेह उत्पन्न करता है। सुभाषितों में यतिभंग भी इसी निष्कर्ष पर ले जाता है। 'यतिभंग से युक्त पद्यों का तुलसीदास जैसे महान आचार्य से सम्बद्ध होना सन्देहोत्पादक है'।

यतिभंग के जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं और उनके स्वरूप का जो विवेचन किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि लेखक यतिभंग के अंतर्गत उन उदाहरणों को रखता है जिनमें पिंगल के अनुसार यतिभंग नहीं है प्रत्युत उद्देश्य और विधेय को चरणांतर में रखना है।

वृत्तों के समान ही भाषा का विवेचन बड़ा मौलिक है। मानस में प्रयुक्त अवधी, ब्रज तथा संस्कृत का अपना-अपना विशिष्ट कार्य है। संस्कृत का प्रयोग पूरे काव्य को एकान्विति प्रदान करता है। उसे पूर्ववर्ती महाकाव्य की साहित्यिक परम्परा से संबद्ध करता है तथा ब्राह्मणों और देवताओं की ऊँची सामाजिक स्थिति को प्रकट करता हुआ विशिष्टता प्राप्त करता है। अवधी में काव्य की मुख्य कथा चलती है। व्रजभाषा छंद के वृत्तात्मक स्वरूप से संबद्ध है और उसका प्रयोग पूर्ववर्त्ती वृत्तों में वर्णित कथावस्तु को भव्यता देने के लिए हुआ है। यह व्रजभाषा अपने शुद्ध स्वरूप में न होकर संस्कृतमय रूप से भाराक्रांत है, और भावावेश को प्रकट करती हुई शैलीगत साधन के रूप में आती है। शैली की उच्च भव्यता की अभिव्यक्ति के लिए व्रज का प्रयोग हुआ है। इन विभाषाओं के शब्दों के सम्मिलित प्रयोग ने कवि को शैली के क्षेत्र में अपूर्व स्वतन्त्रता दी जिससे कि उसके काव्य में अपूर्व सजीवता, विविधता तथा अनेकरूपता आ गयी।

इस प्रकार यह अध्याय लेखक के गंभीर अध्ययन और उसकी मौलिक सूझ को बड़ी स्पष्टता से सामने लाता है। अध्याय के अन्त

में प्रक्षिप्त अंशों के सम्बन्ध में लेखक ने जो कहा है वह विचारणीय है।

प्रबन्ध-विधान के विस्तृत विश्लेषण के समान ही लेखक ने 'तुलसी की कविता का विशिष्ट स्वरूप' शीर्षक अध्याय में तुलसी के साम्य-विधान का विस्तृत परिचय दिया है। इस विवेचन के द्वारा उसने बताया है कि तुलसी की यह रचना जीवन और प्रकृति की व्यापकता से किस प्रकार समन्वित है। इस अध्याय का पहला वाक्य ही भारतीय काव्य की व्यापकता को स्पष्ट कर रहा है। उसका कथन है कि 'भारतीय काव्य की मौलिक विशिष्टता (मुख्यत: उसके रूप की मौलिकता) इस बात में है कि उसके अनेक सूत्र देश से, अतीत से, उसकी प्रकृति से, जीव वनस्पति, और उसकी असंख्य कथाओं से अत्यन्त घनिष्ठता से बंधे हुए हैं।' भारतीय काव्य की यह विशिष्टता योरोपीय काव्य में भी कम है। योरोपीय काव्य में 'प्रकृति, चित्रण के विधान में अपेक्षाकृत शिथिलता के साथ प्रयुक्त होती है।' उर्दू की काव्य भाषा के सम्बन्ध में भी लेखक का यही विचार है कि 'उर्दू भाषा फारसी काव्य के लिए गए चित्र 'विधान' के और काव्यात्मक परम्पराओं से जीवित है....समृद्धशाली भारतीय प्रकृति पूर्णतया छोड़ दी गई है।'

लेखक इसके बाद बताता है कि तुलसी की रचना में किस प्रकार साम्यविधान के अन्तर्गत समस्त प्रकृति और पूर्ण जीवन समाविष्ट है और इसमें किस प्रकार परम्परा तथा उद्भावनाओं का सम्मिश्रण है। भारतीय काव्य के अत्यन्त प्रिय उपमान हाथी, हंस, भ्रमर, कमल और चन्द्रमा का मानस में जिस प्रकार प्रयोग हुआ है उसका लेखक ने विस्तृत निदर्शन प्रस्तुत किया है और साथ ही साथ यह भी स्पष्ट किया है कि कहाँ तुलसी ने उनका परम्परा-प्राप्त रूढ़रूप ग्रहण किया है और कहाँ उनमें कवि ने अपने निरीक्षण द्वारा नया तथ्य जोड़ा है। तुलसी की सर्वथा नवीन उद्भावनाओं का भी उल्लेख किया गया है। तुलसी के साम्य-विधान के संबंध में लेखक का यह कथन युक्तियुक्त

है कि "भारतीय काव्य में ऐसा दूसरा कवि पाना अत्यन्त कठिन है जिसकी साम्य की व्यापकता और अनेकरूपता की दृष्टि से तुलसीदास से तुलना की जा सके।

लेखक ने साम्य विधान का जो अत्यन्त विस्तृत उद्धरण प्रस्तुत किया ह वह कदाचित् हिंदी के पाठकों को अनावश्यक विस्तार प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में इन उद्धरणों के द्वारा वह रूसी पाठकों को भारतीय काव्य के अप्रस्तुत विधान और साम्यविधान की परम्परा से परिचित कराना चाहता है। साथ ही वह कवि की मौलिकता, बहुज्ञता, प्रकृति-निरीक्षण तथा परम्परा से संबद्धता प्रदर्शित कर उसके काव्य की समृद्धि वताना चाहता है।

एक बात और। हमें यह न भूलना चाहिए कि प्रस्तुत भूमिका भारतीयों के लिए नहीं वरन रूसियों के लिये लिखी गई है। लेखक उनको भारतीय जीवन, परम्परा तथा काव्य से परिचित कराना चाहता है। हमारी भावनाएँ उनको कभी कभी अस्पष्ट, क्लिष्ट तथा जटिल प्रतीत होती हैं क्योंकि हमारी भावप्रक्रिया उनसे भिन्न है। इसी भिन्नता के कारण हमारे काव्य के उपमान और प्रतीक हमारे हृदय में जो भावनाएँ जगाते हैं वह उनके हृदय में नहीं। लेखक ने इसे 'गाय' की उपमा द्वारा स्पष्ट किया है कि भारत में जहाँ गाय पूज्यभाव जगाती है वहाँ योरोपीय देशों या रूस में ऐसी कोई भावना नहीं उत्पन्न करती। लेखक स्पष्ट कहता है कि योरोपीय पाठकों के लिए उसका समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योंकि तुलना करने पर भारतीय वस्तुओं का चित्र-विधान योरोपीय काव्य में प्रकट होने वाले चित्रविधान से भिन्न परिपाटी पर विकसित होता है। रूसी पाठक तुलसी के इस समृद्ध चित्र-विधान को हृदयगंम कर सकें इसी लिए लेखक ने मुख्य उपमानों का विस्तृत वर्गीकरण किया है और बताया है कि वे कौन कौन से 'धर्मों' को व्यञ्जित करते हैं। इस वर्गीकरण से लेखक का निजी निरीक्षण और अध्ययन भी प्रकट होता

है। साथ ही लेखक ने भारतीय काव्य के चित्रविधान के विकास के अध्ययन की जो बात कही है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इसके बाद लेखक ने 'तुलसीदास के दार्शनिक विचार' पर अपना मत प्रकट किया है। तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों के संबंध में उसका कथन है कि तुलसीदास ने बहुत से दार्शनिक मतों का उल्लेख किया है किन्तु वह उनमें से किसी एक का पूर्ण निश्चय और विश्वास के साथ अनुसरण नहीं करते। इसके पश्चात लेखक उन दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना करता है जिनका मानस में उल्लेख हुआ है। इस संबंध में कोई भी दार्शनिक पक्ष छूटने नहीं पाया है।

किसी एक दार्शनिक मतवाद के पूर्ण अनुसरण के अभाव का विशेष कारण है और वह है तुलसी की स्थिति। तुलसी किसी दार्शनिक तन्त्र के प्रवर्त्तक या आचार्य न होकर प्रधानतया भक्त हैं। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्त की विचारणाओं और मान्यताओं का भी आधार दर्शन ही है फिर भी उसका सिद्धान्त पक्ष और आचार पक्ष दार्शनिक और भक्त के बीच अन्तर पैदा कर देता है। उन आलोचकों द्वारा तुलसी के भक्ति-साधन-संबंधी आचार पक्ष और दार्शनिक मत संबंधी व्यवहार पक्ष तथा सिद्धान्त पक्ष में दोनों पूरी पूरी तरह बरतने के संबंध में द्वैत और अद्वैत या विशिष्टाद्वैत का विवाद उठता है। निर्गुण तथा सगुण पक्ष का झगड़ा भी इसी प्रकार ज्ञान और भक्ति के माध्यम और उसकी प्रधानता का द्वंद्व है। ब्रह्म, जीव और विश्व (माया) के पारस्परिक सम्बन्ध और उनके स्वरूप के विषय में तुलसी दार्शनिक के रूप में जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं वह भक्त तुलसी को मान्य होते हुए भी, ज्ञानगम्य होते हुए भी, सच्ची अनुभूति के न होने के समय तक कतिपय कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। दार्शनिक के रूप में ज्ञान और तर्क के सहारे तुलसीदास अद्वैत की स्थिति में पहुँचते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से केवल ब्रह्म की ही सत्ता है—'अज-अद्वैत अगुन हृदयेसा'। 'वह ज्ञान गिरा गोतीत

अज माया गुन गो पार' है। 'जीव या आत्मा' ईश्वर अंश जीव अवि-नाशी, चेतना अमल या सुखरासी है; और माया तथा भासमान संसार मिथ्या और भ्रम है—

'देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं, मोह मूल परमारथ नाहीं।

ज्ञानोदय पर ही पता लगता है कि माया मिथ्या है—'समुझे मिथ्या सोपि।' इसी तरह दृश्यमान संसार उसी प्रकार भ्रमात्मक है और उसका अस्तित्व मिथ्या है जैसे कि 'रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।' इस प्रकार जब सत्ता केवल ब्रह्म की ही है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है और केवल यही सत्ता है तो संसार के (माया-कृत) जो सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, सत्-असत्, पाप-पुण्य आदि के भेद हैं वह भी अवास्तविक और निस्सार हैं। इसलिए पूर्ण ज्ञानोदय की स्थिति अद्वैत की स्थिति है, जिसमें इन भेदों की ओर दृष्टि ही नहीं जाती और इनकी विषमता तथा इनका भेदभाव स्वतः लुप्त हो जाता है। सच्ची स्थिति तो यही है कि इन द्वन्द्वों की ओर दृष्टि ही न जाय। इनमें भेद-भाव लक्षित करना ही 'अविवेक' है—

"सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखियहि, देखिय सो अविवेक॥ *"

दार्शनिक के रूप में ज्ञान पक्ष की बात बताते हुए तुलसीदास अद्वैत का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु भक्त तुलसीदास जानते हैं कि अद्वैत का यह लक्ष्य मान्य होते हुए भी यों ही नहीं प्राप्त हो जाता। अद्वैत की भाव-भूमि तक पहुँचने के पहले साधना और व्यवहार के क्षेत्र में भेद-भाव (भेद-भक्ति) किसी न किसी रूप में बना रहता है। भक्त जानता है कि ज्ञानमात्र पर्याप्त नहीं है। केवल जानने मात्र से ही कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो जाती। जब तक सच्ची आत्मानुभूति न जगे, और जब तक साधना पूर्ण न हो तब तक भेद की भावना मिथ्या

---

* उत्तरकांड, दोहा ६४, पृ० १००१,

होते हुए भी अनिवार्य प से साथ लगी रहती है। भक्त और भगवान तथा साधक और साध्य के बीच इसी कारण भेद की प्रतिष्ठा व्यावहारिक रूप में हो जाती है; और दार्शनिक तथा भक्त की ब्रह्म, जीव और माया संबन्धी भावना में तात्विक अन्तर होते हुए भी कुछ भेद हो जाता है। दार्शनिक के 'अकल अनीह अनाम अरूपा' निर्गुण ब्रह्म को भक्त के प्रेमवश उसके आधार के लिए सगुण ब्रह्म बनना पड़ता है—'अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सो होई।' इसी प्रकार तात्विक दृष्टि से जीव या आत्मा ब्रह्म स्वरूप है किन्तु फिर भी भक्त इस बात का अनुभव करता है कि चेतन-आत्मा जड़ माया के वश हो गयी है। यह पराधीनता यद्यपि मिथ्या है किंतु फिर भी व्यवहार में यह भ्रम बना ही रहता है।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥*

माया की सत्ता भी कुछ इसी प्रकार की है। माया का प्रपञ्च स्वप्नवत् है, फिर भी यह असत्य होते हुए भी दुख देता है, "एहि विधि जग हरि आश्रित रहई, जदपि असत्य देत दुख अहई। इस प्रकार भक्ति के साधनात्मक क्षेत्र में निर्गुण ब्रह्म को सगुण बनना पड़ता है, आत्मा या जीव की मायाबद्धता स्वीकार करनी पड़ती है और माया का किसी न किसी रूप में अस्तित्व मानना पड़ता है। अस्तित्वहीन होते हुए भी ब्रह्म और जीव के बीच माया का व्यवधान आ जाता है—'ब्रह्म जीव बिच माया जैसी,' और भेद का प्रवेश हो जाता है। इस प्रकार अद्वैत की अभिव्यक्ति के साथ जो द्विविध रूप मानस में दिखाई पड़ता है वह आदर्श और व्यवहार में निहित भेद और दार्शनिक तथा भक्त की विभिन्न आवश्यकताओं के कारण है। किसी एक दार्शनिक सिद्धान्त

---

* उत्तर कांड (श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित मानस) चौ० २, पृ० १०८२।

का जो पूर्ण अनुसरण मानस में नहीं दिखाई पड़ता उसके मूल में भी दार्शनिक और भक्त की विभिन्न आवश्यकताएँ और प्रक्रियाएँ हैं। मानस का आदर्श श्रीमद्भागवत है और जिसमें बहुत सी सामग्री भी उसी से ली गयी है। भागवत में दार्शनिक पक्ष निश्चित नहीं है; वैसे ही मानस में भी यह पक्ष स्पष्ट नहीं है। दोनों में भक्ति का विवेचन और सम्बन्ध स्पष्ट है।

दार्शनिक और भक्त का जो प्रमुख भेद है वह दोनों की साधना पद्धति का भेद है जिसे काकभुशुण्डि और लोमश ऋषि के संवाद और ज्ञान-दीप तथा भक्ति-चिन्तामणि के रूपक द्वारा बताया गया है। ज्ञानी का सहारा तर्क है और भक्त का अनुभूति। भक्त ज्ञान को अमान्य नहीं ठहराता, फिर भी उसको जानने मात्र से तृप्ति नहीं होती, उसे तो हृदय में उसकी अनुभूति चाहिए। कवि ने 'विनय-पत्रिका' में उसे बड़ी स्पष्टता के साथ व्यक्ति किया है कि केवल कथन मात्र या ज्ञान मात्र माया से मुक्त करने में समर्थ नहीं है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार दीपक की बात करने से घर का अँधेरा नहीं दूर होता —

'वाक्य-ज्ञान-अत्यन्त-निपुन भव-पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह, तम निवृत्त नहिं होई।''×

इसी प्रकार भोजन का बखान करने से भूख नहीं मिटती। सच्ची तृप्ति का अनुभव तो उसी को होता है जो कि भोजन करता है चाहे वह उस विषय में कुछ भी न कहे,कुछ भी न बोले

''षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष जनित सुख, खाइ सोइ पै जानै॥'' ×

भक्त इसी प्रकार का है; वह कहता नहीं फिर भी भोजन की तृप्ति सुख का अनुभव उसी को हो रहा है। लोमश ऋषि के निर्गुण के प्रतिपादन को काकभुशुण्डि ने इसी लिए न अपनाया क्योंकि उससे

× विनयपत्रिका (वियोगी हरि), पद १२३, पृ० २९२।

उनके हृदय की भूख नहीं मिट रही थी, हृदय की तृप्ति नहीं हो रही थी। वह जिससे पूछते थे वह यही कह देता था कि ईश्वर सर्व भूतमय अहई; किन्तु इतने से उसको सन्तोष न हुआ—

जेहि पूछहुँ सोइ मुनि अस कहई। ईश्वर सर्व भूत मय अहई।
निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई, सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई।"+

आचरण और अनुभूति पर अधिक आग्रह के कारण ही भक्त ज्ञान के सिद्धान्त-कथन-मात्र को अधिक महत्व नहीं देता।

भक्त ज्ञान को इसलिए भी अधिक महत्व नहीं देता कि वह जानता है कि ज्ञान 'कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक'। तुलसीदास जी ने ज्ञान की कठिनता और भक्ति की सुगमता का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि उस संबंध में कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान की ओर भक्त इसलिए भी अधिक प्रयत्नशील नहीं होते कि उसमें अहं की भावना का कुछ न कुछ लेश हो ही जाता है। साधना के मार्ग में भक्त के सबसे बड़े शत्रु अहं और दंभ के भाव हैं। इसी से वह अपने कर्त्तव्य और अपनी शक्ति पर गर्व न कर भक्ति मार्ग के सच्ची सहायिका निरवलंबता, अनन्यता और भगवत्कृपा का ही सहारा लेता है। नारद और शाण्डिल्य के भक्तिसूत्रों में पहला सूत्र ही इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है कि मनुष्य की अपनी साधना और प्रयत्न से नहीं, प्रत्युत भगवत्कृपा से ही सब कुछ होता है, भगवत्कृपा से ही भ्रम का नाश होता है—

"एहि बिधि जग हरि आस्रित रहई, जदपि असत्य देत दुख अहई।
जौं सपने सिर काटइ कोई, बिनु जागे न दूरि दुख होई।
जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई, गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥"

ज्ञानोदय भी भगवत्कृपा से ही होता है। राम की कृपा के बिना उसकी प्रभुता को नहीं जाना जा सकता है—

+'मानस' (श्यामसुन्दरदास), उत्तरकांड, चौ० ८, पृ० १०७२।

'राम कृपा बिनु सुनु खगराई, जानि न जाइ राम प्रभुताई।'
और सच्चा ज्ञान उसी भक्त को प्राप्त होता है जिस पर प्रभु की कृपा होती है। ब्रह्म को जानकर वह ब्रह्म हो जाता है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हहिं होइ जाई।
तुम्हरि कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन, जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥*

भक्ति पर कवि ने इसलिए भी विशेष आग्रह दिखाया है कि कवि के मतानुसार ज्ञान मुक्ति के अधीन है और भक्ति स्वतंत्र है। ज्ञान का चरम लक्ष्य मुक्ति भी भक्त को भक्ति की साधना के बीच स्वतः प्राप्त हो जाती है यद्यपि वह न इस ओर प्रयत्नशील होता है और न इसे चाहता ही है—

"राम भगति सोइ मुक्ति गुसाईं, अनइच्छित आवइ बरियाई।
अस विचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने।"

भगवत्कृपा की अमोघ शक्ति का वर्णन इसी प्रकार विनय-पत्रिका में भी कवि ने बहुत किया है। मानस के प्रबन्ध काव्य होने के कारण उसमें अपेक्षाकृत कम अवकाश था। विनय-पत्रिका में भक्त की दीनता और भावावेश के बीच भगवत्कृपा का वर्णन बहुत हुआ है+

---

* मानस (श्याम० सु०, अयोध्या कांड) चौपाई ६२, पृ० ४६० ।

+ 'संसृति सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै।'
वियोगीहरि—विनय० पद० ८१, पृ० २२८।

'तुलसीदास प्रभु मोह शृँखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे।'
विनय० पद० ११४, पृ० २८२।

"तुलसी दास हरि गुरु करुना बिनु, बिमल बिवेक न होई।
बिनु बिवेक संसार घोर निधि, पार न पावे कोई।"

'हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी,
जदपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥
पद० १२०, पृठ २९२।

श्रौर रामनाम का महत्व बताया गया है। जिस प्रकार कवि मानस में राम भजन के संबन्ध में यह कहता है कि—

"हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहि।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मन माहि॥" *

उसी प्रकार विनय पत्रिका में भी राम-नाम का प्रभाव प्रकट करता है। +

तुलसी भक्त के रूप में रामचरित की व्याख्या करते हैं। संक्षेप में उनका सिद्धान्त है— राम भजन। भेद भक्ति (जिसमें उपासक श्रौर उपास्य की पृथक सत्ता रहती है) उसका साधन है (मानस में नवधा

---

* मानस, उत्तर०, दो० १६६, पृ० १०६२।

+ 'तुलसीदास सब बिधि प्रपंच जग, जदपि झूठ स्तुति गावै।
रघुपति भक्ति संत संगति बिनु, को भव त्रास नसावै'

पद० १२१, पृ० २६४।

'तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
राम नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो॥'

पद० १७३, पृ० ४०७

'राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि।
कलि काल अपार उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि।

पद० १८४, पृ० ४२६।

'नाना पथ निरवान के नाना विधान बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे, जपु राम दिन राति।'

पद० १६२, पृ० ४४८।

भक्ति का निर्देश किया गया है।) और साध्य मन का विश्राम है* और यह सब भगवत्कृपा से प्राप्य है, अन्य प्रकार से नहीं।

---

* सिद्धान्त—

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥'

उत्तर०, दो० २०४, पृ० १०८७।

'वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल॥'

श्याम०, मानस, उत्तर, पृ० १०६५, दो० २१०।

'निज सिद्धान्त सुनावउँ तोही, सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही।
श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी, राम भजिय सब काज बिसारी॥'

उत्तर०, १०६६ चौ०।

भेद भक्ति—

'तातें उमा मोच्छ नहिं पायो, दसरथ भेद भगति मन लायो।
सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं, तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥'

लंका०, चौ० १,३,४; पृ० ९३९।

'ताते नास न होइ दासकर, भेद भगति बाढ़ई बिहंगबर।'

उत्तर, चौ० २, पृ १०३६।

साध्य—

'राम चरित मानस एहि नामा, सुनत श्रवन पाइय बिस्रामा।'

बाल०, चौ० ४, पृ० ४३।

'बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहिं बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लेहु बिस्राम॥'

उत्तर०, दो० १३८, पृ० १०४१।

जाको कृपा लवलेस ते मति मंद तुलसीदास हूँ।
पायउ परम बिस्राम राम समान प्रभु नहीं कहूँ।

उत्तर०, पृ० ११०५।

इस प्रकार तुलसी दर्शन-शास्त्र में निष्णात होते हुए भी दार्शनिक नहीं हैं। उन्होंने रामचरितमानस का प्रणयन किसी दार्शनिक मतवाद की प्रतिष्ठा के लिए न कर रामभक्ति के प्रचार के लिए किया था। उनका लक्ष्य दर्शन या ज्ञान न था, वरन् भक्ति थी।

तुलसीदास ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति पर जो विशेष आग्रह दिखाया है उसमें उनकी व्यक्तिगत रुचि ही कारण नहीं है; भक्ति उस युग की पुकार थी और समाज की परम आवश्यकता थी। जिस प्रकार भक्ति का आधार दर्शन पर टिका है उसी प्रकार उसका सामाजिक पक्ष भी है। * भक्ति का आन्दोलन मध्ययुगीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं से प्रसूत है। ज्ञान की अपेक्षा भक्ति

---

* भक्ति का सामाजिक पक्ष उसके दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में स्पष्ट हो जाता है। भक्ति के क्षेत्र में समानता के अधिकार की घोषणा सभी भक्त और आचार्यों ने की है। भक्ति का अधिकार सभी को है। ईश्वर के समक्ष धनी, निर्धन सब बराबर हैं और न कोई ऊँचा है और न कोई नीच। राम को केवल भक्ति का संबंध ही मान्य है—'मानउँ एक भगति का नाता'। भक्तिहीन कुलीन व्यक्ति जल-शून्य मेघ के समान है। यह उक्ति तो भक्ति-क्षेत्र में अत्यन्त प्रचलित है—'जात पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई'। भक्ति के सिद्धान्त ने इस प्रकार समाज में प्रचलित भेद-भाव को कम करने का प्रयत्न किया।

समानता के सिद्धान्त की घोषणा के साथ विद्वेष की निंदा भी स्पष्ट शब्दों में की गयी है। जिस प्रकार व्यक्ति को विद्वेष से विरत किया गया, उसी प्रकार समाज में प्रतिष्ठित अनेक धर्मों में, देवताओं में विद्वेष को बुरा बताया गया। किसी भी देवी-देवता की निंदा को वैष्णव भक्ति ने अक्षम्य कहा। स्वयं तुलसीदास ने शिव और राम दोनों के के प्रति पूज्य भाव को प्रदर्शित किया। शिव की सेवा से ही राम के चरणों में अविरल भक्ति होती है।

पर विशेष आग्रह दिखाकर भक्ति के महान आचार्य एक प्रकार से सामाजिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे जिनकी जड़ें कतिपय दार्शनिक सिद्धान्तों—विशेषतया अद्वैतवाद—की निरंकुशता या अतिचार के कारण हिल गयी थीं। अद्वैत की भूमि पर पहुँच कर तो संसार या समाज के सभी भेद-उपभेद मिथ्या और निस्सार हो जाते हैं, उस स्थिति में तो शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, परोपकार और पीड़न सभी निस्सार और व्यर्थ हो जाते हैं। अद्वैत की दृष्टि से तो त्रासक और त्रस्त दोनों एक हैं। न कोई किसी को त्रास देता है और न कोई त्रस्त होता है। इस प्रकार की अद्वैत की भावना व्यक्ति को साधना का लक्ष्य तो हो सकता है किंतु समाज का सामान्य आदर्श नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में तो समाज का संचालन ही रुक जायगा। समाज संचालन के लिए तो कर्त्तव्याकर्त्तव्य, विधि-निशेध, कारणीय तथा अकारणीय की कोटियाँ अनिवार्य हैं। समाज संचालन में पापी का दण्ड और पुण्यात्मा का अभिनन्दन आवश्यक है चाहे पारमार्थिक दृष्टि से, दोनों ही सम क्यों न हों। तुलसी की भक्ति ने सहज, सरल, और शुद्ध आचरण पर जोर देकर अप्रकट रूप से सामाजिक जीवन के स्तर को ऊपर

इस प्रकार भक्ति के इन दोनों सिद्धान्तों द्वारा भी बहुत बड़ा कार्य हुआ। समानता के सिद्धान्त ने सामाजिक भेदभाव को कम किया, और धर्मों के प्रति समदृष्टि के प्रचार ने धार्मिक उदारता और सामाजिक सामंजस्य के भाव को दृढ़ किया। मध्ययुगीन वैष्णवता के संशोधित रूपों को स्वीकार करते हुए भी तुलसी ने विशेष रूप से समाज की दृढ़ता का ध्यान रखा। उस युग में प्रचलित अनेक पंथों की निंदा उन्होंने इसी लिए की कि वे समाज की समीकरण की शक्ति को क्षीण कर समाज को शिथिल बना रहे थे। तुलसी को समाज का ध्यान बराबर रहा।

उठाया और (ज्ञान के अतिचार से सम्भूत) सामाजिक अस्तव्यस्तता और अनुशासनहीनता को रोकने का प्रयत्न किया। यही भक्ति के आंदोलन का सामाजिक पक्ष है।

हिंद समाज का आधार वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था और प्रतिष्ठा है। मध्ययुगीन हिंदू समाज में किस प्रकार अस्तव्यस्तता और अनुशासन हीनता फैल गयी थी, लोग किस प्रकार अपने निश्चित कर्त्तव्यों से विमुख हो रहे थे, इसका तुलसीदास ने मानस में कलियुग के वर्णन के बीच स्पष्ट उल्लेख किया है। वहीं पर उन्होंने बताया है कि शूद्र किस प्रकार अपने को ब्रह्मवेत्ता कहकर ब्राह्मण की भर्त्सना कर रहे हैं। कवि की दृष्टि में यह सामाजिक अनुशासन हीनता है—

"वादहिं शूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम तें कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो विप्रवर, आँख दिखावहिं डाटि ॥"

(उत्तर०, दो० १५७, पृ० १०५७।)

इसी प्रकार कवि का कहना है कि जो लंपट और सयाने हैं वह अपने को अभेदवादी कहते हैं—

"पर-तिय-लम्पट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर।"

(उत्तर०, चौ० १, पृ०१०५७,)

यद्यपि तुलसी में धार्मिक उदारता पर्याप्त है फिर भी वह उन उपासनाओं को मान्यता नहीं देते जो एक प्रकार से वेद वाक्य हैं, जो 'तजि स्रुति पंथ बाम पथ चलहीं' भरत राम वनवास के संबंध में सफाई देते हुए उन लोगों की ओर संकेत करते हैं जो ऐसी उपासना में निरत हैं और जो अच्छी गति नहीं पाते—

परिहरि हरि हर चरन। भजहिं भूत गन घोर।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ विधि। जौं जननी मत मोर ॥

अयोध्या०, दो० १६८, पृ० ५४६५।

इन शब्दों में कवि ने अद्वैतवाद के सामाजिक कुपरिणामों की ओर इंगित किया है और बताया है कि इसकी मिथ्या भावना किस प्रकार समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर उसे शिथिल बनाती है। समाज की दृढ़ता के लिए ही कवि ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति पर अधिक जोर दिया।

भक्ति का जो व्यक्तिपरक पक्ष है वह भी चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण कर समाज की नीव को पुष्ट ही करता है। नवधा भक्ति का वर्णन करते हुए भक्ति के साधन का उल्लेख भी तुलसी दास ने श्री रामचन्द्र के मुख से कराया है। उसमें 'निज निज करम निरति श्रुति रीती' में उसका सामाजिक पक्ष स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

भक्तों का आधार, संसार की क्षणिकता की संतत अनुभूति, निरवलम्बता, अनन्यता और उच्च जीवन यापन है; संसार की निस्सारता उन्हें यह भी बताती है कि संसार के प्रदर्शन, संसार की पाशविक शक्ति और वैभव सब धुआँ का धौरहर है—

'जग, नभ वाटिका रही है फलफूलि रे,
धुंआँ कैसो धौरहर देखि तू न भूलि रे'

अतः संसार और संसारवासियों से किसी प्रकार की आशा दुराशा ही होगी। यही नहीं, जो देवता कहे जाते हैं वे भी सम्पन्न नहीं हैं; वे भी किसी दूसरे का मुंह देखते हैं। फिर उन्हें दीनदयाल क्या कहा जाय, वे स्वयं दीन दिखाई पड़ते हैं—'दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ, जासों दीनता कहौं हौं, देखौं दीन सोऊ।' ऐसी मनोदृष्टि चरित्र में निर्भीकता और दृढ़ता लाती है। ऐसे व्यक्तित्व के लोगों की आत्मा को भय या लालच खरीद नहीं सकता और सांसारिक वैभव के प्रदर्शन उनकी आंखों में चकाचौंध नहीं उत्पन्न कर पाते।

निरवलम्बता उनमें सच्चे दैन्य और विनती का संचार करती है और भक्ति के सब से बड़े शत्रु दम्भ और अहंभाव से उनकी

रक्षा करती है। दंभ और अहं के लोप से भक्त उस जीवन की ओर प्रवृत्त होते हैं जिसे तुलसीदास सच्ची 'रहनि' समझते हैं। इसी प्रकार अनन्यता भक्त में उस दृढ़ विश्वास की सृष्टि करती है जिसके सहारे भक्त कठिन से कठिन परीक्षा में भी सफल होता है। अनन्यता मन को प्रभु की ओर केन्द्रित कर देती है जिससे मन की चंचलता दूर होती जाती है और वह किसी दूसरे से कोई आशा नहीं रखता है। मानस में तुलसीदास ने राम के मुख से कहलाया है कि जो मेरा दास कहलाकर भी किसी मनुष्य से आशा रखे तो उसके विश्वास के लिए क्या कहा जाय—

'मोर दास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा विस्वासा॥'

चातक अनन्य प्रेमी का प्रतीक है और भरत अनन्य भक्त हैं। भक्ति के उपकरण इस प्रकार ऐसे व्यक्तित्व का सृजन करते हैं जिसमें विनति के साथ दृढ़ता और निर्भीकता रहती है, जो न भय से त्रस्त होता है और न लालच से खरीदा जा सकता है, जिसमें 'बयरु न बिग्रह आस न त्रासा', जो खरी परीक्षा में भी अपने उच्च लक्ष्य को नहीं छोड़ता। भक्त का जीवन आदर्शनिष्ठ जीवन हो जाता है।

किन्तु तुलसीदास इसके आगे और भी कुछ कहते हैं जो भक्ति के उच्च व्यक्ति परक आचरण को सामाजिक बना देता है। उन्होंने कई स्थलों पर कहा है कि सबसे बड़ा धर्म अहिंसा और परोपकार है, सबसे बड़ा पाप पर-पीड़न है। पर-पीड़न से विरत होने में समाज की रक्षा, और परोपकार में समाज के कल्याण की भावना छिपी है—

'परम धरम श्रुति विदित अहिंसा, पर निंदा सम अघ न गिरीसा।*
परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥'+

जिस प्रकार अहिंसा और परोपकार में समाज की भावना छिपी

---

* उत्तरकाण्ड, चौ० ११, पृ० १०९२।
+ ,, ,, १, पृ० १००१।

हुई है उसी प्रकार सन्तों के जो लक्षण बताये गये हैं उनके उच्च जीवन की जो विशेषताएं बतायीगयी हैं उनमेंभी समाज के कल्याण की भावना छिपी हुई है। 'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर', 'कोमल चित दीन्हन पर दाया', 'सीतलता समता मइत्री' आदि में सामाजिक पक्ष भी निहित है। भक्त का जीवन इस प्रकार उच्च नैतिक जीवन का निदर्शन बन जाता है जिससे समाज का कल्याण होता है और जिसका समाज अनुकरण करता है।

भक्ति का वर्णन करते हुए मनुष्य के कर्त्तव्यों की चर्चा भी की गई है। मनुष्य शरीर भगवत्कृपा का फल है। यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसे इंद्रिय-लोलुपता से अलग कर उच्च आचरण की ओर लगाना चाहिए। जो मनुष्य शरीर धारण कर दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं वे संसार में पतित होते हैं—

नर सरीर धरि जे परपीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।

मनुष्य शरीर की महिमा मानस और विनयपत्रिका दोनों में कही गई है, यह साधना का स्थल है—'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' ईश्वर कभी-कभी कृपा करके नर शरीर देता है—'कबहुँक करि करुना नरदेही, देत ईस बिनु भोग सनेही।'* इसे भोग विलास में न लगाना चाहिए—'एहि तन कर फल विषय न भाई।' यह नर शरीर संसार सागर को पार करने का यान है। भगवत्कृपा उसे चलाने के लिए अनुकूल वायु है—'नरतन भववारिधि कहुँ बेरो, सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।'+ अतः मनुष्य शरीर को उच्च साधना के लिए प्रयुक्त करना चाहिए इन उच्च कर्मों में परोपकार सर्वोच्च है। विनयपत्रिका में कवि

---

* उत्तर०, चौ० ३, पृ० १००४।

+ ,, ,, ४, ,, १००४।

ने मनुष्य शरीर की सार्थकता परोपकार के संबंध से ही निश्चित की है।*

स्वयं कवि ने अपने लिए जिस आदर्श जीवन यापन की कामना प्रकट की है उसमें भी समाज के कल्याण की पूरी संभावना है, व्यक्तित्व की उदात्तता के साथ दूसरे (या समाज) के उपकार की बात कही गयी है—'परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।'×

इस प्रकार भक्ति के प्रचार ने देश को नवीन व्यक्तित्व प्रदान किया जो विनम्र किन्तु दृढ़ था, जो निर्भीक था, जो अपने विश्वास में अटल था, जो, जिस पर संसार की शान शौक़त का कोई असर न था, और जो अपनी गरीबी में ही मस्त था क्योंकि वह ऐसे प्रभु का सेवक था 'जेहि अति दीन पियारे।' भक्ति के इसी कवच को धारण कर हिंदू जाति अपने प्राचीन धर्म तथा संस्कृति की रक्षा मध्ययुग की उन कठिन घड़ियों में कर सकी जब विधर्मी शक्ति ने देश की स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया था, वह न शासक के भय से त्रस्त हुई और न लोभ में फँसी। भक्ति के सहारे ही देश की जनता विधर्मी शक्ति और शासन के बीच अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रख सकी। देश परतंत्र हुआ, किंतु देश की आत्मा स्वतंत्र रही।

तुलसी का यह महत्वपूर्ण कार्य लेखक की दृष्टि से ओझल न रहा। उसने अपने प्राक्कथन के आरंभ में ही लिखा है कि तुलसी के "देशवासी,

---

* "लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय वचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये॥"

विनय०, पद० २०४, पृ० ४६४।

"काज कहा नर तनु धरि सार्‌यों।
पर उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न विचार्‌यो"

पद० २०२, पृ० ६६६।

× विनय०, पद० १७२, पृ० ४०५।

'विजेताओं द्वारा धूल-धूसरित थे और उन्होंने (तुलसी ने) अपने काव्य के द्वारा अपने देश की रक्षा के लिए अपूर्व मार्ग प्रदर्शन की चेष्टा की।" कहना न होगा कि रक्षा का यह अपूर्व मार्ग भक्ति का ही मार्ग था। इसी भक्तिपथ का अनुसरण कर जनता अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकी। यह भक्ति दो-चार इने-गिने व्यक्तियों के लिए न थी। उपासना के क्षेत्र में इसने समानता के सिद्धान्त की घोषणा की और इसने समग्र देश को आप्लावित कर दिया। सारे देश ने इसे अपना लिया। तुलसी की वाणी ने ही इस भक्ति को प्रत्येक हृदय में प्रतिष्ठित कर दिया। सारे देश ने इसे हृदयंगम कर लिया। इस प्रकार तुलसी ने अपने काव्य में प्रतिपादित भक्ति के द्वारा जनता का पुनरुत्थान किया। इस कवि की पीयूषवाणी को सुनकर ही जनता जीवित रह सकी, तुलसी की वाणी को सुनकर यहाँ की जनता को जनार्दन के आश्रय का अटल विश्वास हो गया।

'तुलसीदास के धार्मिक विचार' शीर्षक अध्याय में लेखक ने मानस में विभिन्न देवी-देवताओं की स्थिति और शिव तथा विष्णु की उपासना के सामञ्जस्य का प्रधानतया उल्लेख किया है तथा राम की अद्वैतस्थिति और उपासना आदि की चर्चा की है।

लेखक ने भारतीय देवमंडल का तीन कोटियों में विभाजन किया है। मानस में वैदिक देवमंडल के उन देवताओं के समावेश के विषय में जो कि अब बिल्कुल गौण हो गये हैं, उसका कथन है कि इनकी प्रतिष्ठा भारतीय धार्मिक मतवादों की सबसे बड़ी विशेषता अहिंसा 'हिंसा न करने' के सिद्धान्त की स्वीकृति है, उसके मतानुसार इसका दूसरा प्रधान करण तुलसी के अपने 'कट्टर मतवाद' की रक्षा का प्रयत्न है। कवि चाहता है कि ये प्राचीन देवता उच्च सम्मान के अधिकारी बने रहें और यह सम्मान उन्हें ऊँच नीच सभी से अनिवार्य रूप में मिले। ऐसा न होने से अन्य देवताओं की प्रतिष्ठा को आघात पहुँच सकता है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इन देवताओं के समावेश का प्रधान

कारण मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति का आन्दोलन है जिसने देवताओं के प्रति विद्वेष को निदंनीय बताया और देवताओं के प्रति पूज्य बुद्धि रखने की बात कही।

लेखक का यह भी कहना है कि मानस में बहुदेव वाद से एक देव वाद की प्रवृत्ति है जो सर्ववाद से समन्वित है, "तुलसी के काव्य में चित्रित देवमंडल के उदाहरण में विभिन्न भारतीय मतवादों द्वारा निर्मित मार्ग बहुदेववाद से एकेश्वरवाद की ओर (उन्मुख) है, प्रायः सर्ववाद से अत्यन्त संपृक्त है।" वस्तुतः ऐसा तुलसी के काव्य में ही नहीं है प्रत्युत यह भारतीय उपासना की प्रचलित पद्धति है। भारतीय उपासना किसी एक देवी या देवता को ग्रहण कर उसकी ब्रह्मरूप में भावना करती है और उसकी सर्वव्यापी सत्ता स्वीकार करती है। इस प्रकार बहुत से देवी-देवताओं में से चुना हुआ देवता सबसे बड़ा देवता बन जाता है (एकेश्वरवाद की इस प्रकार प्रतिष्ठा हो जाती है) और उसकी व्यापकता सर्ववाद को जन्म देती है। सारी सृष्टि उसी की अभिव्यक्ति करने लगती है।

इन देवताओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय चित्रित की गयी है। यह सभी देवता शक्तिशाली होते हुए भी राम की माया के वश में हैं। राम 'बिधि हरि संभु नचावनि हारे हैं' और उनकी माया से सभी डरते हैं, 'सिव चतुरानन जाहि डेराहीं।' यह देवता स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'भव प्रवाह संतत हम परे।' इनमें इन्द्र सबसे अधिक कुटिल और स्वार्थी हैं। इन देवताओं में केवल सरस्वती और गणेश अब भी हमारी श्रद्धा के पात्र हैं। अन्य देवताओं का कोई व्यक्तित्व नहीं है। वे भगवान की बिनती करते हैं और उन पर फूल बरसाते हैं।

वैदिक देवताओं के साथ 'त्रिदेव' का भी मानस में समावेश है। इनमें ब्रह्मा की स्थिति सबसे गौण है और शिव और विष्णु प्रमुख हैं। शिव और विष्णु में अविरोध दिखाया गया है। ये दोनों एक दूसरे के प्रेमी हैं। तुलसीदास ने इनका पारस्परिक प्रेम दिखाकर दो प्रधान

धार्मिक मतवादों में सामंजस्य स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण चेष्टा की है। शिव की सेवा से ही रामभक्ति प्राप्त होती है—'सिव सेवा कै सुनु फल सोई, अविरल भगति राम पद होई।' स्वयं श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि शिवद्रोही मुझे अच्छा नहीं लगता, 'सिव द्रोही मम दास कहावै, सो नर सपनेहुँ मोहि न भावै।'

इस धार्मिक सामञ्जस्य के संबंध में लेखक का कहना है कवि इसमे राजनीतिक भावना से परिचालित हुआ—"वैष्णव और शैव में अनिवार्य रूप से सामञ्जस्य की राजनीतिक भावना से परिचालित होकर, तुलसीदास प्रायः शिव को सर्वोच्च देवता के रूप में चित्रित करते हैं।" वास्तव में इस सामञ्जस्य के मूल में कोई राजनीतिक भावना न होकर वैष्णवता की उदार-प्रवृत्ति है जो विष्णु को सर्वोच्च देवता मानती हुई भी अन्य देवताओं में कोई भेद-भाव नहीं रखती।

मानस में सर्वोच्च स्थान राम का है। हरि के रूप में उल्लेख होने पर भी वे हरि से बड़े हैं, परात्पर ब्रह्म हैं, 'विधि हरि संभु नचावनि हारे' हैं। वे अद्वैत ब्रह्म के सगुण रूप हैं। नर शरीर धारी राम और निर्गुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं। ये राम दुष्टों के विनाश और भक्तों की रक्षा के लिए अवतरित होते हैं। भक्तों के प्रेमवश यह अवतार लेते हैं—'भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तन भूप।' राम की माया से उत्पन्न होकर सभी राम में समाविष्ट हो जाते हैं। रावण का निधन होने पर उसके शरीर से तेज निकल कर राम में समा गया। इस प्रकार सब कुछ उस अद्वैत सत्ता से प्रसूत होकर उसी में मिल जाता है।

यह मिलन या 'लय' ही मुक्ति है। मुक्ति के सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य सालोक्य आदि कई रूप हैं। भगवान का भक्त 'भेद-भक्ति' को अपनाने के कारण मुक्ति की कामना नहीं करता। भगवान की लीला में ही उसे आनंद मिलता है, वह मोक्ष नहीं लेता—'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं।'

राम और कृष्ण के बालरूप की उपासना का वैष्णव काव्य में जो इतना प्रचुर वर्णन मिलता है वह सर्वथा विलक्षण और मौलिक है। ऐसा और कहीं नहीं मिलता। लेखक का कथन है कि जैसा प्रेम हिंदू, "बालक राम और कृष्ण के बालरूप के प्रति प्रकट करते हैं, न तो किसी भी भोली-भाली जाति में और न उच्चतम विकसित धार्मिक मतवाद में प्राप्य है।"

जन्मान्तर-वाद हिंदुओं के धार्मिक विश्वास की विशेषता है। कर्म का सिद्धान्त इसकी आधार-शिला या प्रेरक है और आवागमन के चक्कर से छुटकारा या मुक्ति पाना हिंदू धर्म का चरम उद्देश्य है। सृष्टि के क्रम में अनन्त जीव अनेक योनियों में अपने कर्मों से प्रेरित होकर भ्रमित होते रहते हैं। इनमें केवल मनुष्य ही ऐसा है जो अपने को संसार-चक्र से मुक्त करने की सम्भावना रखता है, वह विरलरूप से ज्ञान के माध्यम और सुगम रीति से भक्ति के द्वारा माया से मुक्त हो सकता है। मनुष्य का चरम पुरुषार्थ भगवत्प्रेम की प्राप्ति है, ईश्वर ने इसीलिए करुणा से द्रवित होकर उसे मनुष्य का शरीर दिया है। इस नर-शरीर की सार्थकता विषय भोग में न होकर परोपकार और भक्तिपथ के अनुसरण में है। इस प्रकार तुलसी ने राम-भक्ति को मानव के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठत किया।

तुलसी के धार्मिक विचारों के अन्तर्गत लेखक ने मानस में प्राप्त हिंदू धर्म की मुख्य बातों का संक्षेप उल्लेख किया।

'तुलसीदास के सामाजिक एवं नैतिक कथन' शीर्षक अध्याय में बहुत ही संक्षेप में कवि के सामाजिक विचारों का संकेत दिया गया है। लेखक ने बताया है कि तुलसी दास कट्टर सामाजिक व्यवस्था के पोषक हैं और हिंदू समाज की वर्णव्यवस्था के समर्थक हैं। इसके साथ ही लेखक यह भी कहता है कि कवि ने समकालीन वैष्णवता की जनात्मक प्रवृत्तियों का भी समावेश किया है और बताया है कि राम केवल प्रेम के

ही सम्बन्ध को मानते हैं। उनके सामने न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा।

इस सम्बन्ध में लेखक का निष्कर्ष यह है कि "इस प्रकार तुलसीदास के सामाजिक दृष्टिकोण में स्पष्ट विरोध या विषमता है।"*

---

* यों तो तुलसी के वर्ण-व्यवस्था के समर्थन में सामाजिक भेद-भाव की कट्टरता और समानता के सिद्धांत के प्रचार के बीच आत्म-विरोध का आभास होता है, किंतु ऐसा है नहीं क्योंकि तुलसी ने दोनों के क्षेत्र अलग कर दिये हैं और वे दो विभिन्न सिद्धान्तों का दो विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग करते हैं। वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा समाज के दिन प्रतिदिन के लौकिक सम्बन्धों के बीच मान्य है। वहाँ पर वे समाज के विभिन्न स्तरों और अनेक रूपात्मक सम्बन्धों का निराकरण नहीं करते। इसके विपरीत समानता का सिद्धान्त उन्हें केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही मान्य है। यह समानता की दृष्टि केवल उन लोगों के प्रति है जो संसार से ऊपर उठ चुके हैं, साधु या भक्त हो गये हैं। ऐसे लोग जो कि संसार को मिथ्या समझकर उससे विमुख होकर ईश्वरोन्मुख हो गये हैं उनसे समाज उनकी जात-पांत न पूछेगा। वे चाहे जिस जात के रहे हों, भक्त या साधु हो जाने पर उनको उतना ही आदर और सम्मान प्राप्त होंगे जितना किसी दूसरे साधु को जो कि पहले ब्राह्मण था। इस प्रकार भक्तों की श्रेणी में सभी भक्त समाज द्वारा समान आदर के अधिकारी रहेंगे। किंतु जो उच्च आध्यात्मिक भूमि पर नहीं पहुँचे हैं, संसार के बन्धनों में पड़े हैं उनका शासन या अनुशासन समाज के प्रतिष्ठित नियमों के आधार पर ही होगा, उन पर वर्णाश्रम धर्म के नियम लागू होंगे। हिन्दू समाज के बीच आज भी ऐसा ही देखने को मिलता है। हमारे नैतिक संबंध तो वर्णाश्रम धर्म के आधार पर ही निर्धारित होते हैं; किन्तु जब कोई साधु या महात्मा आ जाता है तो हम उसकी अभ्यर्थना करते हैं। उसके चरण धोते हैं चाहे पहले वह किसी वर्ण का

तुलसी का पक्ष बिल्कुल स्पष्ट है। तुलसीदास हिंदू समाज के वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के कट्टर समर्थक हैं। वे इसे आदर्श व्यवस्था समझते हैं और इसमें किसी प्रकार की शिथिलता या इसकी अवहेलना उनको सह्य नहीं है। राम राज्य की आदर्श स्थिति में लोग इसी वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं और सुखी होते हैं—सब 'चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीती।' इसी प्रकार—

'बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय सोक न रोग॥ *

इसी वर्णाश्रम धर्म के पालन में जब शिथिलता दिखाई पड़ती है तो वे इस पर दुख प्रकट करते हैं और उनकी निंदा करते हैं। कलियुग के वर्णन में इन्होंने उस व्यापक अव्यवस्था और उथल-पुथल का चित्रण किया है जो समाज और परिवार के प्रत्येक क्षेत्र में छा गयी थी। वे कहते हैं कि प्रत्येक वर्ण अपने धर्म या कर्त्तव्य के पालन से च्युत हो रहा है। ब्राह्मण विद्या विहीन हैं, 'बिप्र निरच्छर' हैं, जिस प्रकार 'द्विज स्रुति बंचक' हैं उसी प्रकार राजा रक्षक न होकर प्रजा का भक्षक है, 'भूप प्रजासन'। शूद्र सेवा करने के स्थान पर 'बिप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं'। समाज की मर्यादा नष्ट हो रही है। अपनी ढपली अपना राग है, 'मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा'। लोग नये सम्प्रदाय या 'पंथों' की सृष्टि कर रहे हैं, 'कल्पहि पंथ अनेक' और :—

क्यों न रहा हो और उससे प्रसाद पाकर कृतकृत्य होते हैं। इस प्रकार वर्ण-भेद और समानता के सिद्धान्त के क्षेत्र अलग हो जाते हैं और उनके प्रयोग में आत्म-विरोध नही प्रतीत होना। इसे लेखक ने भी लक्षित किया है। उसका कथन है कि "सामाजिक समानता (बराबरी) का सिद्धान्त उनके (तुलसी) द्वारा केवल उच्चतर पक्ष में ही स्वीकृत हुआ है।"

* उत्तर०, दो० ४३, पृ० ६८१।

'बरन धरम नहिं आश्रम चारी, श्रुति विरोध रत सब नर नारी।'

परिवार के, जिस पर कि समाज टिका हुआ है, सम्बन्धों में भी शिथिलता दिखाई पड़ती है। माता पिता की प्रतिष्ठा विवाह होने के पूर्व तक ही है। विवाह होते ही 'रिपु रूप कटुम्ब भए तब ते'। यह अनुशासन-हीनता सभी क्षेत्रों में है। जिसे जो न करना चाहिए वही वह कर रहा है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ 'बिभूषन हीना' हैं और विधवन्ह के सिंगार नवीना'। तपस्वी जिन्हें त्यागी होना चाहिए, धन-संचयी हैं और गृहस्थ दरिद्र हैं — 'तपसी धनवन्त दरिद्र गृही हैं'। सामाजिक अव्यवस्था के इस चित्रण में तुलसीदास किसी वर्ण को क्षमा नहीं करते, वे सबकी कर्त्तव्य-अवहेलना की निंदा करते हैं। सामाजिक अव्यवस्था का विस्तृत चित्रण करते हुए तुलसी दास उसकी मर्यादा की पुनःप्रतिष्ठा वर्णाश्रम धर्म के आधार पर ही करते हैं। वे वर्ण व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते हैं। कट्टरता के समर्थक-रूप में वे हमारे सामने आते हैं।

तुलसीदास का यह कट्टर दृष्टिकोण केवल ब्राह्मणों के उच्चाधिकारों की रक्षा में ही नहीं, वरन् शूद्र तथा नारी की निम्नस्थिति में भी व्यक्त होता है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक अनुशासन या social discipline के नाम पर तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण का समर्थन किया है। वास्तव में हमारा उद्देश्य खडन या मंडन न होकर तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति, सामाजिक संबंध तथा उनके मूल का अध्ययन होना चाहिए, क्योंकि तुलसी को हमारे समर्थन या खंडन की कोई अपेक्षा नहीं है।

तुलसी ने ब्राह्मण, शूद्र, नारी आदि की स्थिति, समाज के संघटन, नेता तथा राजा (तथा गुरु) के कर्त्तव्य, पिता तथा पति के अधिकार, उत्तराधिकार की व्यवस्था और सामाजिक शिष्टाचार तथा मर्यादा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें उनका विश्वास होते हुए भी ये सब कथन उनके अपने नहीं हैं। इनमें से अधिकांश कवि को

परम्परा रूप में प्राप्त हुए हैं और कवि सामाजिक एवं नैतिक कथनों पर मध्ययुगीन भावना की स्पष्ट छाप है। यहाँ पर यह भी कह देना चाहिए कि इनमें से अधिकांश आज भी समाज में पूर्ववत् हैं।

हिंदू समाज में ब्राह्मणों की उच्च स्थिति तथा शूद्रों की निम्न स्थिति की भावना कई शताब्दियों से चली आ रही थी। मध्ययुग में तो यह भावना और भी दृढ़ थी। जिस प्रकार मध्ययुग 'ईस अंस भव नृपति कृपाला' कह कर राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था, उसी प्रकार ब्राह्मण पृथ्वी पर साकार देवता के रूप में मान्य था। वह भूसुर, भूदेव की उपाधि से विभूषित था। राम के राज्याभिषेक की घोषणा के पहले दशरथ वशिष्ठ का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। ब्राह्मण की अधिकारपूर्ण स्थिति का इसी में पता लग जाता है। ब्राह्मण की अवमानना रामचन्द्र को अच्छी नहीं लगती—'मोहि न सुहाई ब्रह्म कुल द्रोही'। जो ब्राह्मण की निष्कपट सेवा करता है उसके बस में शिव, ब्रह्म तथा राम सभी हैं—

"मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत विरञ्चि शिव, बस ताके सब देव॥"*

शूद्र और नारी दोनों की स्थिति निम्नतम है। 'शूद्र गवाँर ढोल पसु नारी' इसे स्वयं स्पष्ट कर देता है। काकभुशुण्डि अपनी पूर्व जन्म की कथा के सम्बन्ध में निम्न जाति के विषय में कहते हैं:—

---

* ब्राह्मण के अधिकारों की रक्षा करते हुए तुलसीदास ने जो यह कहा है कि ब्राह्मण सब विधि पूजनीय है, वह भी परम्परा प्राप्त है। ब्राह्मण की अवध्यता की भावना भी प्राचीन है। तुलसीदास का यह कथन कि

'पूजिय बिप्र सील गुन हीना। शूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना॥'

यद्यपि उनकी कट्टरता को प्रकट करता है फिर भी यह चाणक्य के कथन का अनुवाद है—पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो, न च शूद्रो जितेंद्रियः।

'अधम जाति मैं विद्या पाये। भयउँ जथा अहि दूध पिलाये॥'
'सूद मानै लतियाये' यह कहावत अभी तक चली आ रही है। मध्ययुग कि 'रजील' की भावना इसी प्रकार की थी और मुसलमान शासक निम्न जनता का मुख नहीं देखना चाहते थे।

इसी प्रकार नारी की निम्नस्थिति भी उसी युग की भावना है। उस युग में नारी के कोई अधिकार नहीं थे। पति के सम्बन्ध से ही उसकी प्रतिष्ठा निर्धारित होती थी। यह मान्य सिद्धांत था कि कन्या-रूप में पिता के शासन में, विवाह होने पर पति के अधिकार में और विधवा होने पर वह पुत्र के अधीन रहती है। वह कभी स्वतन्त्र नहीं। स्वतंत्र होने पर तो वह बिगड़ जाती है—'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी'। वह तो 'सहज अपावनि नारि', शबरी के शब्दों में 'अधम ते अधम अधम अति नारी'। नारी सम्बन्धी उपरोक्त सभी भावनाएं मध्ययुग की उपज हैं।

इसी प्रकार समाज संघटन और संचालन के संबंध में तुलसी की अगांगि भाव की जो कल्पना है वह भी काफी प्राचीन है। जिस प्रकार चारों वर्ण उस 'पुरुष' के विभिन्न अंग हैं उसी प्रकार विभिन्न वर्ण 'समाज-शरीर' के अंग हैं। सर्वोच्च वर्ण मुख की तरह है, नेता है और सेवक शरीर के हाथ पैर और नेत्र के समान हैं। मुखिया को चाहिए कि वह वस्तुओं को ग्रहण करके अन्य अवयवों को विवेक के साथ पुष्ट करे—

मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कह एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक॥
सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति भलि, सुकवि सराहहिं सोइ॥*

मुख तथा अन्य अवयवों की लड़ाई की कथा का उल्लेख रोम

---

* अयोध्या०, दो० ३१६, पृ० ६२८।

के इतिहास में (Plebians) 'प्लीबियन' और 'पैट्रीशियन (Patricians) के अधिकारों के द्वन्द के बीच भी. मिलता है। जिस प्रकार समाज के चार वर्णो की कल्पना 'पुरुष सूक्त' से जुड़ी है उसी प्रकार यह कथा भी काफी पुरानी है। तुलसी का उपरोक्त कथन समाज के विभिन्न अवयवों के बीच पारस्परिक सामञ्जस्य की आवश्यकता को प्रतिपादित कर समाज के सम्यक् संचालन का मार्ग प्रदर्शन कर रहा है और साथ ही समाज की उच्च स्थिति पर विद्यमान लोगों को शेष के प्रति अपने उत्तरदायित्व से अवगत करा रहा है।

नेता के समान राजा के भी कतिपय कर्त्तव्य हैं। राजा यद्यपि पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है, 'ईस अंस भव नृपति कृपाला', फिर भी वह नियमों से मुक्त नहीं है। वह अपनी प्रजा का पिता है। 'प्रजा' का अर्थ ही संतान है। राजा की पिता-रूप में कल्पना 'कुल ज्येष्ठ' (Patriarch) की भावना से संयुक्त है जो कि काफी प्राचीन है। प्रजा का पालन राजा का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। कलियुग वर्णन में तुलसी कहते हैं कि 'नृप पाप परायन धर्म नहीं, करि दंड विडंब प्रजा नित हीं'। तुलसी का यह कथन राजनीतिक उथल-पुथल के युग में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी सो नृप अवसि नरक अधिकारी। तुलसी का यह वर्णन स्वतत्रंता के संग्राम के बीच जनता को बहुत बल देता रहा है—

अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के वसहिं अमर पुर ऐन॥+

इसी प्रकार कवि का यह निर्णय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वह राजा शोचनीय है जिसे अपनी प्रजा प्राणोपम प्रिय नहीं है—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना

परिवार में पिता और पति के अधिकार सर्वाधिक हैं। संतान के

+ अयोध्या०, दो० १७५, पृ० ५०१।

लिए पिता और स्त्री के लिए पति ही सब कुछ है। पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय है और वही 'धरम-करम' है—'पितु आयसु सब धरमक टीका' तथा स्त्री के लिए पति की आज्ञा का अनुसरण ही सब कुछ है–नारि धरम पति देव न दूजा। पितृ भक्ति तो भारतीय संस्कृति में अत्यन्त प्राचीन है, 'पितृ देवो भव', और पति-भक्ति मध्ययुग की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के बीच और भी दृढ़ हुई।

उत्तराधिकार की व्यवस्था भी पिता की इच्छा पर निर्भर करती है। सामान्यतया उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त होता है। राजा दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि उन्होंने बड़े-छोटे का ध्यान करके ही बड़े पुत्र राम के युवराज्याभिषेक की घोषणा की थी—अन्यथा राम को राज्य का कोई लोभ नहीं है—

लोभ न रामहिं राज कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय, करत रहेहुँ नृपनीति ॥" *

किन्तु यह तो 'नृपनीति' है। यदि पिता चाहे तो उत्तराधिकार का क्रम बदल सकता है और बड़े को पदच्युत कर छोटे को अधिकार दे सकता है। पिता की सहमति ही उसे वैध बना देती है। राजा दशरथ के निधन पर वशिष्ठ भरत से राज्य करने की बात कहते हुए व्यवस्था देते हैं कि जिसे पिता दे उसी का अधिकार वैध है, और वह वेदविहित भी है—"वेद विहित संमत सब ही का, जेहिं पितु देइ सो पावइ टीका।"० इसी प्रकार भरद्वाज ऋषि भी भरत से कहते हैं कि यदि वे राज्य करते तो भी उनको दोष न लगता—'करतेहु राजु त तुम्हहिं न दोषू', क्योंकि लोकमत और वेदमत यही है कि जिसे पिता राज दे उसी को मिले—

लोक बेद संमत सब कहई, जेहि पितु देइ राजु सो लहई। +

---

* अयोध्या, दो० ३२, पृष्ठ ३७६।

० „ चौ० २, पृष्ठ ५०२।

\+ „ „ २ „ ५२९।

इस प्रकार उत्तराधिकार की जो व्यवस्था तुलसी ने चित्रित की है वह उनके युग तथा समाज की मान्य व्यवस्था है और बहुत-कुछ इसी रूप में आज भी प्रचलित है।

सामाजिक शिष्टाचार और सामाजिक मर्यादा का जो स्वरूप तुलसी के युग में मान्य था उसका तिरस्कार उनको सह्य नहीं है— 'सापत ताड़त परुष कहंता' भी ब्राह्मण पूज्य है।

पिता की आज्ञा का पालन 'अनुचित उचित बिचारु तजि' होना चाहिए; गुरू की अवमानना दंडनीय है, नहीं तो 'भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा'; पति का अपमान किसी स्थिति में भी मार्जनीय नहीं है—

बृद्ध रोग बस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥+

इस प्रकार तुलसीदास अपने कथनों द्वारा स्पष्टतया परम्परा प्राप्त सामाजिक व्यवस्था के कट्टर समर्थक के रूप में सामने आते हैं। उन्होंने कट्टरता का पक्ष लिया है और उनको तत्कालीन प्रचलित सामाजिक व्यवस्था, मान्यताओं एवं मर्यादाओं का उल्लंघन कदापि सह्य नहीं है। यद्यपि तुलसीदास यह अवश्य चाहते हैं कि प्रत्येक वर्ण अपने धर्म का पालन करे, और जब वह इसके विपरीत देखते हैं तो वह सभी वर्णों की कटु आलोचना करते हैं, फिर भी समाज के बीच वर्णों की उच्च एवं नीच पद की जो व्यवस्था है वह उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते। समाज में ब्राह्मण हर हालत में उच्च पद का अधिकारी रहेगा और शूद्र का स्थान निम्न है। तुलसी के विचारों की वस्तु स्थिति यही है, इसे चाहे उनकी कट्टरता कही जाय या सामाजिक अनुशासन-प्रियता। तुलसी के ये विचार मानस में इतनी जगह और इतनी विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त हुए हैं कि इन सबको बाद में ब्राह्मणों द्वारा अपने को ऊँचा उठाने के प्रयत्न-रूप जोड़ा हुआ या 'प्रक्षिप्त'

+ अरण्य० चौ० ४-५, पृ० ६४६।

कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। समाज का ढाँचा कई शताब्दियों से ज्यों का त्यों है। इसलिए कट्टरता की उक्तियों की भी अपनी परम्परा बन गयी है।

लेखक का यह अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त है। इसके बाद दो और छोटे अध्याय हैं—'तुलसी-कृत रामायण—ऐतिहासिक स्तम्भ के रूप में' और 'अनुवाद के स्वरूप के विषय में'। 'ऐतिहासिक स्तम्भ के रूप में' शीर्षक अध्याय में मानस को उस युग की पृष्ठभूमि में रखकर उस युग से उसके संबंध को दिखाने के लिए उन उक्तियों का संकलन किया गया है जिनसे तुलसीदास के युग की कुछ झलक मिलती है। इसमें तत्कालीन भारत के चित्र का आभास मिलता है। इस अध्याय में लेखक ने अपनी ओर से अधिक न कहकर उन उद्धरणों को संगृहीत किया है जिनमें तुलसीदास मुसलमान शासकों की ओर से हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार और हिन्दू समाज की विच्छिन्नता का वर्णन करते हैं। इस अध्याय में आयी हुई उक्तियों पर कई स्थलों पर विचार किया जा चुका है।

'अनुवाद के स्वरूप के विषय में' शीर्षक अन्तिम अध्याय में लेखक ने रूसी पाठकों के समक्ष अनुवाद संबंधी कठिनाइयाँ और विशेषताओं का उल्लेख किया है। यह अध्याय मुख्यतया रूसी पाठकों के लिए है। इससे अनुवाद की विशेषता तथा लेखक के परिश्रम और अध्यवसाय का आभास हम लोगों को भी मिल जाता है।

बरान्निकोव की भूमिका के इन अध्यायों में* मुख्य प्रतिपाद्य विषय

---

* इन अध्यायों पर विहंगम दृष्टि डालने से ही भूमिका भाग की सर्वांगीणता लक्षित हो जाती है। इन अध्यायों की विवेचना लेखक के अध्ययन, अध्यवसाय तथा मौलिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देती है। जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है बरान्निकोव के इस लेख का सा विस्तार तथा विवेचन अन्य योरोपीय विद्वानों के तुलसी संबंधी

लेखों में नहीं है। तुलसी के संबंध में सर्वप्रथम उल्लेख गार्सां द तासी द्वारा हिन्दुस्तानी के इतिहास में हुआ है। किन्तु वह अधिकांश में तुलसी के जीवन-वृत्त से ही संबंधित है और अत्यन्त सीमित है। ग्रियर्सन ने अवश्य तुलसी संबंधी अपनी खोजों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है और उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। काव्य तथा दर्शन संबंधी उल्लेखों से पूर्ण होते हुए भी उसमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत न्यून है। इसी प्रकार ग्राउज़ ने रामचरितमानस के अँग्रेजी रूपान्तर की भूमिका में, उसने काव्य, दर्शन, लोकप्रियता आदि विषयों पर विस्तार से लिखा और उसका स्वागत भी हुआ; फिर भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन पर्याप्त नहीं है। कारपेंटर ने थीज्म इन मेडिवल इंडिया में भक्ति की व्यापक भारतीय पृष्ठभूमि में तुलसी के दर्शन तथा भक्ति की सारगर्भित विवेचना की है, फिर भी वह एकांगी है। ग्रीव्ज तथा केई ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में तुलसीदास की लोकप्रियता का संकेत दिया है। इन दोनों लेखकों के इतिहास ही अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इसलिए तुलसीदास का उल्लेख भी अनिवार्यतः संक्षेप में ही हुआ है। आधुनिक समय में हिल ने मानस के अँग्रेजी रूपान्तर की भूमिका में मानस के कई पक्षों पर विचार किया है और तुलसी के जीवन वृत्त पर भी प्रकाश डाला है। इन लेखकों में हिल का विवेचन सबसे अधिक गंभीर, व्यापक एवं विद्वतापूर्ण है, यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसमें भी पूरा पूरा विचार नहीं हो सका है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि इन विद्वानों के ग्रंथों की सीमाएँ बताकर मेरा यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि इन लेखकों के प्रयास की महत्ता का निराकरण हो या उसको अस्वीकार किया जाय। ग्रियर्सन आदि लेखकों की विवेचनाओं का अत्यधिक महत्व है और उनका योगदान स्तुत्य है। मेरा केवल इतना ही कहना है कि बराज्ञीकोव की भूमिका में काफी विस्तार है और सर्वांगीणता का प्रयास है।

की विवेचना के साथ ही साथ लेखक ने इन्हीं अध्यायों में मानस तथा उसके कवि की लोकप्रियता एवं उसके व्यापक प्रभाव का उल्लेख और उसके कारणों का भी निर्देश किया है। कवि के व्यापक प्रभाव का तथ्य उसकी आँखों से ओझल न रहा। उसका यह कथन युक्तियुक्त है कि "उनका (तुलसीदास) नाम उत्तरी भारत की करोड़ाधिक जनसंख्या के विस्तृत भूभाग को सुविज्ञात है। वह समान रूप से भारत के अपढ़ किसानों के भी अत्यन्त निकट हैं जो उनकी रामायण की पंक्तियों का सुनकर पाठ करते हैं और भारतीय समाज के विद्वान ब्राह्मणों के भी उतना ही निकट हैं।" तुलसीदास का आसन प्रत्येक भारतीय के हृदय में अटल है और ऐसा इसलिए है क्योंकि उनकी महानतम कृति जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्त्ति एवं तुष्टि करती है। यह रचना जनता के आमुष्मिक भावनाओं को सन्तुष्ट करने के साथ साथ उसका संसार के बीच पथ-प्रदर्शन भी करती है, "सोलहवीं शताब्दी में रचित इस पुस्तक का महत्त्व कम न हुआ, प्रत्युत निवासियों की नज़रों में बढ़ता ही गया। यह पुस्तक विशेष रूप से जनता के दुख के समय में, या स्वतत्रंता के भारतीय युद्ध के युग में ऊँचो उठ जाती है।" फिर मानस जैसी इहलोक में सहायक और परलोक की पथप्रदर्शिका पुस्तक को व्यापक लोकप्रियता क्यों न प्राप्त होती ?

मनुष्य के व्यक्तित्व के समान 'मानस' का व्यक्तित्व भी अनेक-रूपात्मक है, और यही विविधता उसकी लोक-प्रियता का मूल कारण है। इस संबंध में किसी एक कारण को 'इदमित्थम्' रूप में उसी प्रकार नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिस प्रकार कि रज्जु के एक सूत्र को अलग कर उसे सर्वप्रधान नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार सूत्रों का समन्वित रूप उसकी शक्ति के सम्मिलित प्रभाव के रूप में प्रकट होता है उसी प्रकार मानस की लोक-प्रियता उसके अनेक उपकरणों के समन्वित प्रभाव के रूप में प्रकट हुई है। इसलिए केवल जनता के धार्मिक विश्वास, या राम के स्वरूप से कथा की संबद्धता

अथवा गम्भीर दार्शनिक विचारों की विवेचना या नैतिकता या कलात्मक उत्कृष्टता में से किसी एक को इस काव्य को लोकप्रियता का एक मात्र कारण नहीं माना जा सकता, यद्यपि ये अपने में काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए लोकप्रियता के मूल में उपकरणों के सम्मिलित प्रभाव को ही मानना समीचीन होगा। लेखक का यह कथन ठीक ही है कि सुन्दर कलात्मक रूप में अभिव्यक्त इसके नैतिक उद्‌गार भारत की कम शिक्षित और पूर्णतया अशिक्षित जनता के कंठ में जीवित हैं।" गंभीर दार्शनिक विचारों की सरल व्याख्या और उनकी उच्च (कोटि की) चित्रात्मकता ने मार्मिक भावातिरेक के मेल से इन विचारों के व्यापक प्रसार में सहायता दी।

इस प्रकार नैतिक पक्ष और काव्य (तथा कला) पक्ष का सुंदर समन्वय और मणिकांचन संयोग मानस के लोकव्यापी प्रसार का मुख्य कारण बन गया और उसने तुलसीदास को जनहृदय के सिंहासन पर अचल रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। ऐसा सुंदर संयोग यदा कदा ही होता है। तुलसी के व्यक्तित्व में कवि और भक्त प्रतिस्पर्धा के रूप में न आकर सहयोगी और पूरक के रूप में आये। इसी से मानस में काव्य का दुहरा लक्ष्य बराबर प्रस्तुत किया गया है। आदर्श की उच्चता और अभिव्यञ्जना की उत्कृष्टता, दोनों पर समान रूप से आग्रह दिखाया गया है। काव्य का प्रथम लक्ष्य 'सर्व हित' होना चाहिए—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सबकर हित होई।' *

तुलसीदास इतना कहकर संतुष्ट नहीं हो जाते; 'सब कर हित' से भक्त तो संतुष्ट हो जाता है, किन्तु कवि को केवल इतने से ही तृप्ति नहीं होती, क्योंकि नैतिक कथन मात्र उसका इष्ट नहीं है। भावपक्ष की उच्चता के साथ कलापक्ष का उत्कर्ष भी काव्य में उतना ही आवश्यक है। इसलिए नैतिक इष्ट के साथ कला की कसौटी भी प्रस्तुत

---

* बाल०, चौ. ५, पृ० २०।

की गयी है। काव्य सरस हृदय संवेद्य है, इसलिए रसिक उसका पारखी भी कहा गया है। उसका निर्णय ही काव्य की कसौटी है। जिस रचना का आदर 'बुधजन' नहीं करते, उसमें कवियों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। इसलिए तुलसीदास मानस-रचना के समय यह वरदान मांगते हैं कि साधु समाज में उनकी 'भनिति' का सम्मान हो—

होहु प्रसन्न देहु बरदानू, साधु समाज भनिति सनमानू।
जो प्रबध बुध नहिं आदरहीं, सो स्रम बादि बाल कवि करहीं ॥"*

कवि ने इस प्रकार नैतिकता और कलात्मकता की समन्वित दोहरी काव्य-कसौटी प्रस्तुत की जो तत्कालीन साहित्य जगत की अत्यन्त विलक्षण एवं क्रान्तिकारी घटना है।

काव्य के इस आदर्श को प्रतिष्ठित कर कवि अपना यह विचार व्यक्त करता है (जो कि काव्य के आचार्यों के निष्कर्ष के अनुकूल ही है) कि काव्य प्रतिभा प्रयत्न-साध्य न होकर ईश्वर-प्रदत्त है। भक्ति के समान यह भी ईश-कृपा के अधीन है। जिस पर ईश्वर की कृपा होती है उसके हृदय में काव्य की अधिष्ठात्री वाणी उसी प्रकार नृत्य करती है जिस प्रकार कि सूत्राधार के इशारे पर कठपुतली नाचती है—

"सारद दारुनारि सम स्वामी, राम सूत्रधर अन्तरजामी।
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी, कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥"**

इस प्रकार काव्य-प्रतिभा ईश्वर का वरदान है।

तुलसी ने काव्य की प्रक्रिया का भी संकेत दिया है जो यही प्रतिपादित करता है कि काव्य दैवी वरदान होने के साथ साथ दैवी विभूति है। काव्य का जन्म हृदय, बुद्धि और दैवी प्रतिभा के संयोग से होता है। हृदय की अनुभूति या संवेदना समन्वित बुद्धि को जब शारदा की

---

* बाल० चो. ४, पृ० २०।

** बालकांड, चौपाई ३, पृ० १०६।

कृपा से श्रेष्ठ विचार मिलते हैं तभी काव्य के मोती उपजते हैं अन्यथा नहीं—

हृदय सिंधु मति सीप समाना, स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जों बरसइ बर बारि बिचारू, होहिं कबित मुकतामनि चारू ॥ +

मानस रूपक के बीच कवि ने इसका स्पष्ट संकेत दिया है कि काव्य की मानसिक क्रिया किस प्रकार घटित होती है, काव्य का मानस किस प्रकार संपन्न होता है। यह मानस चर्म चक्षुओं से हृदयंगम नहीं होता, इसके लिए ज्ञान की अन्तर्दृष्टि चाहिए। इसमें अवगाहन करने पर जब कवि की बुद्धि विमल हो जाती है, हृदय आनंद के उत्साह से भर जाता है, तब प्रेम-प्रवाह के रूप में काव्य की सरिता इस मानस या मन से उमड़कर चल पड़ती है—

अस मानस मानस चष चाही, भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सी ॥०

इस काव्य-सरिता का मूल, रामयश के जल से परिपूर्ण मानस है। यह जल बुद्धिमार्ग से होता हुआ मानस (या अन्तर) में पहुँचकर सुस्थिर हो जाता है, और फिर इसी से काव्य सरिता निकलती है—

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधिघन साधू।
बरषहिं राम सुजस बरबारी।
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना।*

इस रूपक में तलस्पर्शनी बुद्धि और हृदय की 'अगाधता' या गहराई पर कवि की दृष्टि बराबर है। इस प्रकार कवि ने हृदय पक्ष और बुद्धि

+ ,, ,, ४-५, पृ० १७।

० ,, ,, ५, पृ० ४८।

* ,, ,, २-४-५, पृ० ४४।

पक्ष, दोनों का समान रूप से काव्य की प्रक्रिया में योग माना है। भावुकता और विवेचना दोनों का समन्वय उच्च काव्य की प्रतिष्ठा के मूल में है। 'सुमतिभूमि' तथा 'मेधामहिगत' में बुद्धि के आधारभूत-स्वरूप का संकेत देकर उसका ठोस महत्त्व स्वीकार किया गया है यद्यपि कवि यह स्पष्ट कर देता है कि यह बुद्धि हृदय से विमुख नहीं है। बुद्धि हृदय सागर में सीप के समान है। 'हृदयसिंधु' और 'हृदय अगाधू' भाव पक्ष या हृदय पक्ष की व्यापकता और गहराई को व्यंजित कर रहे हैं।

इस प्रकार कवि के 'मानस' ने काव्य को जन्म दिया। यह शंभु की कृपा से ही संभव हुआ। शिव की कृपा से जब सद्बुद्धि का आनंदपूर्ण प्रकाश हुआ तभी तुलसी रामचरितमानस का कवि हुआ:—

'संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, रामचरित मानस कवि तुलसी।'०

इस प्रकार काव्य की दैवी विभूति ईश्वर का वरदान है।

ऐसी उच्च विभूति का निम्न उद्देश्यों की ओर नियोजन उसका दुरुपयोग है। उससे उच्च लक्ष्य की ही साधना की जानी चाहिए। तुलसी की दृष्टि में सर्वोच्च लक्ष्य राम की भक्ति है। राम उच्चता, शुद्धता और पवित्रता के प्रतीक हैं, उनका नाम ही हमारे हृदय की उदात्त वृत्तियों को जगाने में समर्थ है। इसी से नैतिक भावना से प्रेरित होकर (और राम-नाम के रसोद्रेक की क्षमता को पहचान कर) तुलसीदास इस सीमा तक चले जाते हैं और कहते हैं कि सुकवि का चमत्कारी काव्य यदि राम-नाम से विहीन है तो वह शोभाहीन ही है और राम-नाम से संयुक्त सामान्य काव्य भी सम्मान्य है—

"भनिति बिचित्र सुकविकृत जोऊ, रामनाम बिनु सोह न सोऊ।
सब गुन रहित कुकवि कृत बानी, रामनाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही, मधुकर सरिस संत गुन ग्राही॥"*

---

० बाल० चौ० १, पृ० ४४।
* बाल० चौ० २, ३, पृ० १५।

तुलसी के इस कथन में केवल नैतिकता का ही आग्रह नहीं है, प्रत्युत् काव्य की वस्तु-विषय की उच्चता या उदात्तता पर भी जोर दिया गया है। तुलसी की दृष्टि में कवि के लक्ष्य और काव्य के वस्तु-विषय दोनों ही को उदात्त होना चाहिए। तुलसी की दृष्टि में मानव का सर्वोच्च लक्ष्य भक्ति है। कवि के मतानुसार जब लक्ष्य उच्च होता है, अर्थात् जब वह भक्ति के 'भावन व्यापार' में प्रवृत्त होता है तो काव्य की अधिष्ठात्री शारदा ब्रह्मलोक से उसकी सहायता के लिए दौड़कर आती है। सरस्वती के श्रम का परिहार तभी होता है जब कवि उसे रामचरित के सरोवर में स्नान कराता है अर्थात् जब काव्य-प्रतिभा उच्च लक्ष्य की साधना में प्रवृत्त होती है तभी काव्य की सच्ची सार्थकता है। उसके विपरीत जब कवि अपने इस उच्च उत्तरदायित्व को भूलकर अर्थ या यश-प्राप्ति के हेतु सामान्य नर-नारियों के प्रशंसात्मक वर्णन में अपनी काव्य-प्रतिभा को लगाते हैं तो वह उसका अपव्यय है और सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है—

'भगति हेतु विधि भवन बिहाई, सुमिरत सारद आवत धाई।
राम चरित सर बिनु अन्हवाये, सो स्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबिकोविद अस हृदय बिचारी, गावहिं हरि जस कलिमल हारी।
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।'÷

तुलसी के उपरोक्त उद्गार बड़े ही क्रान्तिकारी हैं। इन शब्दों में सदाशयता पर तो आग्रह है ही, किन्तु उसके साथ कवि की स्वतंत्रता का भी उद्घोष है'। इन शब्दों में उन कवियों की आलोचना भी है जो चंद टुकड़ों पर अपने को बेचने को तय्यार हैं। कवि ने बड़े साहस के साथ उन कवियों की आलोचना की है जो उस युग में 'प्राकृत जन गुन गान' में प्रवृत्त थे। तुलसी का युग 'दरबारी' तथा 'राज्याश्रित' कवियों का था, उस युग के बीच तुलसी का यह कथन और भी महत्त्वपूण

÷ बाल चौ० २, ३, ४, पृ० १७।

हो जाता है। अपने युग के साहित्य जगत की आलोचना कर तुलसी सब युगों के लिए कवियों को आत्म-स्वातंत्र्य (या चाटुकारिता से बचने) की चेतावनी दे गए।

तुलसी के संबंध में स्वान्तःसुखाय* को पूर्णतया ऐकान्तिक

---

* तुलसी का 'स्वान्तःसुखाय' का उद्घोष भी कवियों के आत्म-स्वातंत्र्य की ही बात कह रहा है। इसमें स्वतंत्रता के साथ हृदय की सत्यानुभूति या सच्चाई का सिद्धान्त भी प्रतिपादित है। 'स्वान्तःसुखाय' से यही तात्पर्य है कि कवि अपने अन्तस या मन के सुख के लिए गाता है या उसे गाना चाहिए; जिसमें उसे सुख मिलता है या जिसमें उसका मन रमता है उसी को अपने उद्गारों का विषय बनाना चाहिए, इस प्रकार यह कवि की अनुभूति की ईमानदारी या सच्चाई की बात ठहरती है। यह तो स्पष्ट ही है कि जिस वस्तु-विषय या भाव में कवि का मन लीन नहीं होता उसे सुख नहीं मिलता या उसकी तृप्ति नहीं होती, वह उच्च काव्य का आधार नहीं बन सकता। इस प्रकार उच्च काव्य की सृष्टि के हेतु ही स्वान्तःसुखाय का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है अर्थात् उत्कृष्ट काव्य के लिए आवश्यक है कि कवि वस्तु-चयन के संबंध में स्वतंत्र रहे और वह काव्य वस्तु कवि के मन के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में, काव्य-रचना कवि के अपने अन्तस (स्वान्तः) से संबद्ध है, उसे फैशन या फरमाइश के रूप में प्रस्तुत करना ठीक नहीं। कवि के पास केवल एक ही शक्ति है और वह शक्ति शब्दार्थ की है। यही उसका बल है और यही उसकी सामग्री है और वह इसी से बँधा है। भावाभिव्यक्ति के व्यापार में कवि को केवल शब्द और अर्थ का ही सहारा है। वह इनसे बाहर नहीं जा सकता और न किसी अन्य माध्यम का अवलंब प्राप्त कर सकता है। कवि की मति को शब्दार्थ के घेरे में बँधकर उसका उसी प्रकार अनुसरण करना पड़ता है जिस प्रकार नट को ताल के अनुरूप हीनाचना पड़ता है और

कहकर समाज के इष्ट या श्रेयस् से सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता; क्योंकि तुलसी ने ऐसा नहीं दिया है। तुलसी का 'स्व' संकुचित नहीं है। उसके सुख में सब का सच्चा सुख निहित है। कवि इस प्रकार के जीवन या 'रहनि' की कई स्थलों पर कामना कर चुका है कि वह दूसरों के सुख से सुखी और दूसरों के दुख में दुखी हो, अर्थात् उसके हृदय का जन-हृदय से साधारणीकरण हो जाय। अपने को बंधनों में न बांधता हुआ भी कवि काव्य की प्रक्रिया तथा काव्य की आवश्यकताओं से अवगत है। 'स्वान्तःसुखाय' या अपने अन्तस् के सुख की बात कहता हुआ भी वह 'अपने में ही मगन' रहनेवाला जीव नहीं है, क्योंकि वह कवि है और कवि होने के नाते वह जानता है कि काव्य की सार्थकता तभी है जब कि उसकी अपनी बात सबके हृदय की बात बन जाय, उसका काव्य जन-मन में उन्हीं भावों का प्रेषक और उद्‌बोधक या उद्‌भावक बन जाय जो कि कवि के अन्तस में हैं। कवि इस प्रकार काव्य का जो सामाजिक पक्ष है या उसकी जो सामाजिकता है उससे भली भांति परिचित है। काव्य व्यक्ति की निजी कृति होते हुए भी अपने में सम्पूर्ण नहीं है, उसे श्रोता, पाठक या दर्शक की अपेक्षा है। उसे श्रोता, पाठक या दर्शक के हृदय तक पहुँचाना या हृदयंगम कराना भी आवश्यक है। ऐसा होने पर ही (कवि तथा) काव्य की पूर्ण सार्थकता है। सर्जन के क्षणों में काव्य कवि की चीज है, सृष्टि हो जाने पर वह समाज की सम्पत्ति हो जाती है और कभी-कभी कवि के न चाहने पर भी कवि से अधिक समाज (श्रोता,

---

वह ताल सेबाहर नहीं जा सकता, तुलसी के मतानुसार कवि को केवल शब्दार्थ का ही सच्चा बल है—अरथ आखर-बल सांचा है—

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई, केहि छाया कवि मति अनुसरई।
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा, अनुहरि ताल गतिहिं नटनाचा ॥"

—अयो० चौ० २, पृ० ५६१।

पाठक या दर्शक) का उस पर अधिकार हो जाता है, और समाज काव्य के संबंध में कतिपय माँगें पेश करने लगता है। इनमें सर्वप्रथम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग यह है कि कवि के हृदय में जो भाव जगे हैं उनको कवि पारस्परिक विनिमय के सर्वोच्च सामाजिक साधन भाषा द्वारा सामाजिको के हृदय तक पहुँचा सके। 'प्रेषणीयता' का सिद्धान्त इस प्रकार काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त बन जाता है। 'प्रेषणीयता का यह सिद्धान्त ही काव्य का सामाजिक पक्ष है। तुलसी ने प्रेषणीयता के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को 'मनिमानिक मुकुता छवि' के द्वारा प्रतिपादित किया है। जिस प्रकार मणि, माणिक्य और मोती यद्यपि सर्प के सिर, खान और हाथी के मस्तक में जन्म लेते हैं फिर भी उनकी सार्थकता वहीं नहीं है। उनकी शोभा तभी द्विगुणित होती है जब वे राजा के मुकुट या तरुणी के शरीर का आश्रय या आधार पाते हैं। इसी प्रकार काव्य का जन्म यद्यपि कवि के हृदय में होता है (और वह अपने में भी काफी महत्त्वपूर्ण है) फिर भी उसकी सार्थकता तभी है जब उसे उपयुक्त आश्रय प्राप्त हो (यह सभी जानते हैं कि काव्य का आश्रय स्वयं कवि न होकर पाठक या सामाजिक या 'रसिक' है)। इसी से 'कवित्त' का जन्म तो एक जगह (कवि-हृदय में) होता है, किन्तु शोभा दूसरी जगह (पाठक के हृदय में) प्राप्त होती है—

"मानि मानिक मुकता छबि जैसी, अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी
नृप-किरीट तरुनी-तन पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई।
तैसइ सुकवि-कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ०

इस प्रकार तुलसी ने काव्य के सभी महत्वपूर्ण सिद्धान्तों एवं उसके शास्त्रीय पक्ष का मानस में पूर्ण प्रतिपादन किया। बालकाण्ड में मानस

---

० बालकांड, चौपाई १, २, पृ० १६, १७।

के रूपक में उन्होंने काव्य के अंगों का भी उल्लेख किया है * इसी से जब तुलसी काव्य की गंभीरता और अपनी निर्बलता का विज्ञापन करते हैं तो वह एक प्रकारान्तर से उनकी नम्रता का विज्ञापन बन जाता है, और वह उल्लेख यह भी बताता है कि काव्य के सभी पक्षों से तुलसी का परिचय है ।+

संक्षेप में कवि ने काव्य के अन्तरंग और बहिरंग, उसकी आत्मा और उसके शरीर, उसके व्यक्तिपरक रूप और उसके सामाजिक पक्ष, दोनों का सम्यक् ध्यान रखा और दोनों में सामञ्जस्य प्रतिष्ठित किया। सूत्ररूप में उन्होंने काव्य के संबंध में 'सब कर हित' और 'बुधजन, आदर आदरहिं सुजान' की उच्च भाव तथा उत्कृष्ट कला की दोहरी कसौटी प्रस्तुत की । इसी से तुलसी की ज्ञान-गरिमा प्रकट होती है और इसी में उनकी सफलता का रहस्य भी है ।

उनकी सफलता और लोकप्रियता का रहस्य एक अन्य तत्व में भी छिपा है । इसे हम कवि की व्यापक दृष्टि, सहानुभूति या उसकी मान-

---

*"राम सीय जस सलिल सुधा सम, उपमा बीचि बिलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई ।।
छंद सोरठा सुन्दर दोहा; सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा, सोइ पराग मकरंद सुबासा ।।
धुनि अवरेब कवित गुन जाती. मीन मनोहर ते बहु भाँती।
नवरस जप तप जोग बिरागा, ते सब जलचर चारु तड़ागा ।।"
बाल० चौ० २, ३, ४, ५, पृ० ४५ ।

+"कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू, सकल कला सब विद्या हीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना, छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना ।।
भाव भेद रस भेद अपारा, कवित दोष गुन विविध प्रकारा।
कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ।।"
बाल० चौपाई ४, ४, ६, पृ० १४ ।

वीयता कह सकते हैं। चित्रण में कवि चाहे 'यथार्थवादी' न हो, फिर भी वह यथार्थप्रेमी अवश्य है। इसी प्रकार उसकी सूक्ष्म-अन्तर्दृष्टि यद्यपि मानव हृदय के गहरे, विषम एवं अंधकारपूर्ण कक्ष का कोना कोना झाँककर उसका दृश्य हमारे सामने रख देती है, फिर भी वह मनुष्य की हँसी नहीं उड़ाती, उसे सहानुभूति के साथ ऊपर उठाता है। संसार को माया या भ्रम समझता हुआ भी वह इस भ्रम का यथ तथ्य चित्रण करता है और तब मनुष्य को इससे मुक्त होने का उपदेश देता है। इसी से कवि ने संसार के कष्ट और कष्टों मे पड़ हुए मनुष्य का सहानुभूति के साथ चित्रण किया है, और पारमार्थिक रूप में भ्रम होने पर भी उसकी पीड़ा को हल्की बताकर उससे विमुख नहीं हुआ। तुलसी ने वस्तुस्थिति की जो विषमता है, संसार में जो कष्ट, पीड़ा और चुभन है, उसका पूरा-पूरा चित्र प्रस्तुत किया है। 'कवि की रचनाओं में प्रकारान्तर से उस का ऐहिक और आध्यात्मिक जीवन ही चित्रित हुआ है। तुलसी ने जीवन में जिन कष्टों को झेला उन्हीं को उसके कवि ने कलात्मक अभिव्यक्ति दी। इसी से तुलसी के इन चित्रों में सत्य की शक्ति और स्वाभाविकता का रंग है, यथार्थता का आग्रह और आदर्श या आध्यात्मिकता की सान्त्वना या संबोधन है। इसका एक प्रमाण दरिद्रता (के कष्टों) संबंधी कवि का कथन है। कवि स्पष्ट कहता है कि इस संसार में दरिद्रता से बढ़कर कोई दुख नहीं है—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं'। चौदह प्राणियों का जीवन मृतक तुल्य है और दरिद्रों की गणना इन्हीं में है—

"कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा, अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा,
तनु पोषक निंदक अघखानी, जीवत सव सम चौदह प्रानी॥"

तथा—

आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की॥ ०

---

० कवितावली, उत्तर०, छ० ९६, पृ० २५६।

इसी संबंध में कवि प्रकारान्तर से यह भी कहता है कि अपने सुख के बिना मन कभी स्थिर नहीं होता—'निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा' और सबसे बड़े आनंद की अभिव्यक्ति इस रूप में हुई कि मानों जन्म के दरिद्री को 'पारस' पत्थर मिल गया—'जनम रंक जनु पारस पावा'।

दरिद्रता के संबंध में कवि की ऐसी प्रभावपूर्ण उक्तियाँ उसके जीवनानुभव से संबद्ध हैं। चूंकि कवि दाने-दाने के लिए बिल-बिला चुका था, सबके आगे दाँत काढ़ चुका था, मान-मर्यादा की भावना को छोड़कर सभी के आगे पेट खोल चुका था और किसी ने उसके मुँह में धूल भी न डाली, किसी ने 'संभाषन' भी न किया* इसीसे तुलसीदास दरिद्रता को संसार का सबसे बड़ा कष्ट कहते हैं। इस कथन का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि तुलसी जब महात्मा बन गये अर्थात् अपनी साधना द्वारा जब वे संसार के भ्रमपूर्ण रूप को समझ गये तब भी उन्होंने अपने इन कटु अनुभवों पर पर्दा नहीं डाला क्योंकि वे जानते थे कि केवल वे ही जगे हैं और मनुष्यों की अधिक संख्या संसार के दुःस्वप्न में पड़ी कष्ट भोग रही है। जब तक ये मनुष्य न जगें तब तक मिथ्या होते हुए भी ये कष्ट उनके लिए सच हैं। यह उसी प्रकार है,

---

* "द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयाल दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम कियो न संभाषन काहू।"
विनय, पद २७५, पृ० ६११।

× × ×

"कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो।
हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो।
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो।।"
विनय:, पद २७६, पृ० ६२३।

जिस प्रकार स्वप्न में सिर कटने पर तब तक पीड़ा नहीं शान्त होती जब तक कि स्वप्न न टूटे, मनुष्य न जगे। कवि ने ऐसे ही स्वप्न में पड़े मनुष्यों का उन्हीं की दृष्टि से चित्रण किया है और उन्हीं को सामाजिक व्यवस्था तथा नैतिक उपदेश दिये हैं जो जग गये हैं। उनके लिए न कोई व्यवस्था है और न बंधन। कवि कदाचित् यह भी सोचता रहा हो कि मायामोह में पड़े मनुष्यों के दुखदर्द का विशद चित्रण शायद उनको जगा दे और उनको सच्चे मार्ग पर प्रवृत्त कर दे। इस प्रकार यथार्थ प्रेम जीवन की विषमता और दुख-दर्द के मर्मान्तक चित्र कवि के आदर्श तथा आध्यात्मिक लक्ष्य के पोषक तथा पूरक बन गये और उनमें कोई विरोध न रहा, इस यथार्थ ने कवि के आदर्श को और भी स्पृहणीय बना दिया, आदर्शवादी होते हुए भी कवि ने यथार्थ की अवहेलना न की।

यथार्थ प्रेम के समान ही सर्वांगीणता भी उसके काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है। कवि को जीवन के ऊँच-नीच का बड़ा व्यापक और गहरा अनुभव था। उसने दुख और सुख दोनों के दिन देखे थे। भिख-मंगों से लेकर बड़े बड़े राजा-महाराजाओं से भी उसकी घनिष्ठता थी, विद्वानों से लेकर अपढ़-मूर्ख तक से उसका पाला पड़ चुका था। अनेक यात्राओं के बीच वह अनेक प्रदेश और विविध स्वभाव के मनुष्यों से परिचित हो चुका था। इन सबका निचोड़ उसके काव्य में प्रतिबिंबित हुआ। फलतः इस कवि के यथार्थ चित्रों में लोगों को अपने ही जीवन की झाँकी मिली, और चित्रों की सर्वांगीणता ने काव्य को और भी अधिक ग्राह्य बना दिया।

इस यथार्थ के साथ ही साथ कवि ने जिस आदर्श का चित्र उपस्थित किया उसमें उसकी जनता के प्रति व्यापक सहानुभूति भी प्रस्फुटित हुई। वह जनता को कष्टों से छुटकारा पाने का मार्ग बताता है। उसके उद्‌गारों ने जनता के हृदय में आशा का संचार किया। भक्ति के उपदेशों ने जनता को उच्च जीवन का आश्वासन दिया और

जनता ने कवि को आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार कवि उनका पथ-प्रदर्शक बन गया। तुलसी को जनता का विश्वास प्राप्त हो गया।

इस प्रकार यथार्थता, उच्चादर्श, सर्वांगीणता तथा मानवीयता ने (रसात्मकता से समन्वित होकर) तुलसीदास को धनी-निर्धन, ज्ञानी-अपढ़, ऊँच-नीच, सभी के हृदय में सदा के लिए प्रतिष्ठित कर दिया। उनका आसन अटल है और उनकी लोकप्रियता अमर है।

—केसरी नारायण शुक्ल

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत अनुवाद मेरे मित्रों की कृपा और मेरी कृतज्ञता की कथा एवं विज्ञप्ति है।

इस कार्य में 'प्रेरक' काशी के प्रोफेसर श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और 'पूरक' लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० हरबर्ट विक्टर गुइंथर रहे हैं। काशी-नरेश हिज़ हाइनेस महाराज विभूतिनारायण सिंह की कतिपय जिज्ञासाओं की शांति के लिए मिश्र जी ने मुझे अनुवाद के लिए प्रवृत्त तथा प्रेरित किया। यह मेरा सौभाग्य था कि लखनऊ विश्वविद्यालय के रूसी भाषा के शिक्षक डा० गुइंथर का सक्रिय सहयोग मुझे प्राप्त हो गया। इसके बिना इस कार्य का संपन्न होना असम्भव ही था। उन्होंने इस संबंध में जो सहायता की है उसके लिए उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा ही होगा। अनुवादक उनका अत्यन्त कृतज्ञ है।

अनुवाद दो वर्ष पहले ही पूर्ण हो चुका था, किंतु कतिपय कारणों से उसके प्रकाशन में इतना विलंब हुआ। यह आवश्यक है कि हिंदी भाषी जनता अपने सबसे बड़े कवि के विषय में विदेशी विद्वानों के विचारों से भी अवगत हो। प्रस्तुत अनुवाद इस दिशा में विनम्र प्रयास है। उच्चकोटि का न होते हुए भी इससे प्रोफेसर बरान्नी-कोव के विचारों का कुछ न कुछ आभास हिंदी के पाठकों को अवश्य मिल जायगा।

बरान्नीकोव के साथ-साथ कतिपय अन्य पाश्चात्य विद्वानों की तुलसी-

संबंधी धारणाओं से हिंदी के पाठकों को परिचित कराने के उद्देश्य से प्रस्तुत ग्रंथ के अन्त में परिशिष्ट जोड़ दिया गया है, जिसमें तॉसी, ग्रियर्सन, कारपेंटर, ग्राउज, केई ग्रीव्ज़ तथा हिल के तुलसीदास संबंधी विचारों का संक्षिप्त सारांश दिया गया है। तॉसी के तुलसी-विषयक विचारों का जो सारांश दिया गया है वह डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम०ए०, डी लिट०, द्वारा हिंदी में रूपान्तरित 'हिंदुई साहित्य के इतिहास' (प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडमी, एलाहाबाद) से उद्धृत किया गया है। ग्राउज़ के विचार रामचरित मानस के अंग्रेजी अनुवाद 'दि रामायन आव तुलसीदास' (प्रकाशक लाला रामनारायण लाल, एलाहाबाद) की भूमिका से प्रस्तुत किए गए हैं। ग्रियर्सन के विचार 'इंडियन ऐंटिक्वेरी', 'इनसाइक्लोपेडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स' तथा अन्य स्रोतों से उद्धृत किए गए हैं। कारपेंटर के विचारों का विवरण उनकी पुस्तक 'थीज़्म इन मेडिवल इंडिया' (प्रकाशक विलियम्स एण्ड नारगेट, लंदन) पर आधारित हैं। केई के विचार उनके 'ए हिस्ट्री आफ हिंदी लिटिरेचर' (प्रकाशक एसोसियेशन प्रेस, कलकत्ता) में तुलसीदास के संबंध में प्राप्त विवेचन के आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं। इसी प्रकार ग्रीव्ज़ के विचारों का सारांश उनकी पुस्तक 'ए स्केच आफ हिंदी लिटरेचर' (प्रकाशक क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी फार इंडिया, मद्रास) पर आधारित हैं। हिल के विचारों का उद्धरण, उनके द्वारा प्रस्तुत 'रामचरितमानस' के अंग्रेजी अनुवाद 'दि होली लेक आफ दि ऐक्ट्स आफ राम' (प्रकाशक ज्याफर कम्बरलिज आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) की भूमिका से दिया गया है। अनुवादक उन सभी लेखकों तथा उनके प्रकाशकों का अत्यन्त कृतज्ञ है जिनकी पुस्तकों से प्रस्तुत अनुवाद में उद्धरण लिए गए हैं।

अनुवादक अपने उन सहयोगियों का भी अत्यन्त कृतज्ञ है जिनसे उसे समय समय पर सहायता मिलती रही है। रिसर्चस्कालर डा० हरीकान्त श्रीवास्तव तथा श्रीब्रजनारायण सिंह ने अनुवाद की पाण्डुलिपि तय्यार करने में सहायता दी है। डा० हीरालाल दीक्षित ने मेरे

हस्तलेख को पढ़कर कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। 'परिशिष्ट' जोड़ने का डाक्टर त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया। श्री प्रेम नारायण टंडन ने मुद्रण विषयक सभी कार्यों में अपूर्व तत्परता दिखाई है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसकी भूमिका लिखकर बड़ी कृपा की है। अनुवादक उनका कृतज्ञ है।

प्रोफेसर वराभ्रीकोव के 'भूमिका भाग' के हिंदी-रूपान्तर के प्रकाशन की अनुमति जिस तत्परता से भारतस्थित सोवियत् दूतावास ने दी है उसके लिए अनुवादक उनका अत्यन्त कृतज्ञ है।

अपने इन सहायकों की कृपा का उल्लेख करते हुए भी यह जोड़ देना आवश्यक है कि इस पुस्तक की त्रुटियों का उत्तरदायित्व इन मित्रों पर न होकर अनुवादक पर है।

अनुवाद का कार्य यों ही दुस्तर होता है, फिर मेरा रूसी भाषा का ज्ञान अत्यल्प है। इसलिए प्रस्तुत अनुवाद में त्रुटियों का अतिरेक अनिवार्य ही है। इस संबंध में विद्वानों के जो सुझाव प्राप्त होंगे उन्हें अनुवादक कृतज्ञता के साथ स्वीकार करेगा।

मुद्रण-संबंधी अशुद्धियों के लिए अनुवादक क्षमा-प्रार्थी है। सब प्रकार की त्रुटियों के रहते हुए भी अनुवादक इस ग्रंथ को इस विश्वास के साथ हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है कि,

'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार॥'

लखनऊ
२८-२-५५.

केसरी नारायण शुक्ल

विषय-सूची

(१) भूमिका भाग

(२) अनुवाद भाग

———

प्राक्कथन

भारत में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त करते हुए तुलसीदास ने रामायण (सोलहवीं शती) मनोरंजन या पठन (मात्र) के लिए नहीं लिखा। उनके देशवासी विजेताओं द्वारा धूल-धूसरित थे और उन्होंने अपने काव्य के द्वारा अपने देश की रक्षा के लिए अपूर्व (मौलिक) मार्ग प्रदर्शन की चेष्टा की।

प्राचीन भारत ऐसी हल्की पुस्तकों से परिचित न था जैसी कि पिछली शताब्दियों में योरप में थी जिनके पन्ने भोजनोपरान्त लोग एक नजर डालते हुए उलटते चलते हैं।

भारतीय 'शब्द' का बड़ा सम्मान करते हैं। वे इसकी पूजा करते हैं और इसे देवी सरस्वती (शारदा) या वाणी (ऋचा की अधिष्ठात्री) के नाम से नमस्कार करते हैं।

भारतीय कवियों ने अपनी भाषा का बड़ा गम्भीर और बड़े परिश्रम से अध्ययन किया था। कवि के लिए अत्यन्त जटिल पाठशाला में जाना और अपनी समकालीन संस्कृति की उच्चता पर प्रतिष्ठित होना अत्यावश्यक था। अपनी ओर से भारतीय कवि, पाठक से, सर्जनात्मक कार्य की माँग करता था, जितना ही बड़ा कवि होता था उतनी ही ऊँची वह अपने पाठकों से माँग करता था।

कविता के मूल पाठ को समझने की कठिनाइयों के कारणों में से यह एक है। विशेषतया प्रथम और अन्तिम काण्ड जटिल प्रतीत होते

हैं। कविता का दूसरा काण्ड कम जटिल और बड़ा भावपूर्ण एवं नाटकीय है तथा भावातिरेक से ओत-प्रोत है।

अन्य कारणों की अवली भी हमारे लिए तुलसीदास की कविता का समझना कठिन बना देती है। इनमें से एक भाषा की अपनी विशिष्ट अभिव्यंजना है जो कटी-छँटी मूर्तिमत्ता के निकट पहुँच जाती है। मूल पाठ की यह विशिष्टता अनुवाद में स्पष्टतया प्रतिविम्बित मिलेगी।

सबसे महत्वपूर्ण कारण यह प्रतीत होता है कि यह कविता दूसरी संस्कृति के क्षेत्र की है, जो योरोपीय संस्कृति से पूर्णतया भिन्न है और जिसके विषय में हमें बहुत कम ज्ञात है। भारतीय काव्य ने काव्याभिव्यक्ति के मौलिक उपकरणों का निर्माण किया, विशेषतया ऐसे रूप (या परिपाटी) का, जो योरोपीय काव्याभिव्यक्ति की पद्धति से सर्वथा भिन्न हैं। इनके ग्रहण में अतत्पर पाठक के लिए भारतीय काव्याभिव्यक्ति के उपकरण या माध्यमों के तत्व को समझना प्राय: सहज नहीं है। तुलसीदास की कृतियों में मौलिक भारतीय दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक तथा सामान्य सांस्कृतिक विचार प्रतिविम्बित हैं जो व्यापक सोवियत पाठकों को अविज्ञात हैं।

बहुत से भारतीय भावों के लिए योरोपीय भाषाओं में पर्याय नहीं हैं। अनुवादक के रूप में मुझे अयोरोपीय शब्द प्राय: भारतीय शब्दों के निकट प्रतीत हुए, इसलिए विशिष्ट भारतीय भावों के लिए भारतीय शब्दों का रूसी अनुवाद में पादटिप्पणियों (की व्याख्या) में समावेश किया गया है। इन टिप्पणियों और पुस्तक के सटीक भागों का उद्देश्य मूल पाठ की कठिनाइयों को दूर करना है। मूल पाठ के साथ, भूमिका भाग और टीका हमारे देशवासियों को भारतीय संस्कृति के अध्ययन से परिचित कराएगी।

'रामायण' का अनुवाद वैज्ञानिक उद्देश्य को लेकर चला है; इसलिए कलात्मकता (या कृत्रिमता) का कोई दावा नहीं। सबसे पहले यह

साहित्य के विशेषज्ञों के लिए है और तब 'भारतीय अध्ययन' (इण्डोलोजी) के विशेषज्ञों के लिए। अनुवाद को पद्यात्मक रूप मुख्यतया उसे मौलिककृति के प्रबंधात्मक और छंदात्मक रूप के निकटतम लाने के उद्देश्य से दिया गया है जो कि रूसी (रूप) से सर्वथा भिन्न है। मौलिक (मूल) की प्रत्येक पंक्ति का वस्तुविषय अनुवाद की उतनी ही पंक्तियों में दिया गया है। मौलिक (मूल) की एक पंक्ति के वस्तुविषय को अनुवाद की दूसरी पंक्ति में नहीं जाने दिया गया है, इसने स्वभावतया अनुवाद की भाषा के स्वरूप और शैली पर मौलिक छाप डाल दी है।

अनुवाद का मुख्य कार्य पितृभूमि के युद्ध के वर्षों की परिस्थिति में सम्पन्न हुआ जब कि मैं शरणार्थी रूप में कजाकिस्तान गया। यह अत्यधिक कठिन कार्य युद्ध समय की परिस्थितियों में ही पूर्ण हुआ और कजाकिस्तान की कम्यूनिस्टपार्टी की कलेक्टिव सेण्ट्रल कमेटी की अकेडमी और उसके अध्यक्ष के लिए निर्मित किया गया। इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

यह पुस्तक जिस पर कि मैंने कई वर्ष काम किया, अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर पर संसार के प्रकाश में आ रही है, जब कि भारत और सोवियत संघ के बीच राजनीतिक संबंध स्थापित हो रहे हैं। मुझे आशा है कि यह (कृति) दोनों देशों के सांस्कृतिक नैकट्य में सहायता देगी।

ए० वरान्नीरोव

तुलसी के 'मानस' की (रूसी) भूमिका

तुलसीदास का युग

तुलसीदास ऐसे समय में हुए जब कि उनका विशिष्ट एवं प्राचीन-संस्कृति-समन्वित-देश, मुसलमानों से पादाक्रांत था। हिंदू उनको बर्बर समझते थे।

मुसलमान भारत के प्रथम विजेता न थे। प्राचीन समय से यह देश विभिन्न वर्बर जातियों द्वारा आक्रांत हुआ, किन्तु उनका ऐतिहासिक भाग्य उन मुसलमानों से भिन्न था, जो कि भारत में बस गए। इन बर्बरों के समस्त पूर्वज, जिन्होंने भिन्न-भिन्न समय पर भारत पर आक्रमण किया, इस देश की आबादी की करोड़ाधिक जनता में समाहित हो गए; उन्होंने यहाँ के एक या दूसरे धर्म को ग्रहण कर लिया; उसकी सामाजिक संस्थाओं को स्वीकार किया, जिनमें वर्ण-व्यवस्था सबसे प्रधान प्रतीत होती है, और थोड़े ही समय में विशिष्ट जाति के रूप में न रह सके, लुप्त हो गए।

मुसलमान भारत के पहले विजेता थे जो अपनी संस्कृति के प्रताप से यहाँ की जनता में न घुलमिल सके; जिन्होंने हिंदुओं से अपनी उस विशिष्टता की रक्षा की, जो भारत के लिए नई थी; और अपनी संस्कृति में हिंदुओं के महत्वपूर्ण जन-समुदाय (mass) को समाहित भी किया तथा किसी न किसी उपाय से उनको इस्लाम में दीक्षित कर लिया। इसके फलस्वरूप भारत में दो विरोधी और दृढ़ समाज सामने आए—

हिंदू और मुसलमान। हिंदू मुस्लिम-समस्या आजकल के भारत की महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्याओं में से एक प्रतीत होती है।

सोलहवीं शती में जब कि तुलसीदास जीवित थे, मुसलमान भारत के लिए नए न थे। इससे पहले ही ९० हिजरी अर्थात् ७२२ ईसवी में सिंध मुसलमानों द्वारा शासित हो रहा था। सिंध पश्चिमी धुर पर है। आठवीं शती में यह शेष भारत से दृढ़ता से सम्बन्धित न था। इसलिए मुसलमानों की बस्तियाँ भारत की शेष जनता को तात्कालिक आपदा के रूप में न लगीं। इसलिए और भी, क्योंकि भारत किसी ऐसी बर्बर जाति को न जानता था जो समाहित होकर उनके देश में घुलमिल न गई हो।

मुसलमानों की ओर से भारत पर घोर तात्कालिक आपदा दसवीं शती के अंत में उपस्थित हुई, जब गजनी (अफगानिस्तान की तत्कालीन राजधानी) के शासक अमीर सुबुक्तगीन ने उत्तर-पश्चिमी भारत पर (९८६-९८७) आक्रमण किया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी महमूद ने (९९७) गजनी का ताज प्राप्त कर और सिंहासन पर आसीन होने के बाद फौरन ही भारत पर पहला आक्रमण संचालित किया और अत्यधिक लूट का माल लाया। इस प्रथम आक्रमण के बाद सोलह अन्य आक्रमण हुए। इन सत्रह आक्रमणों के फलस्वरूप—जो मुख्यतया लूट और प्रायः इस्लाम के प्रसार के उद्देश्य से संचालित किए गए थे और जिनमें ऐसे जुल्म हुए जैसे कि उस समय तक सुने न गए थे—समस्त उत्तर-पश्चिमी भारत नष्ट और ज़लील हुआ। ऐसी जन-हानि उस समय तक न देखी गई थी। पंजाब गजनी की सल्तनत में शामिल कर लिया गया और उस समय से भारत के मुसलमानी प्रान्तों में मुख्य हुआ।

सुल्तान के उत्तराधिकारियों ने भारत की लूट-पाट, इस्लाम के प्रसार, और मुस्लिम शक्ति द्वारा, भारत के विभिन्न प्रान्तों को

अधीन करने का काम जारी रखा। १३४० तक भारत के मुख्य प्रान्तों में मुस्लिम शक्ति (शासन) की स्थापना हो गई थी।

अफगान या पठान वंश का शासन त्रासकारी जुल्मों से समन्वित था, जो धार्मिक जोश के नारों से प्रेरित थे। किन्तु ये जुल्म, लूट, हत्यायें, हिंसा आदि तैमूर के क्रोध के आगे फीकी पड़ गई। उसने १३६७ में भारत पर विख्यात आक्रमण किया। दिल्ली की ओर बढ़ते हुए उसने पीछे खँडहरों और जलते हुए शहरों और गाँवों के अतिरिक्त कुछ न छोड़ा। वह विशेषतया इस बात पर गर्वित था कि दिल्ली के पास (नीचे) एक समय उसने एक लाख बंदियों के कत्ल की आज्ञा इस कारण दी कि उनकी चौकीदारी में उसकी बड़ी शक्ति (सेना) लग रही थी। भारत की राजधानी दिल्ली शहर पर कब्जा कर, उसने उसे अपनी बर्बर सेना द्वारा पाँच दिनों तक लूटा जाने के लिए छोड़ दिया। तैमूर के बर्बर कार्य की समानता का कोई उदाहरण नहीं ज्ञात है। हमारे समय में केवल जर्मन फासिस्ट राक्षस उनसे आगे बढ़ गए।

पठान वंश का भारत पर करीब तीन शताब्दी (१२०२ से १५२५ तक) तक शासन रहा। उनके पीछे मुगल आए जिन्होंने विख्यात मुगल-साम्राज्य की नींव डाली जो करीब तीन शताब्दी तक रहा। इसका प्रसार भी युद्ध-सम्बन्धी जुल्मों, लूट-पाट, हिंसा, शहरों और गाँवों के नाश और त्रासकारी भूख की ज्वाला और धार्मिक अत्याचार से समन्वित था।

ऐसे त्रासकारी वर्षों में तुलसीदास का शैशव और युवाकाल व्यतीत हुआ। उनका जन्म १५३२ ई० में हुआ। वे मुगल-वंश के सबसे बड़े सम्राट् अकबर (जन्म १५४२) से केवल १० साल बड़े थे। तुलसीदास का जीवन दो मुगल सम्राटों के शासन में व्यतीत हुआ—अकबर (१५५४ से १६०५ तक) और जहाँगीर (१६०५ से १६२७ तक)। यह मुगल साम्राज्य का अत्यन्त

शानदार समय था जब कि भारत को पाँच शताब्दियों के दैन्य से थोड़ी शांति मिली।

अकबर ने हिन्दुओं के विरुद्ध धार्मिक अत्याचारों को कम (शिथिल) किया और हिन्दू यात्रियों पर से 'जजिया' हटाया। उसने स्वयं कई हिंदू राजकुमारियों से विवाह किया और मुसलमानों और हिन्दुओं में विवाह को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार एक बड़े अंश तक उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को निकट आने में सहायता दी।

इसके अतिरिक्त अकबर ने महत्वपूर्ण ढंग से अपने साम्राज्य के शासन में सुधार किया, और कई महत्वपूर्ण कर-सम्बन्धी सुधार किये, जिन्होंने अपनी कठोरता के बावजूद समस्त भारतीय किसानों को अपनी शेष उपज को सुरक्षित रहने का आश्वासन दिया। अकबर किसानों से उपज का एक तिहाई लेता था। कई शताब्दियों के जुल्म और लूट के बाद यह सुधार वरदान-सा प्रतीत हुआ।

भारत के सम्मिलित जीवन में हिन्दुओं और मुसलमानों की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया अनिवार्य ही थी। हमारे पास इस तथ्य को प्रमाणित करने की वस्तुगत (objective) सामग्री उपलब्ध है कि तुलसीदास के समय में मुसलिम संस्कृति ने अपने कई पक्षों (या अंगों) से हिन्दुओं को प्रभावित किया। यह इस बात से स्पष्ट है कि तुलसीदास ने राम के विरोधी के शस्त्रों का वर्णन करते हुए प्रायः फारसी की शब्दावली को उद्धृत किया है (उधार लिया है), यद्यपि वह अत्यन्त प्राचीन पौराणिक नायक राम के राक्षसों से युद्ध का वर्णन करते हैं और उनकी शक्ति द्वारा समस्त विश्व की विजय दिखलाते हैं।

यद्यपि कट्टर ब्राह्मण के रूप में तुलसीदास मुसलमानों के प्रति जो कि अत्यन्त उग्रता से सबसे पहले, यहाँ के शासक

और ब्राह्मणों (जो हिन्दुत्व के सिद्धान्तों के संरक्षक थे) के विरुद्ध, अपना धार्मिक रोष धारण किये हुए थे, अनुकूल न हो सके, फिर भी उनकी प्राचीन समृद्ध भारतीय भाषा में ऐसे शब्द न मिल सके जो अत्यधिक शक्ति और शक्ति के वाहक शब्दों को अभिव्यक्ति दे सकते। इस प्रकार राम के पिता राजा दशरथ की राज-सभा का या स्वयं राम की सभा का वर्णन करते हुए तुलसीदास उसे 'दरबार' कहते हैं। फारसी के दरबार शब्द का प्रयोग इस प्रसंग में तुलसीदास ने कई जगह किया है। उदाहरण के लिये अपनी रामायण के द्वितीय कांड में तुलसीदास कहते हैं—

"भई बड़ि भीर भूप दरबारा"

और उसी कांड में वह कहते हैं—

प्रेम मगन अस राज समाजू। ज्यों फिरि अवध चले रघुराजू॥"

स्वयं राम को, जिन्हें तुलसीदास विश्व का सर्वोच्च शासक चित्रित करते हैं और जिन्हें वेद 'दैवी तत्व' कहते हैं उनको तुलसीदास भारत में अत्यन्त व्यापक अरबी शब्द 'साहब' से संबोधित करते हैं। इस प्रकार प्रथम कांड के आरम्भ में ही हम पढ़ते हैं—

'सरल सबल साहिब रघुराजू।'

यह शब्द बाद में आकस्मिक रूप से जोड़ा हुआ नहीं है। यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि सिक्ख-समाज जो कि तुलसीदास के समय में ही अपने इस रूप में संगठित हुआ, अपनी एक मात्र पवित्र पुस्तक को 'ग्रन्थ साहब' या 'आदि ग्रन्थ' कहता है।

मुस्लिम प्रभाव वैष्णव धर्म के उस रूप में स्पष्ट होता है जो उसे भारतीय सुधार के युग में प्राप्त हुआ। मध्य युग की वैष्णवता ने प्राचीन भारत में विकसित वैष्णवता से अलग जनात्मक (डिमोक्रेटिक) स्वरूप प्राप्त कर अपने को विशिष्ट बनाया।। विष्णु, सबसे बड़े देवता के रूप में स्वीकृत हैं, जिनके

सामने, न कोई नीचा है न कोई ऊँचा, और जिनके लिए सभी वर्ण वाले बराबर हैं। प्रत्येक व्यक्ति विष्णु को ज्ञान-मार्ग या विशेषतया प्रेम-मार्ग से प्राप्त कर सकता है।

मध्ययुगीन (१४ वीं शताब्दी) वैष्णवता के इन विचारों के साथ सदना (जिनका जन्म सिंध में हुआ और जहाँ ८ वीं शताब्दी के आरम्भ में ही मुसलमान राज्य स्थापित हो गया था) तथा नामदेव (जिनका जन्म मराठा देश में हुआ, जो अरब से संबंधित था) सामने आए। इन सबमें अत्यन्त महत्वपूर्ण और वैष्णवता के सबसे बड़े प्रचारक मुख्य रूप से रामानन्द थे।

रामानन्द (लगभग १४७०) अनन्त और सर्व व्यापक देवता के सिद्धान्त को लेकर सामने आये, जिनकी 'राम' के नाम से उपासना करनी चाहिए। राम के आगे सभी बराबर हैं। वह पुनर्जन्म के भय से मुक्त करते हैं और शान्ति का वरदान देते हैं जो जीवन में सामान्यतया प्राप्त नहीं है किन्तु जो भक्ति-मार्ग से (अर्थात राम के संयोग से) प्राप्त है।

रामानन्द के जनात्मक सामाजिक विचार के स्वरूप की अभिव्यक्ति हमें इस बात में मिलती है कि जन्मजात ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने ब्राह्मणों की साहित्यिक भाषा संस्कृत को छोड़ दिया और हिन्दी में लिखने लगे। अपने व्यक्तिगत क्रिया-कलाप के द्वारा उन्होंने एक विशिष्ट शाखा रामानन्दी की नींव डाली।

वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध खुले रूप में किसी सिद्धान्त को सामने लेकर न आते हुए भी रामानन्द ने अपने बहुत से शिष्यों में कई जातियों और जाति-विहीनों के प्रतिनिधियों को लिया। उनके शिष्यों में ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति के प्रतिनिधि, राजा, नाई, शूद्र, अछूत और मुसलमान जुलाहा और एक स्त्री भी थी।

रामानन्द के शिष्यों में सबसे अधिक प्रतिभावान कबीर (१४४० से १५१८ तक) मुसलमान जुलाहा थे। कबीर शक्ति-

शाली कवि और एक विशिष्ट शाखा—कबीर पंथी—के संस्थापक थे। वह रामानन्द की अपेक्षा सुधार के बड़े पक्षपाती थे। उन्होंने जन्मान्तरवाद के विशिष्ट भारतीय सिद्धान्त को अस्वीकृत किया। समानरूप से उन्होंने मूर्ति-पूजा और दूसरी धा मक रीति-नीतियों की भर्त्सना की और भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं से मिलाने की कोशिश की। उन्होंने इनको अपनी शाखा का प्राप्य और जीवन-आदर्श बताया, और अपने उपदेशों में अपने अनुयायियों के हिन्दू-मुसलमान-रूप की निन्दा की।

कबीर के अनुगामियों में सबसे अधिक शक्तिशाली नानक (१४६६ से १५३८ तक) थे जो सिक्खों के धार्मिक समाज के संस्थापक थे। नानक के धार्मिक और दार्शनिक विचार कबीर के अत्यधिक निकट हैं। अपने समय के धार्मिक समाजों में यह सबसे अधिक जनात्मक हैं। सिक्खों ने वर्ण-संस्था को हटा दिया। पंजाब में, जहाँ सिक्ख रहते हैं, शक्तिशाली जमीदार या भूम्यधिकारी वर्ग नहीं है। भारतीय भाषाओं में पंजाब की साहित्यिक भाषा सबसे अधिक जनात्मक है। इसमें, काव्य-रूप में, सामान्य जन शब्द का प्रयोग होता है। पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच इन उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त दूसरी बहुत सी संस्थायें या जिनको भारतीय भाषा में 'पंथ' कहा जाता है विकसित हुईं। इन पंथों ने महत्वपूर्ण अंश में हिन्दू-समाज को दुर्बल बनाया। हिन्दू समाज, लूट-पाट और मुसलमान शासकों के धार्मिक अत्याचार से अत्यन्त शिथिल हो गया था एवं विभिन्न आंतरिक मतवाद (जो आपस में शत्रुता रखते थे, तथा अत्याचार करते थे, और जो उनके मठाधीशों के लालच से प्रेरित थे) से छिन्न-भिन्न हो रहा था। हिन्दू-समाज की इस छिन्न भिन्न अवस्था के विषय में तुलसीदास कई स्थान पर कहते हैं :—

'कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहुपंथ॥'

इसके विषय में अधिक स्पष्टता के साथ उन लोगों को दोषी ठहराते हुए तुलसीदास दूसरे कांड में कहते हैं :—

'बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं, पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी, वेद विदूषक बिस्व विरोधी।
लोभी लंपट लोलुप चारा, जे ताकहिं परधनु पर दारा।
तजि स्रुति पंथ वाम पथ चलहीं, बंचक बिरचि बेषु जग छलहीं।'

इस प्रकार तुलसीदास के सचेतन-क्रिया-कलाप के युग से पूर्व, भारत, या ठीक ठीक हिन्दू समाज ने, अपने को, दो संकटों के बीच पाया। एक ओर तो असह्य अत्याचार, लूट-पाट, और शारीरिक यंत्रणा की आपदा थी जो मुसलमान शासकों की ओर से पाँच शताब्दियों से अधिक समय से धारा के रूप में भारत पर प्रवाहित हो रही थी, और जो अकबर के शासन में कुछ समय को शिथिल हुई, और दूसरी ओर मुसलिम प्रभाव से महत्वपूर्ण ढंग से प्रसूत धार्मिक विरोधी शाखाओं (Heresy) आदि से उत्पन्न हिन्दू समाज की आंतरिक छिन्न-भिन्नता का संकट। इन सबने हिन्दू समाज की एकता को छिन्न-भिन्न कर उसे और भी दुर्बल बनाया। भारत की करोड़ाधिक जन-संख्या जिस अत्यन्त प्राचीन भारतीय संस्कृति से दृढ़ता से बँधी हुई थी, उसकी स्थिति के लिये ही तात्कालिक संकट उत्पन्न हुआ। भारत के लिये जो यह संकट था, उसकी संस्कृति की अनेकरूपात्मक अभिव्यक्ति के लिये जो संकट था, उसके देशवासियों के लिये, (जो ऐसे आदर्शों या मूल्यों को धारण किये हुए थे जिनकी पुनरावृत्ति नहीं हो सकती थी) जो संकट था, उसे सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने जान लिया था। इस युग के प्रतिभाशाली विद्वान और विचारकों में सबसे अधिक तेजवान रामायण का रचयिता, भारत का कवि, तुलसीदास था।

तुलसीदास और उनकी कारयित्री प्रतिभा

मध्ययुगीन भारत के सबसे बड़े कवि तुलसीदास, ४००० वर्षों के बीच विकसित होने वाले भारतीय-साहित्य के शक्तिशाली कवियों में से एक हैं। उनका नाम उत्तरी भारत की करोड़ाधिक जन-संख्या के विस्तृत भाग को सुविज्ञात है। वह समानरूप से भारत के अपढ़ किसानों के भी अत्यन्त निकट हैं जो उनकी रामायण की पंक्तियों का सुनकर पाठ करते हैं, और भारतीय समाज और विद्वान ब्राह्मणों के भी उतना ही निकट हैं। इतिहास, और, साहित्य का इतिहास, तुलसीदास को केवल एक महान कवि तथा दार्शनिक, धार्मिक, एवं नैतिक विचारों के प्रवर्तक के रूप में (Prophet) हो नहीं देखता किंतु उसे उस व्यक्ति के रूप में भी देखता है जो कि अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा तथा अपनी ऊँची नैतिक मनोदृष्टि के द्वारा, अपने देशवासियों की सहायता के लिये, कठिन परीक्षा के वर्षों में आया, जबकि, भारत की प्राचीन संस्कृति बहुत बड़ी विपत्ति से संकटग्रस्त थी।

ऐसे समय में, जब कि हजारों और लाखों व्यक्ति केवल नीच जाति के ही नहीं, बल्कि ब्राह्मण समाज के भी अपने जीवन और संपत्ति की रक्षा तथा मुसलमानी शासन में अपनी स्थिति को दृढ़ रखने के उद्देश्य से, अपने पूर्व पक्ष से अलग हटकर, इस्लाम को स्वीकार कर रहे थे, तुलसीदास (एक निम्न-

ब्राह्मण) ने अपनी आवाज़ उठाई और घोषणा की कि छुटकारा मिलेगा; तथा यह भी कहा कि भयंकर बर्बर शासकों से देश तथा उसकी संस्कृति की (युद्ध के समय) रक्षा देशवासियों की एकता में ढूँढ़नी पड़ेगी, जो नैतिक मनोदृष्टि के बिना तथा ऐसे राम (और उनकी दैवी सत्ता) के प्रति प्रेम के बिना असंभव है। जो पृथ्वी के अराजकता के बोझ और उसके निवासियों के दुःख के भार को सहन करने में अक्षम होने पर पुरुष के रूप में अवतार धारण करते हैं। जिस समय ! थ्वो इस बड़े भार का वहन करती है, असंगठित व्यक्ति को अपने इस विचार से शक्ति प्राप्त करते हुए समर्पण न कर देना चाहिए कि दुख अवास्तविक है और यह दैवी माया का एक रूप है।

तुलसीदास के शब्द करोड़ाधिक हिन्दुओं द्वारा सुने गए और इनसे उनको बड़ी सहायता मिली। हिन्दू तुलसीदास को अपने सबसे बड़े प्रवर्तक के रूप में देखते हैं और उनकी सबसे बड़ी कृति रामायण को अपना पवित्रतम ग्रंथ मानते हैं। सोलहवीं शताब्दी में रचित इस पुस्तक का महत्व कम न हुआ, प्रत्युत, निवासियों की नजरों में बढ़ता ही गया। यह पुस्तक, विशेष रूप से जनता के दुख के समय में, या स्वतन्त्रता के भारतीय युद्ध के युग में, ऊँची उठ जाती है। हिन्दू कहते हैं कि उस समय जब कि निशाचरों का राजा, अंधकार का स्वामी, पृथ्वी, आकाश और पाताल में रहने वाले सभी जीवों को अपने वश में कर लेता है, उस समय, प्रकाश के स्वामी, सूर्यवंश के राजकुमार, राम, प्रकट होते हैं और समस्त सत् की रक्षा करते हैं।

यद्यपि तुलसीदास और उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का महत्व अत्यधिक है, फिर भी हम उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में बहुत कम जानते हैं। तुलसीदास के विषय में पुस्तकों में जो

कुछ लिखा गया है उसका अधिकांश सार रूप में अप्रामाणिक है और विश्वास पर आधारित है।

यद्यपि भारतीय साहित्यिक परम्परा प्रायः चार हजार वर्षों के बीच विकसित होती हुई अत्यन्त प्राचीन है, फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक, भारत, साहित्य के इतिहास को नहीं जान पाता। केवल साहित्य के अध्ययन की योरोपीय परिपाटियों से परिचित होने पर ही भारतीय भाषाओं के कतिपय इतिहास लिखने के प्रथम प्रयास हुए।

अध्ययन के ऐतिहासिक पक्ष का अभाव केवल विशेष रूप से साहित्य में ही नहीं प्रकट होता। उन्नीसवीं सदी तक, भारत सामान्य इतिहास से परिचित न था, कम से कम इस (इतिहास) शब्द की योरोपीप भावना से। ऐसी कृतियाँ जिनको हिन्दू इतिहास या पुराण कहते हैं आतिशय्य से और वैचित्र्य के असंयमित अतिरेक से इतने ओत-प्रोत हैं कि वास्तविकता का कण, संभवतः किसी किसी कहानी के मूल में होते हुए भी, भारतीय साहित्य के अध्ययन की वर्तमान स्थिति में निकाला नहीं जा सकता।

भारत में, विज्ञान के रूप में इतिहास के अभाव को, उसके विश्व-दर्शन के मुख्य विचारों से न जोड़ना असंभव है, क्योंकि, वह भारत के अधिकांश दार्शनिक और धार्मिक विचार-तंत्रों में स्पष्टतया प्रकट होते हैं।

इन विचार-तन्त्रों के अनुरूप समग्र विश्व माया, मरीचिका, या भ्रांति है। सब कुछ, जो कि एक विशिष्ट क्षण में उत्पन्न होता है, भूत में, अनन्त क्रम में, पूर्णता को प्राप्त होता है, और भविष्य में असंख्य क्रम में निर्णीत होगा। ऐसे विश्व-दर्शन में वास्तविक और अवास्तविक के बीच की सीमा संसार में लुप्त

हो जाती है और व्यक्ति के ज्ञान, ऊपरी रूप (Appearance) और तथ्य के व्यक्तिगत ज्ञान का महत्व लुप्त हो जाता है।

ऐसी स्थिति, इस तथ्य को स्पष्ट कर देती है कि भारतीय परम्परा ने अपने असंख्य कवियों की जीवन-सामग्री की बिल्कुल ही नहीं, या बहुत कम रक्षा की। भारतीय-साहित्य के सबसे बड़े कवियों के विषय में भी हम कुछ नहीं जानते। कुछ बड़ी-बड़ी कृतियों की तिथि का निश्चय करने में कई शताब्दियों का अंतर पड़ जाता है। भारतीय कवियों के क्रिया-कलाप के संबंध में पारस्परिक विरोधी विचार हैं; उदाहरण के लिए, एक कथन के अनुरूप संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा कवि, कालिदास, काश्मीर में था, दूसरे के अनुसार लंका में, या मुख्यतया भारत में।

यह कहना असंभव है कि साहित्य के इतिहास के तथ्य के प्रति ऐसा संबंध, साहित्य या उसके रचयिताओं के प्रति रुचि के अभाव से प्रसूत हुआ। हिन्दुओं को, साहित्यिक कृतियों के प्रति सदैव उतना ही प्रेम था, जितना कि रचयिताओं के प्रति, किन्तु उनका यह प्रेम हमारे भाषा-विज्ञान की अपेक्षा दूसरे ही रूप में प्रकट हुआ। उन्होंने उनके नाम को काव्यमय अनुश्रुतियों में गूँथ दिया। जितना ही बड़ा कवि हुआ, उतनी ही अधिक कथाएँ, उसके नाम के साथ जुड़ीं।

मध्ययुगीन भारत के सबसे बड़े कवि तुलसीदास के नाम के साथ बड़ी बड़ी कथाएँ जुड़ी हैं, जो कि कलात्मक रूप में उनके जन्म से लेकर मरण तक का वर्णन करती हैं। इन कथाओं के अनुसार तुलसीदास अशुभ दिन में पैदा हुए थे। ऐसे दिन पैदा हुआ व्यक्ति, अपने को, अपने पिता की हत्या द्वारा कलंकित कर सकता था; इस कारण तुलसीदास के माता-पिता ने उसे निर्जन स्थान में सड़क पर छोड़ दिया। वह घूमने वाले निम्न

ब्राह्मणों द्वाराया गया और उनके द्वारा पोषित हुआ। इन निम्न ब्राह्मणों से प्राप्त शिक्षा समाप्त करने पर उसने अपना विवाह किया। स्त्री उनके उत्तप्त प्रेम से क्रुद्ध हुई और उसने उसे धर्म और राम की उपासना की ओर उन्मुख होने में सहायता दी। तुलसीदास ने हमेशा के लिए परिवार छोड़ दिया और सारा जीवन राम की उपासना में लगा दिया। बुड्ढे होने पर संयोगवश वह एक अँधेरी रात में अपनी स्त्री के घर पहुँच गए, और उसकी प्रार्थना पर भी उसके साथ रहने को तैयार न हुए। वह बनारस के निकट निर्जन गुफा में (१३२४) में दिवंगत हुए।

भारतीय अनुसंधानकारों ने बहुत सी विस्तृत कथाएँ—एकत्रित की हैं, किन्तु आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा उनमें कोई ऐतिहासिक महत्व अब तक न प्राप्त कर सके। पिछले वर्षों में वह एक मात्र सच्चे मार्ग में प्रवृत्त हुए—तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा के अध्ययन के मार्ग पर—जिसमें सबसे पहले रामायण का अध्ययन कवि के जीवन के संबंध की घटनाओं के प्राप्त करने के उद्देश्य से है।

रामायण से ही हमें उसके रचना-काल का पता लगता है। इस काव्य के प्रथम कांड में तुलसीदास कहते हैं—

संवत सोरह सै इकतीसा, करउँ कथा हरिपद धरि सीसा
नौमी भौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा
जेहिं दिन राम जनम स्रुति गावहिं, तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं

इससे हमें काव्य के निर्माण-काल का ठीक-ठीक पता लगता है। योरोपीय संवत् में परिवर्तित करने पर यह १५७५ ई० में प्रकाश में आया। सार-रूप में केवल यही एक तथ्य है जिसे हम कवि के जीवन के बारे में जानते हैं। हम कवि के विषय में, उसके, अपने विस्तृत उद्गार पाते हैं, किन्तु, यह, कवि, को विनम्रता का परम्परागत प्रकाशन मात्र है। उदाहरणतः

सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती, बाजु सुरागु कि गाँडर ताँती
कविहिं अरथ आखर बलु साँचा, अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा

अपने विषय में इससे अधिक दृढ़ (Concrete) उद्‌गार हमें तुलसीदास में नहीं मिलते । दूसरी ओर कवि अपने दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक सिद्धान्तों की व्याख्या स्पष्टता से करता है, और उसकी आध्यात्मिक मनोदृष्टि पूर्ण स्पष्टता से सामने आती है। अपने काव्य की आरंभिक परिचयात्मक पंक्तियों में तुलसीदास घोषणा करते हैं कि वह परम्परा से प्राप्त ब्राह्मणों की भाषा को छोड़कर जनता की भाषा में लिख रहे हैं—

"स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंधमतिमंजुलमातनोति ।"

तुलसीदास में जनात्मकता की भावना, जन-भाषा के प्रति सतत रुचि के रूप में, उनकी सभी कविताओं में प्रतिबिम्बित होती है।

जिस प्रकार हमें कवि के जीवन-चरित के विषय में कुछ नहीं मालूम है उसी प्रकार हमें तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा का परिमाण भी ज्ञात नहीं । भारतीय साहित्य में प्राचीन कवियों की कृति में जो कुछ उन्होंने नहीं लिखा है, उसे जोड़ देने की प्रथा है, इस कारण भारतीय कवियों के वास्तविक पाठ का निर्धारण और उनकी वास्तविक प्रतिलिपि का निश्चय बड़ा ही जटिल कार्य है, जो कि प्रायः सुलझाया नहीं जा सकता ।

यद्यपि तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा पर भारतीय और योरोपीय विद्वानों ने जितना काम किया है उतना नवीन भारतीय कवियों की सर्जनात्मक प्रतिभा पर नहीं किया है, फिर भी, उनकी वास्तविक कृतियों की प्रतिलिपियों के निर्धारण का कार्य और उनमें से महत्वपूर्ण कृतियों के सच्चे पाठ का निर्धारण--उदाहरणतः रामायण का—केवल कुछ ही अंशों में सम्पन्न हुआ है। केवल अत्यधिक

मिथ्यारोपों का ही निराकरण हुआ है। अधिक विशिष्ट कार्य भविष्य के भाषा-वैज्ञानिकों के समक्ष है।

तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा के अध्ययन के वर्तमान स्तर के आधार पर इतना निर्विवाद माना जा सकता है कि उन के छः बड़े और छः छोटे ग्रंथ हैं—

बड़े ग्रंथ

१. दोहावली—राम के प्रति लिखे गए दोहा छन्द का संग्रह।

२. कवितावली—कवित्त और उससे मिलते छन्द में राम की कथा का वर्णन।

३. गीतावली—पदों का संग्रह जिसमें राम की प्रशंसा की गई है।

४. रामाज्ञा—राम-कथा।

५. विनय-पत्रिका—पदों का संग्रह, राम से संबंधित।

६. रामचरितमानस या रामायण।

छोटे ग्रंथ

१—रामलला नहछू।

२—वैराग्य संदीपनी।

३—बरवै रामायण।

४—पार्वती-मंगल।

५—जानकी-मंगल।

६—कृष्णावली।

छठे, छोटे ग्रंथ के अतिरिक्त, जिसमें कि कृष्ण की प्रशंसा की गई है, तुलसीदास द्वारा रचित शेष पुस्तकें, उनके अपने प्रिय नायक और विशिष्ट देवता, राम के संबंध में हैं।

इन बारह ग्रंथों के अतिरिक्त, जिनकी रचना का संबंध तुलसीदास से स्थिर रूप से मान लिया गया है, विभिन्न भारतीय विद्वान

उनके विभिन्न परिमाए के दस और भी ग्रंथ बताते हैं। फिर भी इन बाद की कृतियों से तुलसीदास के कर्तृत्व का संबंध स्थिर मानना असंभव है।

तुलसीदास की समस्त कृतियों में सबसे अधिक लोकप्रिय, रामचरितमानस या रामायण प्रतीत होती है। मध्ययुगीन भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में तुलसीदास का सम्मान इस कृति के आधार पर ही आधारित है। इस कारण तुलसीदास की यह कृति रूसी भाषा में अनुवाद के लिए चुनी गयी है। इसके अध्ययन से हम केवल इस कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा से ही परिचित नहीं होते, प्रत्युत सामान्यतया भारतीय "क्लासिक्ल" साहित्य की विशिष्टताओं से भी परिचित होते हैं।

———

तुलसीदास की रामायण की कथावस्तु

तुलसीदास की रामायण मध्ययुगीन भारतीय साहित्य की शक्तिशाली कृति है। यह (केवल) उच्च कलात्मक कृति ही नहीं है जिसमें कि अभिव्यक्ति के सभी महत्वपूर्ण साधन (माध्यम) और भारतीय काव्य-कला के वस्तु-विषय प्रतिबिम्बित हैं और अपनी पूर्णता को प्राप्त हैं, प्रत्युत कवि द्वारा स्थापित ऊँचे उद्देश्य (के कारण), विशेषतया विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा धूल-धूसरित नीचे पड़ी हुई दीन जनता की रक्षा के कारण, एवं समृद्धिपूर्ण दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक विचारों के कारण, जिनके द्वारा महत्वपूर्ण पूर्ववर्त्ती विकसित भारतीय दार्शनिकता और धार्मिकता और नैतिकता का समन्वय उपस्थित हुआ—इस काव्य ने अपनी रचना-काल (१६ वीं सदी) के थोड़े ही समय के अनन्तर बहुत जल्दी उत्तरी भारत की करोड़ाधिक जनता की लोकप्रियता और प्रेम को प्राप्त कर लिया। यह कृति बहुत जल्दी उनकी सुंदर बाइबिल (धर्म ग्रंथ) बन गई जिसने भारत की विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की विचारधारा के निर्माण पर व्यापक प्रभाव दिखाया। इसके गंभीर दार्शनिक विचार विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सुंदर कलात्मक रूप में अभिव्यक्त इसके नैतिक

उद्‌गार भारत की कम शिक्षित और पूर्णतया अशिक्षित जनता के कंठ में जीवित हैं।

१६ वीं शताब्दी में निर्मित तुलसीदास की रामायण उस समय से अधिकाधिक प्रभुत्व प्राप्त करती जा रही है। पिछली शताब्दियों में यह भारत में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन की वस्तु बन गई। भारतीय विद्वान, तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा, को शक्तिशाली योरोपीय कवियों की प्रतिभा के स्तर पर रखते हैं। विचारानुसार (और सुदृढ़ आधार पर) तुलसीदास की काव्यात्मक प्रतिभा, अपनी समृद्धि और मौलिकता में युक्तियुक्तता के साथ शेक्सपियर के समकक्ष रखी जा सकती है; बहुत से भारतीय लेखकों को हम ऐसी तुलना करते हुए पाते हैं।

राम के संबंध की पहली कथा, जिसे हम मूलाधार मान सकते हैं और जो हमें बहुत सी रामायणों के द्वारा प्राप्त होती है, जटिल नहीं है और वह इस रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। अवध के राजा दशरथ की कई पत्नियाँ थीं, किन्तु वह निःसन्तान थे। अन्त में वृद्धावस्था में भिन्न पत्नियों से उनके चार पुत्र हुए। सबसे बड़े राम, अपने सद्‌गुणों में दूसरों से बढ़ कर हैं और राजा उनको शासन देने के लिए दिन निश्चित करते हैं, किन्तु ऐसा न हो सका। राजकीय षड़यन्त्र के कारण राम को निर्वासित होकर घने जंगल में जाना पड़ा जहाँ उनको १४ वर्ष बिताने थे। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण जाते हैं। शक्तिशाली राक्षसों का राजा रावण जंगल में उनकी पत्नी सीता को हर ले जाता है। सीता को ढूँढ़ते हुए राम जंगल में घूमते हैं और बन्दरों के देश में पहुँचते हैं। वह बन्दरों के राजा सुग्रीव से मित्रता स्थापित करते हैं, रावण की राजधानी लंका पर आक्रमण संचालित करते हैं, रावण को हराकर मार डालते हैं,

सीता को वापस लाते हैं, और सीता तथा लक्ष्मण के साथ अवध को वापस आते हैं, जहाँ वह राजा बन जाते हैं।

यह साधारण कथा अत्यधिक जटिल हो गई। प्राचीन भारतीय कवि, बाल्मीकि द्वारा संस्कृत में लिखित राम संबंधी इस प्रथम काव्य, रामायण में ही—इसका कलेवर बढ़ गया। बाद के कवियों में इसकी जटिलता के विकास का क्रम जारी रहा। यह विशिष्टता के मार्ग पर राम के जीवन की भिन्न घटनाओं से उद्देश्यों को समाहित करती हुई बढ़ती जाती है और कथाओं तथा अनुश्रुतियों का समावेश करती हुई कविता में दार्शनिकता, धार्मिकता एवं नैतिकता के अंश को ग्रहण करती चल रही है।

नवीन भारतीय भाषाओं में लिखी हुई कृतियों में, राम के संबंध में विभिन्न लोगों की मनोदृष्टि को संचालित करती हुई, और भारतीय दर्शन तथा धर्म के मुख्य तत्वों की अभिव्यक्ति करती हुई, यह राम के स्वरूप के विकास को प्रतिबिम्बित कर रही है।

मध्ययुगीन वैष्णवता में राम, केवल नायक के रूप में ही सामने नहीं आते, बल्कि, सबसे बड़े देवता के रूप में, जो कृष्ण के साथ वैदिक देवताओं और ब्राह्मणत्व द्वारा निर्मित महान त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, और महेश) का अपने में समावेश करते हैं। राम का दैवी परम तत्व से तादात्म्य स्थापित किया जाता है जो प्रायः सूक्ष्म रूप में समझा जाता है।

तुलसीदास ने राम के स्वरूप की नई धार्मिक तथा दार्शनिक भावनाओं को लिया और उनका आगे विकास किया। उनके राम सूक्ष्म दैवी परमतत्व हैं और मनुष्य भी। विशिष्ट परिस्थिति में पड़े हुए मनुष्य के अनिवार्य क्रिया-कलाप के समान कार्य करते हुए वह (दैवी तत्व) मनुष्य-रूप में अवतार भी हैं। दैवी

परमतत्व की भावना (सगुण-निर्गुण), और मनुष्य-रूप में उसके सूक्ष्म प्राकट्य कुमार राम (सगुण) के बीच तुलसीदास समानता बतलाते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दैवी तत्व ज्ञान के द्वारा इतना नहीं जाना और प्राप्त किया जा सकता जितना कि भक्ति, अर्थात् राम के प्रति तन्मयता पूर्ण प्रेम के द्वारा, जिस प्रेम में जीव सारे विश्व और स्वयं अपने को भूल जाता है।

राम के स्वरूप की तुलसीदास की यह भावना, कविता की प्रबंधात्मकता और उसकी कथावस्तु को बहुत अधिक प्रभावित करती है।

हमें तुलसीदास की कविता की कथावस्तु के मुख्य स्थलों का संकेत करना चाहिये।

१—पहला कांड (बाल-कांड) राम के बालपन से संबंधित है फिर भी नायक की बाल्यावस्था के चित्रण को पहले कांड का अधिक भाग नहीं मिला है, क्योंकि तुलसीदास यहाँ पर अपने दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं।

संस्कृत में लिखे आरम्भिक श्लोकों में कवि गणेश, सरस्वती, तथा शिव की प्रार्थना करता है। फिर हिंदी में वह उनसे सहायता की प्रार्थना करता है और गणेश तथा अपने गुरु के प्रति सम्मान प्रकट करता है। इसके आगे वह सत् और असत् को प्रणाम करता है क्योंकि ईश्वर न अच्छा है और न बुरा और यह भेद वेदों के द्वारा किया गया है। तुलसीदास कहते हैं कि वह जनता की सीधी-सादी भाषा में लिख रहे हैं यद्यपि वह इस के कारण दुष्टों से व्यंग्य की आशा कर रहे हैं। वह राम के सार-स्वरूप की व्याख्या करते हैं, और उनके परम-तत्व तथा उनके नाम की शक्ति के बारे में कहते हैं।

तुलसीदास कहते हैं कि यह कविता शिव द्वारा रची गई है। कवि स्पष्ट करता है कि उसने अपने बचपन में इसे अपने गुरू से सुना था और इसलिये अपनी स्मृति के आधार पर लिख रहा है। इसके आगे वह विशेष ढंग से काव्य की कथावस्तु की संक्षिप्त व्याख्या करता है। कथा को जारी रखते हुये तुलसीदास महान ऋषि भरद्वाज के याज्ञवल्क्य से मिलन का वर्णन करता है। उनकी प्रार्थना पर याज्ञवल्क्य कथा कहते हैं। आरम्भ में वह शिव की पत्नी उमा के मन में उठने वाले संदेहों को बताते हैं। उमा को इसमें संदेह हुआ कि राम परब्रह्म अर्थात् दैवी परमतत्व हैं। इन शंकाओं के फलस्वरूप उमा मर जाती हैं और दूसरे जन्म में राजा हिमालय की कन्या, पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं। शिव की पत्नी बनने के लिये वह अश्रुतपूर्व तपस्या की साधना करती हैं।

इस समय शक्तिशाली राक्षस, तारक, देवताओं को कष्ट देता है। देवता ब्रह्मा से सहायता की याचना करते हैं। उनको बताया जाता है कि तारक केवल शिव से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही पराजित किया जा सकता है। ब्रह्मा आकाशवासियों (देवता) को प्रेम के देवता कामदेव के पास जाने की सलाह देते हैं क्योंकि शिव प्रेम की भावना से बहुत दूर हैं और ध्यान मग्न हैं। काम सहायता देने के लिये राजी हो जाता है। अपने बाण से वह शिव के ध्यान को भंग करता है, किन्तु क्रुद्ध शिव उसे अपनी दृष्टि से भस्म कर देते हैं।

इसके बाद ब्रह्मा समस्त देवताओं की ओर से शिव से, पार्वती से विवाह करने की प्रार्थना करते हैं। शिव इसे स्वीकार करते हैं और बड़ी बारात लेकर हिमालय के यहाँ जाते हैं और पार्वती से विवाह करते हैं। शिव पार्वती से दार्शनिक वार्तालाप करते हैं जिसमें वह राम के दैवी-स्वरूप का उद्घाटन करते हैं। वह दैव

तत्व के अवतार के विभिन्न कारणों को बतलाते हैं। राम के अवतार लेने के कारणों में, एक, नारद का शाप है। शिव दैवी माया की विशाल शक्ति का संकेत देते हैं जो (दैवी रचनात्मक शक्ति) संसार को बनाती हुई केवल भ्रान्तिमय (माया मय) अस्तित्व रखती है। उसकी शक्ति के उदाहरण-रूप में वह महान ऋषि नारद के भाग्य के परिणाम के बारे में बताते हैं जो इससे आक्रान्त हुए।

शिव के शब्दानुसार राम के अवतार का दूसरा कारण परब्रह्म द्वारा दिया गया मनु और उनकी पत्नी सतरुपा के पुत्र-रूप में अवतरित होने का वरदान था, जो बड़ी तपस्या के बाद उनको मिला था।

तीसरा कारण राजा प्रताप भानु का पतन था। ब्राह्मणों के शाप के फलस्वरूप महान राजा प्रताप भानु शक्तिशाली राक्षस रावण के रूप में पैदा होता है। रावण अपने भाइयों सहित कठिन तपस्या करता है। भयभीत ब्रह्मा उसकी तपस्या के लिए उसको मन चाहा वरदान देते हैं। उसे यह वरदान प्राप्त होता है कि शक्ति से, न कोई देवता मार सके न राक्षस; उसकी मृत्यु केवल मनुष्य या बन्दर से ही हो सकती है।

रावण सुन्दरी मन्दोदरी से विवाह करता है और लंका द्वीप में बस जाता है। एक सुदृढ़ गढ़ बनाकर वह देवताओं को युद्ध में छिन्न-भिन्न कर उनको अपनी शक्ति द्वारा पराजित कर डालने का या अपने अधीन बना लेने का निश्चय करता है। वह यज्ञों की मनाही कर देता है जिनसे देवता पुष्ट होते हैं। देवता भागते हैं और पहाड़ों की गुफाओं में छिप जाते हैं। सभी निवासी रावण के सामने त्रस्त हैं। जहाँ कहीं उसे गाय या ब्राह्मण मिलते हैं वह उनको आग में झोंक देता है और शहर और गाँवों को नष्ट कर देता है।

पृथ्वी असत् के भार को सहने में, वहन करने में, अक्षम होकर देवताओं के पास जाती है। ब्रह्मा और शिव की प्रार्थना पर देवता विष्णु से विनय करते हैं। विष्णु दैवी-तत्व के रूप में पृथ्वी की सहायता करने आते हैं। विष्णु, अवतार लेने का और पृथ्वी के ऊपर से असत् के हटाने का वचन देते हैं।

इसके बाद शीघ्र ही परब्रह्म या हरि, अवध के राजा दशरथ और उनकी पत्नी कौशल्या के पुत्र राम के रूप में, जन्म लेते हैं। अपने दूसरे अंशों में वह दशरथ और उनकी दूसरी पत्नियों के पुत्रों के रूप में जन्म लेते हैं। समान रूप से राम बालक और परब्रह्म के रूप में प्रकट होते हैं। समस्त भारतीय बच्चों की तरह उनका भी पालन-पोषण होता है। खेल में, अध्ययन में, युद्ध में और वीरता में वह अपने सभी भाइयों से बढ़ जाते हैं।

एक बार राजा दशरथ के पास ऋषि विश्वामित्र आते हैं और उनसे युवा राम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण को जंगल में भेजने की प्रार्थना करते हैं। राक्षस आश्रमवासियों (साधुओं) को यज्ञ नहीं करने देते; इसलिए राम को उनकी रक्षा करनी ही चाहिए। राजा पहले तो अस्वीकार कर देते हैं, किन्तु अपने राज-पुरोहित वशिष्ठ की सलाह से दोनों भाइयों को भेज देते हैं। राम राक्षसों को पराजित करते हैं और विश्वामित्र की सलाह पर मिथिला के राजा के यहाँ धनुषयज्ञ में चल देते हैं। मिथिला के राजा जनक यह घोषणा करते हैं कि जो इस बड़े धनुष पर अधिकार प्राप्त कर सकता है उसे हल से उत्पन्न हुई पृथ्वी की कन्या विवाह में मिलेगी। बहुत से राजा और वीर एकत्रित होते हैं, किन्तु कोई भी धनुष को उठा नहीं पाता। राम धनुष को उठा लेते हैं और इतनी दूरी तक खींचते हैं कि वह टूट जाता है। इसके फलस्वरूप राम सीता के पति हो जाते हैं।

राजा जनक राजा दशरथ को निमंत्रण भेजते हैं। उनके

आने पर राम और सीता का विवाह होता है। इसके बाद राम के भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न का विवाह भी हो जाता है। विवाह-भोज समाप्त होने पर दशरथ अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं के साथ अवध लौट जाते हैं।

२—दूसरे कांड अयोध्या में, जो सबसे अधिक नाटकीय और भावातिरेक से ओतप्रोत है, रामादि के अवध की राजधानी अयोध्या लौटने पर, घटनाओं का चित्रण किया गया है। राम के लौटने पर अयोध्या प्रसन्नता और सौभाग्य से पूर्ण है। सभी राम पर मुग्ध हैं। सबकी इच्छाओं को मानते हुए दशरथ अपने जीवन-काल में ही राम को युवराज बनाने की सोचते हैं। वह राज-पुरोहित वशिष्ठ से सम्मति तथा सहमति की प्रार्थना करते हैं। वशिष्ठ इस पर प्रसन्न होते हैं और स्वयं राम को इसकी सूचना देते हैं। राजधानी में राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होती हैं। राजा की इच्छा का राज-सभा अनुमोदन करती है।

देवता अपने स्वार्थमय उद्देश्य का अनुसरण करते हुए इसके न होने की कोशिश करते हैं और सहायता के लिए देवी सरस्वती या वाणी की अधिष्ठात्री के पास जाते हैं। देवी सरस्वती राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी कैकेयी की प्रिय कुबड़ी दासी की मति फेर देती है और उसके शब्दों के प्रभाव में पड़कर कैकेयी ईर्ष्यावश राम के राज्याभिषेक के निर्णय को रद्द कर देना चाहती है। इसके बाद कैकेयी कोप भवन को जाती है और राजा को अपनी दो इच्छाओं को पूर्ण करने का शपथपूर्ण वचन देने को विवश करती है। इसके बाद वह दो वर माँगती है—(अ) राम के स्थान पर उसके पुत्र राजकुमार भरत, राज्य के स्वामी हों। (ब) राम निर्वासित होकर १४ वर्ष के लिए घने जंगल में जाएँ। राजा न तो अपने वचन का पालन कर सकता है और न उसे अस्वीकार। कैकेयी राम को राजा की सहायता

के लिए बुलाती है और राम प्रसन्नता के साथ निर्वासन के लिए तैयार हो जाते हैं। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण वन को जाते हैं। उनके पीछे राजा अपने मंत्री सुमन्त्र को राम और उनके सहयात्रियों को लौटा लाने के लिए रथ (घोड़े) भेजता है। राम के पीछे अवध की सारी जनता जाती है।

राम ने उस रात में अवध के निवासियों को छोड़ दिया और घने जंगल में चले गए। जब वह गंगा के तट पर पहुँचे तो यहाँ उनसे बनवासी निषादों का स्वामी गुह मिला जिसे राम ने अपना मित्र बना लिया। सुमन्त्र ने सभी प्रकार से राम को लौटने के लिए मनाया, किन्तु अपना ध्येय न प्राप्त कर सका। सीता ने भी लौटने से इनकार कर दिया। गंभीर दुख में भरा हुआ सुमन्त्र अकेले अवध लौटा।

राम और आगे चले। प्रयाग (आजकल का इलाहाबाद) नगर पहुँच कर उन्होंने विख्यात ऋषि भरद्वाज से भेंट की। आगे चल कर वह वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे। उनकी सलाह से राम चित्रकूट पहाड़ पर बस गये। यह जानकर आकाशवासी देवता जंगली जातियों, कोल और किरात का रूप धारण कर जंगल के किनारों पर बस गये।

इस बीच सुमन्त्र दुख से दुर्बल होकर अवध लौटा। राजा दशरथ यह जान कर कि राम, लक्ष्मण और सीता वन में हैं, दुख से मर जाते हैं। सभी रानियाँ और निवासी बड़े दुख में हैं। वशिष्ठ प्राचीन कथाएँ कहते हैं और राज दरबार को कुछ शान्त करते हैं। राजा का शरीर तेल से भरी हुई नाव में रखते हैं। भरत के पास, जो अपने मामा के यहाँ मेहमान थे, तत्काल अवध लौटने की आज्ञा के साथ दूत भेजे जाते हैं। भरत अविलम्ब अवध के लिए चल देते हैं। उन्हें अपशकुन होते हैं। आने पर

उन्हें अपनी प्रसन्न माँ से सब घटनाओं की सूचना मिलती है। दुःख से आक्रान्त और स्तब्ध भरत अपनी प्रसन्न माँ से अलग होते हैं और राम की माँ कौशल्या के पास जाते हैं। दूसरे दिन भरत अपने पिता का दाह-संस्कार करते हैं।

राजा के सचिव और उनकी विधवायें प्रेरित करती हैं कि राम के लौटने तक भरत अवध के राजा बने रहें। भरत अस्वीकार करते हैं। वह सबके साथ जंगल में राम के पास जाने, उनसे अवध लौटने, और राजसिंहासन स्वीकार करने की प्रार्थना करने का प्रस्ताव करते हैं। राजधानी की रक्षा का प्रबन्ध कर वह मन्त्री, रानी, सेना और निवासियों के साथ चल देते हैं।

जब निषाद को भरत के आने का पता चलता है तो वह यह सोचते हुए कि भरत राम का विरोध करने जा रहे हैं, उनसे युद्ध में मिलने का निश्चय करता है। शीघ्र ही उसे भरत के अच्छे विचारों का पता लग जाता है और वह भरत और उनके साथियों को राम के पास ले जाता है। राम प्रसन्नता से भाइयों, माताओं और सभी नागरिकों से मिलते हैं। अपने पिता की मृत्यु का समाचार जानकर राम को बड़ा दुख होता है। शुद्धि क्रिया करने के पश्चात् वह अपने संबंधियों और आये हुए नागरिकों से मिलते हैं।

राम वशिष्ठ से निवासियों को अयोध्या लौट जाने की सम्मति देने को कहते हैं। वशिष्ठ राम के स्थान पर भरत को जंगल में निर्वासित रहने की सलाह देते हैं। भरत प्रसन्नता से मान लेते हैं, किन्तु राजसभा से इस प्रस्ताव को नहीं स्वीकार करा पाते, क्योंकि यह प्रस्ताव राम को विवश बनाता है। इसी समय सीता के पिता राजा जनक आ जाते हैं। सीता अपनी माँ से मिलती हैं और रानियों के बीच सुन्दर विचार और शैली (उपमा) समन्वित बातचीत

होती है। यह बातचीत महत्व पूर्ण ढंग से पिछली घटनाओं की व्याख्या करती है।

इसके बाद अपनी माता की प्रार्थना पर रानी कौशल्या सीता को उनके संबंधियों के पास भेजती हैं। अपने दुःखी होने पर भी राजा सीता के इस व्यवहार का समर्थन करता है। सीता की माँ जनक से उनको रानी के विचारानुसार व्यवहार करने की सलाह देते हुए बातचीत करती हैं।

दूसरे दिन महती राजसभा राम और भरत के भाग्य के प्रश्न को निर्णीत करने के लिए होती है। भरत राम के आदेशानुसार व्यवहार करने का वचन देते हैं। भयभीत देवता, लोगों की बुद्धि फेर देते हैं और वे राम के साथ रहने और अवध लौटने की इच्छा के बीच झूलते हैं। राम भरत से अवध लौटने को कहते हैं। वह स्वयं जंगल में रहते हैं। भरत राम से शिक्षा पाते हैं और चल देते हैं। जाने के पहले राम भरत को उनकी प्रार्थना पर अपने खड़ाऊँ दे देते हैं। अवध लौटने पर भरत राम की खड़ाऊँ को राजसिंहासन पर स्थापित करते हैं। वह स्वयं एक कुटी बनाकर एक ऋषि की तरह जंगल में बस जाते हैं।

३—तृतीय कांड का नाम अरण्य है क्योंकि यह राम के वन्य जीवन से संबंधित है।

एक दिन राम ने फूलों को एकत्रित कर माला बनाकर सीता को सजाया। इस समय अमरों के स्वामी इन्द्र के पुत्र जयन्त ने राम की शक्ति की परीक्षा लेनी चाही। अपने को कौवे में परिवर्तित कर अपनी चोंच से सीता के चरणों को आहत कर वह उड़ा। राम ने उसके पीछे अपने तरकश से वाण छोड़ा। जयन्त की इस वाण से रक्षा करने की शक्ति किसी में न थी यद्यपि वह इन्द्र, शिव और ब्रह्मा के पास गया। नारद ऋषि की

सलाह पर वह राम ही के पास लौटा और राम ने अपने बाण को वापस ले लिया।

इसके बाद शीघ्र ही राम ने चित्रकूट छोड़ने का निश्चय किया। वह जंगल के रास्ते ऋषियों के आश्रमों में होते हुए दक्षिण की ओर चले। सबसे पहला अत्रि ऋषि का आश्रम था। यहाँ पर अत्रि की पत्नी अनसूया सीता से स्त्री के कर्तव्यों की विस्तृत व्याख्या करती है। अत्रि मुनि की सम्मति से राम और घने जंगल में गए। जंगल में राम ने शक्तिशाली असुर विराध को मारा। आगे चलकर राम सरभंग मुनि से मिले। सरभंग ने तन्मयता की अवस्था में अपने शरीर को अग्नि में जला दिया और उनकी आत्मा राम द्वारा स्वर्ग भेज दी गई। आगे चलकर राम जंगल में अपने उपासक सुतीक्ष्ण से मिले जिनके साथ वह विख्यात ऋषि अगस्त के पास गए। अगस्त की सलाह पर राम, सीता और लक्ष्मण के साथ गोदावरी नदी के निकट पंचवटी के जंगल में गए। वहाँ पर वह गिद्धों के राजा जटायु से मिले।

राम लक्ष्मण के साथ दार्शनिक विषयों पर वार्तालाप करते हैं। इस तरह उन्होंने एक बार लक्ष्मण से ज्ञान, माया, निर्भीकता, सर्वोच्च परमात्मा और आत्मा के भेद व स्वरूप की व्याख्या की। एक बार पंचवटी में रावण की सूर्पनखा नामक बहिन ने राम सीता और लक्ष्मण को देखा। राम के प्रति मुग्ध होकर उसने सुन्दर रूप धारण किया और अपने को उनकी पत्नी बनाने का प्रस्ताव किया। राम ने उसे लक्ष्मण की ओर उन्मुख किया। लक्ष्मण ने फिर उसे राम के पास भेजा। क्रुद्ध होकर उसने अपना त्रासकारी राक्षसी रूप धारण किया तब लक्ष्मण ने उसके नाक और कान काट लिये। क्रोध में सूर्पनखा ने अपने भाई खर और दूषण से अपना बदला लेने की प्रार्थना की। उसके भाई राक्षसों की

बड़ी सेना एकत्रित कर राम के विपक्ष में चले। राम ने उसकी सारी सेना और दोनों शक्तिशाली राक्षसों को नष्ट कर डाला। तब सूर्पनखा प्रतीकार की प्रार्थना लेकर अपने बड़े भाई, राक्षसों के राजा, रावण के पास गई। रावण ने अपनी बहन का बदला लेने का निश्चय किया।

सर्वान्तर्यामी राम ने सीता को अग्नि में छिपाकर पूर्ण कलात्मकता से उनकी प्रतिकृति बनाई। रावण मारीच राक्षस के पास, जिसको राम ने जंगल में ऋषियों की रक्षा करने के लिए विश्वामित्र द्वारा आमंत्रित होने पर एक बाण से सागर के किनारे भेज दिया था, उपस्थित हुआ। रावण मारीच को सहायता देने के लिए मनाता है और उसे स्वर्ण मृग में परिवर्तित कर देता है। मारीच को इच्छा के विरुद्ध तैयार होना पड़ता है और वे दोनों पंचवटी के जंगल में आते हैं जहाँ राम रहते हैं।

सीता इस विचित्र मृग पर मुग्ध हो गई और उसने राम से उसकी खाल लाने की प्रार्थना की। राम ने धनुष लेकर हिरन का पीछा किया और लक्ष्मण को सीता की रक्षा का आदेश दिया। जब राम ने अपने बाण से हिरन को घायल किया तो उसने मनुष्य की आवाज में लक्ष्मण को पुकारा। सीता ने इस पुकार (चीख) को सुना और यह समझकर कि राम लक्ष्मण को बुला रहे हैं उनको राम के पास भेज दिया। उस समय रावण उनके निकट आया। सीता को पकड़कर वह उसे अपने वायु रथ पर ले चला। सीता ने बड़े (जोर से) क्रन्दन किया। इस क्रन्दन को गिद्धों के राजा जटायु ने सुना। उसने रथ पर आक्रमण किया और सीता को मुक्त करना चाहा, किन्तु रावण ने उसके पंख काट डाले। रावण ने फिर सीता को रथ पर बिठाया और दक्षिण की ओर ले गया।

एक पहाड़ पर सीता ने बन्दरों को देखा और रुदन करते हुए उनकी ओर अपने वस्त्र फेंके।

अपनी कुटी में लौटने पर राम और लक्ष्मण ने सीता को न पाया। राम पशु-पक्षियों की ओर, पेड़ और लताओं की ओर, उन्मुख होते हैं और सबसे यह बताने की प्रार्थना करते हैं कि सीता कहाँ गई। सीता की खोज में जंगल में घूमते हुए वह कबन्ध राक्षस का नाश करते हैं। इसके बाद वह तपस्विनी शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। राम उसे आशीर्वाद देते हैं और वह अपने को चिता पर जला देती है। गिद्धों के राजा जटायु से राम को पता लगता है कि सीता को कौन और किस दिशा में ले गया। घने जंगल में जाकर राम दुःख से आक्रान्त हो जाते हैं और लक्ष्मण को उपदेश देते हैं।

४—चतुर्थ कांड को 'किष्किन्धा' कहा गया गया है। किष्किन्धा राम के मित्र बंदरों की राजधानी कही जाती है। दक्षिण की ओर आगे बढ़ते हुए राम लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूकपर्वत पहुँचते हैं जहाँ अपने भाई बालि द्वारा राज्य से वंचित अपने बुद्धिमान मंत्री हनुमान के साथ बंदरों का राजा सुग्रीव बैठा था। उनको आता देखकर सुग्रीव ने हनुमान को ब्राह्मण का रूप धारण करने और यह जानने का आदेश दिया कि ये दो युवापुरुष कौन हैं। राम ने इस रूपधारी ब्राह्मण को बताया कि हम कौन हैं और किसलिए जंगल में घूम रहे हैं। इसके बाद शीघ्र ही हनुमान ने अपना असली रूप धारण कर लिया, अर्थात्, फिर बंदर के रूप में बदल गए। उन्होंने बताया कि राजा सुग्रीव सीता की खोज में राम की सहायता कर सकते हैं।

सुग्रीव ने राम से बताया कि मैंने रावण को सीता को ले जाते हुए देखा था। राम को वे वस्त्र देकर जो सीता ने बंदरों

की ओर फेंके थे, और, यह देखकर कि राम फिर शोक-मग्न हो गए, सुग्रीव सीता की खोज में सहायता करने का वचन देता है। सुग्रीव बताता है कि अपने भाई बालि की उससे शत्रुता है। बालि उसको मारना चाहता है। उसने उसका राज्य और उसकी पत्नी छीन ली है। राम उसे राज्य दिलाने में उसकी सहायता करने का वचन देते हैं। शीघ्र ही राम अपने बाण से बालि को मार डालते हैं और सुग्रीव को राज्य देते हैं। सुग्रीव किष्किंधा राजधानी के प्रासाद में जाता है। राम जंगल में प्रवर्षण पर्वत पर बस जाते हैं जहाँ वह वर्षा ऋतु व्यतीत करते हैं।

जब वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है तो सुग्रीव बहुत से बंदरों को सीता की खबर प्राप्त करने को भेजते हैं। राम हनुमान को सीता को देने के लिए अपनी अँगूठी देते हैं। बंदर सभी जगह बहुत समय तक खोज करते हैं, किंतु सीता का कोई समाचार नहीं प्राप्त कर पाते। एक बार प्यास से थके हुए बंदर पर्वत-गुफा में पहुँचते हैं, जहाँ सुंदर तालाब था। वहाँ उन्होंने एक तपस्विनी को देखा। उसने बंदरों को बताया कि वे बहुत शीघ्र सीता का समाचार पाएँगे। बंदर शीघ्र ही सागर-तट पर दिखाई पड़े। वहाँ गृद्ध जटायु के भाई संपाति से पता चला कि सीता लंका में हैं। संपाति ने उन्हें बताया कि एक समय उसने अपने भाई के साथ सूर्य की ओर उड़ना चाहा था। जटायु ताप को न सह सका और पृथ्वी पर लौट आया। संपाति ऊँचे उड़ता ही गया। उस के पंख जल गए और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम के दूतों को देखकर अब उसे अपनी शक्ति प्राप्त हो गई। यह जानकर कि सीता लंका में हैं, हनुमान ने वहाँ जाने का निश्चय किया।

५—पाँचवाँ कांड 'सुंदर' (कांड) कहा जाता है। इसमें हनुमान की लंका-यात्रा और सीता को राम के कुशल-संवाद देने की कथा

है। हनुमान ने लंबी छलाँग लगाई और समुद्र के ऊपर उड़े। सुरसा-सर्प ने हनूमान को पकड़ना चाहा किन्तु उन्होंने अपनी चमत्कारी शक्ति से उसे हरा दिया। गंभीर सागर में दुष्ट राक्षसी रहती थी। वह पक्षियों की पानी पर पड़ने वाली छाया को पकड़ कर उनको खींच लेती थी। पक्षी अपनी छाया के बिना न उड़ पाते थे और समुद्र में गिर पड़ते थे। वह इसी प्रकार हनुमान को पकड़ना चाहती थी किंतु हनुमान ने उसे मार डाला और वह शीघ्र ही लंका पहुँच गए। इसके आगे लंका नगर का सुंदर वर्णन दिया गया है।

हनुमान ने अपने को मच्छर की तरह छोटा बना लिया और लका में घुसना चाहा। द्वार-रक्षक ने उनको पकड़ लिया। उसने उनको राम का दूत जानकर जाने दिया और वह नगर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सभी बगीचों और राजधानी की राजसभा को देखा किंतु सीता को न पाया। अन्त में उन्होंने विष्णु का मंदिर देखा और इस प्रकार जाना कि यहाँ राम का कोई भक्त रहता है। विष्णु और राम का भक्त, रावण का भाई, विभीषण दिखाई पड़ा। हनुमान ने उसे राम के विषय में जो कुछ वह जानते थे सब बता दिया और विभीषण ने उनको रावण द्वारा अपहृत सीता जहाँ रहती थी, उसका पता दिया। हनुमान अशोक वृक्ष के कुंज में आए और सीता को देखा। वे राम के लिए दुखी थीं। इसी समय रावण अपनी पत्नियों और दरबार सहित वहाँ दिखाई पड़ा और सीता को, अपने को समर्पित कर देने के लिए मनाने लगा। जब खुशामद और मनाने से काम न चला तो रावण ने एक मास में उसकी जान ले लेने की धमकी दी। सीता एक दासी की ओर उन्मुख हुई और चिता में जलकर अपनी जान दे देने का निश्चय कर उससे अपने लिए लकड़ियाँ एकत्रित करने की प्रार्थना की। दासी सीता को शांत कर चली गई। इस समय हनुमान ने राम

की अँगूठी डाल दी और सीता से उनकी खोज में लगे हुए राम के विषय में बताया।

सीता से बातचीत करने के बाद हनूमान उनकी सम्मति से बगीचे में गए और फल खाने लगे। उसके बाद पेड़ तोड़ना शुरू किया। रक्षकों ने उन पर आक्रमण किया। उन्होंने बहुतों को मार डाला। बचे हुए भागे और शक्तिशाली बंदर के विषय में रावण को बताया। रावण ने हनूमान के विरुद्ध अपने पुत्रों में सबसे अधिक शक्तिशाली मेघनाद को सेना सहित उसको जीवित पकड़ लाने का आदेश देकर भेजा। जब हनूमान रावण के पास ले जाए गए तो उन्होंने घोषणा की (जो कि राम का संदेश-सदृश प्रतीत हुआ) और बड़ी देर तक राम को सीता लौटा देने और राम कीशक्ति को स्वीकार करने के लिए रावण को मनाया। अन्त में रावण ने बंदी बंदर की पूँछ को तेल-सिक्त कपड़े से बाँधने का और जलाने का आदेश दिया। हनूमान राज दरबार और लंका के घरों पर कूदने लगे और इस प्रकार सारी राजधानी को उन्होंने जला दिया। सीता के पास लौटकर हनूमान को, राम को दिये जाने के लिए उनसे चूड़ामणि मिला और वह वापस उड़े। घटनाओं के बारे में जानकर राम ने बंदरों को आक्रमण के लिए एकत्रित होने का आदेश दिया। शुभ शकुन चिन्हों से संयुक्त राम समुद्र तट पर पहुँचते हैं।

लंका की जनता में भय व्याप्त है। स्वयं रानी मंदोदरी सीता को लौटा देने के लिए रावण को मनाती है। राज्य शक्ति से मदोन्मत्त रावण इसे नहीं मानता और राज्य सभा को बुलाता है। सभासद राजा को प्रसन्न करने के लिए उसकी चाटुकारिता करते हैं। रावण का भाई विभीषण सीता को लौटा देने की और राम से संधि करने की सलाह देता है। रावण उसे मारता है और वह राम के पक्ष में चला जाता है। विभीषण के शब्दों की सच्चाई

पर विश्वास कर राम उसका राज्याभिषेक करते हैं। रावण राम के शिविर में जासूस भेजता है। बंदर उसे पकड़ लेते हैं और मारते हैं। लक्ष्मण ने रावण के लिए उसे संदेश दिया और उसके मुक्त किये जाने का आदेश दिया। रावण के पास लौटने पर जासूस उसे राम की सेना की शक्ति के विषय में बताते हैं और लक्ष्मण का संदेश देते हैं। रावण उसकी सलाह को नहीं सुनता। राम सागर-तट पर बैठ जाते हैं और बंदरों के लंका जाने के लिए उससे मार्ग देने की प्रार्थना करते हैं। समुद्र ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान न दिया और राम ने अपने अग्निबाण द्वारा सागर को सुखाने का निश्चय किया। सागर के सभी जीव त्रस्त हो गए। सागर शीघ्र ब्राह्मण के वेष में उपस्थित हुआ और उसने प्रत्येक प्रकार की सहायता का वचन दिया। राम ने अपने सत्त्व-भाव-वश उसके हठ को क्षमा कर दिया।

६. छठे कांड का नाम लंकाकांड है ? क्योंकि इसमें लंका में होनेवाली घटनाओं का चित्रण है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण राम और रावण का युद्ध है। बन्दर समुद्र के ऊपर पुल बनाते हैं। बन्दरों के नायक नल और नील चमत्कारी शक्ति रखते हैं। जो कुछ वह छूते हैं पानी के ऊपर तैरने लगता है। दूसरे बन्दर ऊपर से बड़ा-बड़ी चट्टानों को फेंकते हैं; उनको नल और नील छूते हैं और वे सभी चट्टाने पानी के ऊपर रुकी रहती हैं। इस प्रकार समुद्र के ऊपर पुल बनाया गया। उस समय राम समुद्र-तट पर शिव-मन्दिर और लिंग की स्थापना करते हैं। शीघ्र ही राम की सारी सेना पुल के ऊपर से समुद्र पार करती है।

जब लंका में इसका पता लगता है तो मन्दोदरी फिर से रावण को राम के पास सीता को लौटाने, राज्य छोड़ने और जंगल में जाकर रहने के लिए मनाती है। वह विशिष्ट ढंग से रावण से कहती है कि राम सामान्य राजकुमार नहीं, सबसे

बड़े देवता हैं। रावण उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देता। फिर से राज-सभा बुलाकर वह चाटूक्तियाँ ही सुनता है। जिसने उसके मत-परिवर्तन की कोशिश की रावण ने उसे राज-सभा से निकाल दिया। सभा समाप्त होने पर रावण भोज में जाता है।

इधर राम शांतिपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। वह अपने मित्रों से चन्द्र-लांछन (दाग़ी) के विषय में बातचात करते हैं। यह जान कर कि रावण उत्सव कर रहा है, राम एक बाण छोड़ते हैं। अपने एक बाण से वह उसके दसों मुकटों को दस सिरों से, और मन्दोदरी के कानों से कुंडलों को गिरा देते हैं। उत्सव में बैठे हुए सभी आशंकित हो उठते हैं। घर लौटने पर मन्दोदरी रावण को सीता लौटा देने और राम की शक्ति के अधीन होने के लिए पुनः मनाती है; किन्तु अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त कर पाती।

राम अपनी सभा बुलाते हैं और शक्तिशाली भालू जामवन्त की सलाह पर रावण के पास वानर राज सुग्रीव के संबंधी अंगद को संदेश देकर भेजते हैं। अंगद रावण के साथ व्यंग्यपूर्ण बात-चीत में प्रवृत्त होता है और उनके सन्देश को विफल बनाता है। मन्दोदरी एक बार फिर रावण का मत-परिवर्तन करना चाहती है; किन्तु उसका प्रयत्न रावण के अत्यधिक गर्व के कारण अपूर्ण ही रहता है।

युद्ध प्रारंभ होता है जिसमें असंख्य राक्षस रावण की ओर से और बहुत से बन्दर और भालू राम की ओर से लड़ते हैं। पहले ही दिन राक्षसों की बड़ी हानि होती है और रावण की बुलाई हुई सभा में रावण का चाचा माल्यवन्त उससे सीता को राम के पास लौटा देने की प्रार्थना करता है। रावण इसे नहीं स्वीकार करता। दूसरे दिन युद्ध में दो बड़े नायक, राम के भाई लक्ष्मण, और रावण के प्रिय पुत्र मेघनाद उपस्थित होते हैं।

लक्ष्मण बहुत घायल होते हैं। वह बेहोश हो जाते हैं। वैद्य की सलाह पर हनुमान उत्तर की ओर हिमालय में जड़ी-ओषधि लाने के लिए चल देते हैं। रावण कालनेमि राक्षस को हनुमान को मारने का आदेश देता है। कालनेमि अपने को तपस्वी बना लेता है और हनुमान के जाने के रास्ते पर कुटी में बैठता है। हनुमान तपस्वी की कुटी में विश्राम के लिए जाते हैं। जब वह तालाब में नहाने के लिए घुसते हैं उनको जल की राक्षसी मकरी पकड़ लेती है। हनूमान ने मकरी को मारा और वह आकाश-वासी अप्सरा बन गई। उसने हनुमान को बताया कि उसका गृहस्वामी (मेजबान) राक्षस है। हनुमान ने कालिनेमि राक्षस को मारा और उत्तर की ओर चले। औषधि को न पहचानने के कारण हनुमान ने औषधि सहित पूरे पहाड़ को उखाड़ कर लौटाने के लिए हवा में उड़े। जब वे अवध के ऊपर उड़े तो राम के भाई भरत ने उनको राक्षस समझ कर उनके ऊपर कुंद तीर चलाया। गिरते हुए हनुमान ने चिल्लाकर कहा 'राम' इससे भरत ने उनको राम का उपासक समझा। वह हनुमान् को होश में लाए और हनुमान ने राम के साहसी कार्यों के विषय में बताया। इसके बाद वह लंका की ओर उड़ गए। वैद्य ने औषधि का उपयोग किया और लक्ष्मण स्वस्थ हो गए।

यह जान कर रावण अपने भाई कुंभकर्ण के पास गया। कुंभकर्ण की भूख चमत्कारी थी और वह सारे संसार को खा सकता था; इसलिए देवताओं ने उसे वरदान दिया था जिसके फलस्वरूप वह आधे वर्ष सोता था। रावण ने कुंभकर्ण को जगाया और उसे भोजन कराया। कुंभकर्ण युद्ध भूमि को गया। उसके अद्भुत् शक्ति रखने पर भी राम ने उसे मार डाला। फिर रावण का प्रिय पुत्र मेघनाद युद्ध में गया। अपनी अत्यधिक शक्ति से मेघनाद ने राम के चारों ओर नाग-पाश (साँप का फंदा)

डाल दिया। नारद ने, साँप को खाने वाले पक्षियों के राजा गरुड़, को भेजा। गरुड़ ने सब साँपों को खाकर राम को छुड़ा लिया। भालुओं के राजा जामवन्त द्वारा पराजित होने पर मेघनाद ने अजेय होने के लिए अद्भुत यज्ञ करने का विचार किया। राम के आदेशानुसार बन्दरों ने उस यज्ञ को नष्ट कर डाला और लक्ष्मण ने मेघनाद को मार डाला। उसके शरीर को हनूमान लंका के द्वार पर रख आए। लंका में और आशंका छा गई।

उसके बाद रावण स्वयं युद्ध में जाता है। उसके विरुद्ध राम उपास्थित होते हैं। रावण आरंभ में हनुमान् और लक्ष्मण से युद्ध करता है। उनकी भयंकर शक्ति को देखकर वह अद्भुत यज्ञ करने का निश्चय करता है। बंदर उसके यज्ञ को नष्ट कर देते है। लक्ष्मण और हनुमान से युद्ध के बाद रावण स्वयं राम से युद्ध करने को उपस्थित होता है। राम उसके दस सर और बीस हाथ काटते हैं, किन्तु वे फिर से बढ़ आते हैं। अन्त में राम, एक साथ अपने बाण रावण के हाथ, सिर और नाभि (जहाँ कि उसका जीवन उसको अमरता देता हुआ स्थित हैं) पर छोड़ते हैं और रावण मर जाता है। विभीषण यथा-विधि उसका दाह-संस्कार करता है। इसके बाद विभीषण का राज्याभिषेक होता है और वह लंका के सिंहासन पर आसीन होता है।

राम सीता को अपने पास लाने का आदेश देते हैं। उनकी पवित्रता की परीक्षा के लिए एक बड़ी चिता बनाई जाती है। सीता उसमें प्रवेश करती है। चिता में सीता की प्रतिकृति, जो रावण के यहाँ रही थी, जल जाती है और अग्नि से असली सीता निकलती हैं।

ब्रह्मा इन्द्र आदि प्रकट होते हैं और प्रत्येक राम की स्तुति का गान करता है। राम की आज्ञानुसार इन्द्र, युद्ध भूमि

में मृत बन्दरों को जीवित कर देता है। राम बन्दरों को धन्यवाद देते हैं, उनको पुरस्कृत करते हैं और उनको घर भेजते हैं। वह स्वयं सीता, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण और सुग्रीव, तथा दूसरे महत्वपूर्ण बन्दरों के साथ वायुरथ में बैठते हैं और उत्तर दिशा में अपने देश अवध की ओर उड़ते हैं।

७. सातवाँ कांड लेखक द्वारा उत्तरकांड कहा गया है। इसका बहुत थोड़ा भाग राम की कथा से सम्बद्ध है। इसका मुख्य भाग भुशुंड की भेट से संबंधित है जो दार्शनिक वस्तु-विषय की व्याख्या करता है और जो लेखक के विचारानुसार राम-कथा के ठीक-ठीक समझने में सहायता देता है।

इस कांड के आरंभ में, राम के लौटने की प्रतीक्षा करते हुए भरत की शंका का वर्णन किया गया है। राम के निर्वासन की अवधि समाप्त होने को केवल एक दिन रह गया है। ब्राह्मण के वेश में हनुमान् भरत के पास आते हैं और उनको बताते हैं कि राम रास्ते में हैं। राजधानी मुग्ध हो जाती है। शीघ्र ही राम आते हैं। सभी हर्ष-ध्वनि करते हैं। राम राज्य सिंहासन पर विराजते हैं। आधे वर्ष तक राम ने अपने मित्र बन्दरों और विभीषण को सम्मानित किया और फिर उनको विदा किया। इसके बाद उन्होंने अपने प्रिय मित्र गुह को भेजा। हनुमान अपने अत्यधिक प्रेम के कारण राम के पास लौट आते हैं। वह विशेष ढंग से राम के भाइयों से उनके साहसपूर्ण कार्यों की कथा कहते हैं। राम के राज्य में भाग्य और प्रसन्नता का पूर्ण प्रवाह है। सीता के दो पुत्र लव और कुश होते हैं। उनके पुत्र और पौत्र होते हैं। राम के पास बड़े-बड़े ऋषि आते हैं और उनका स्तवन करते हैं।

राम अपने भाइयों और नगर की सारी जनता को

दार्शनिक भावनाओं की व्याख्या करते हुए, शिक्षा देते थे, विशेषतया वह इन भावनाओं पर विशेष ध्यान देते है, 'मनुष्य', 'आत्मा', 'ज्ञान', 'भक्ति' आदि। शिव उमा से कहते हैं कि उन्होंने कथा समाप्त कर दी जो कि कभी काकभुशुडि जी ने पक्षियों के राजा गरुड़ से कही थी। उमा पूछतीं हैं कि कौवे ने राम से भक्ति का महान् वरदान कैसे पाया और कैसे कौवे का शरीर पाया जो अपवित्र माना जाता है।

शिव कहते हैं कि अपनी पत्नी सती के मरने पर वह दुःख में अनेक संसारों में घूमते रहे। एक बार वह सुमेर पर्वत के उत्तर पहाड़ पर पहुँचे जहाँ काकभुशुंडि रहते थे। वह (काग भुशुंडि) उस समय भी नहीं मरते जबकि सारा संसार नष्ट हो जाता है। वहाँ शिव ने उनसे राम की कथा कही।

गरुड़ शंकाओं से भरे हुए कौवे के पास आए। जब उन्होंने राम के नाग-पाश को देखा तो उसे उनके (राम के) दैवी स्वभाव की वास्तविकता के विषय में शंका हुई। यदि राम परब्रह्म हैं अर्थात् स्वयं दैवी तत्व हैं तो उन्होंने अपने को किस प्रकार नागपाश में बँधने दिया। इस शंका के निवारण के लिए शिव ने उनको काकभुशुंडि जी के पास भेजा जिन्होंने राम की कथा कही। इसके बाद कौवे ने राम और माया आदि के दर्शन की व्याख्या की। उन्होंने भक्ति प्राप्त करने की पूर्व की स्थिति का भी वर्णन किया और उस ज्ञान की सूचना दी जो राम ने उनको दिया था।

गरुड़ ने कागभुशुंडि से यह बताने की प्रार्थना की है कि उनको कैसे और क्यों कौवे का शरीर मिला। कागभुशुंडि बतलाते हैं कि वह कभी नीच-जाति के शूद्र थे और शिव के पुजारी थे। अपने गुरू के प्रति जो विष्णु के पुजारी थे, ध्यान न देने के

कारण स्वयं शिव ने उनको शाप दिया, और शाप की शक्ति से वह सर्प-रूप में पैदा हुए। इसके बाद वह एक हजार योनियों में भ्रमण करते हुए अन्त में ब्राह्मण हुए। वह लोमष ऋषि के पास गए और उनसे ब्रह्म के अवतार राम के ज्ञान की शिक्षा देने की प्रार्थना की। लोमष ऋषि ने ब्रह्म, दैवी परमतत्व, के विषय में बातचीत की। किन्तु ब्राह्मण उनसे दार्शनिक वाद-विवाद में लग गया और उसने ब्रह्म के अवतार की शिक्षा की मांग की। बारंबार ब्राह्मण द्वारा उनकी मनोदृष्टि तथा उनकी स्थापना का सतत और दृढ़ विरोधी होने के कारण लोमष ऋषि ने उसे कौवा बना दिया। इसके बाद कागभुशुंडि दार्शनिक वार्तालाप के बीच आत्मा, माया, ज्ञान, भक्ति आदि के सार-तत्व की व्याख्या करते हैं। अन्त में गरुड़ सात महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। काकभुशुंडि के विस्तृत उत्तरों के साथ तुलसीदास के काव्य का सप्तम, अन्तिम कांड समाप्त होता है।

तुलसीदास के काव्य की कथावस्तु की संक्षिप्त व्याख्या, सामग्री की व्यापकता और अनेकरूपता को प्रकट करती है। कविता भारतीय समाज की विभिन्न सीढ़ियों पर खड़े, असंख्य व्यक्तियों और भारतीय कल्पना द्वारा निर्मित स्वरूपों का, समावेश करती है। कविता में दैवी तत्व स्वयं अभिनेता की तरह सामने आता है जिसे तुलसीदास विभिन्न नाम देते हैं—ब्रह्म, परब्रह्म, सच्चिदानन्द आदि। इसके दो पक्षों का समावेश किया गया है—(अ) एक निर्गुण रूप जैसे सत्, चित् और आनन्द। (ब) मनुष्य का रूप धारण किए हुए राम के अवतार रूप में। आगे पूरी कविता में ब्राह्मणत्व के त्रिदेवता अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, अर्थात् ब्रह्मा स्रष्टा, विष्णु पालनकर्त्ता, शिव संसार के नाशकर्ता। असंख्य वैदिक देवता पृष्ठभूमि में रहते हैं जिनमें

से अपने व्यक्तित्व के साथ से इन्द्र और सरस्वती सामने आते हैं। देवताओं और स्वयं राम के साथ युद्ध में, असंख्य असुर आदि उपस्थित होते हैं जिनको तुलसीदास सामान्यतया राक्षस कहते हैं।

मनुष्यों की जाति में ब्राह्मण, राजा, योद्धा, नागरिक, सौदागार, पति-पत्नी, शूद्र, अर्धबर्बर और वन्य जातियाँ तुलसीदास द्वारा चित्रित की गई हैं।

इसके अतिरिक्त कविता में अनेक पशुपक्षी और जल-राक्षसों का समावेश है।

काव्य का क्रिया-कलाप आकाश और पृथ्वी पर प्रवाहित होता है, राजधानियों में, नगर में और जंगल में। तुलसीदास शांति के जीवन के समान ही युद्ध के जीवन का अंकन करते हैं। वह भारत की दशा का व्यापक चित्रण करते हैं। वह हिन्दू के जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण इच्छाओं का वर्णन करते हैं। हम यहाँ हिन्दू के जन्म और उसके संस्कारों से उसके संबंध को देखते हैं:— नामकरण संस्कार, हिन्दू का पालन-पोषण और शिक्षा। विवाह संस्कार का कई बार वर्णन हुआ है; विशेष रूप शिव पार्वती और सीता एवं राम का विवाह सुंदर रूप से वर्णित है। अन्त में मृतक क्रिया कई बार चित्रित की गई है। अत्यन्त विस्तार के साथ हिन्दू के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, विशेष रूप से हिन्दू स्त्री के सत् व्यवहार का।

कविता में भारतीय मनोदृष्टि से नायक, राजा, पिता, पुत्र, भाई, मित्र का आदर्श रूप दिया गया है। अप्रतिम रूप से तत्कालीन बुराइयाँ और असत् के सामान्य रूप का चित्रण किया गया है।

विस्तार के साथ कविता में दार्शिनिक, धार्मिक, और नैतिक विचारों की व्याख्या की गई है और उसी प्रकार, समान रूप से तुलसीदास के सामाजिक विचारों की भी। राम के स्वरूप और नाम से सम्बन्ध होने के कारण और उनकी महत्ता से अनुमोदित होने के कारण इन विचारों ने उत्तरी भारत की जनता की विचार-धारा पर अपना अत्यधिक प्रभाव दिखाया।

———

तुलसीदास की रामायण की प्रबंधात्मकता

यह सारी अनेकरूपात्मक सामग्री, कविता में एक मात्र कलात्मक उद्देश्य (या विधान) के स्वरूप में संग्रथित होती है, जो अपनी प्रबंधात्मक रचनात्मकता के कारण महत्वपूर्ण (ढंग) रूप में प्राचीन महाकाव्य महाभारत और रामायण में उत्कृष्ट बन जाती है।

कविता की कथावस्तु का ऊपरी परिचय भी हमें कतिपय अत्यन्त सामान्य प्रवन्धात्मक वस्तु-विषयों से अवगत कराता है जिनका तुलसीदास ने भी प्रयोग किया है। उनमें से हम तीन की चर्चा करते हैं।

(१) विविध प्रकार की संग्रहात्मकता (incroporation) या समावेश।

(२) मुख्य कथा में संग्रहीत कहानियों का समावेश।

(३) संग्रहीत कहानियों को मुख्य कथा के अधीन इस प्रकार रखना कि मुख्य कथा का सूत्र खोने न पाए।

कलात्मक कथा-वस्तु के रूप में संग्रहण प्राचीन भारतीय परंपरा में प्रायः दिखाई पड़ता है। यह वैदिक साहित्य में भी लक्षित होता है, विशेष रूप से प्राचीन प्रबंधों में यह महत्व प्राप्त कर लेता है। संस्कृत प्रबन्ध काव्यों में संग्रहण की सहायता से ऐसे बहुत बड़े पात्रों का समावेश किया जाता है जो एक या दूसरी कहानी कहते हैं या कोई दूसरी सूचना देते हैं। संस्कृत प्रबन्ध-

काव्यों में समाविष्ट वस्तु-विषय हमेशा कलात्मकता को नहीं प्राप्त कर पाती। कभी कभी यह सामान्य यंत्रवत् नई सामग्री का समावेश कलात्मक तर्क का बहुत कम अनुसरण करता है।

समावेश के ढंग का उदाहरण राजनीतिक और दैनिक जीवन की नीति-विषयक पंचतंत्र और हितोपदेश (रूसी भाषा में अनूदित) जैसी छोटी पुस्तकों में देखा जाता है।

तुलसीदास अपनी कविता में अत्यधिक समाविष्ट वस्तु-विषय का उपयोग करते हैं। आरम्भ में कवि अपनी ओर से इसकी कथा कहता है। वह स्पष्ट करता है कि वह संस्कृत में न लिखकर सामान्य जनता की भाषा में लिख रहा है। वह कहता है कि दुष्ट उसकी इस कारण हँसी उड़ायेंगे। किन्तु अच्छे पुरुष उसके इस साहसपूर्ण कार्य का मूल्य समझेंगे। इसके बाद तुलसीदास अपने दार्शनिक,धार्मिक, और नैतिक विचारों की व्याख्या करते हैं। आगे चलकर वह याज्ञवल्क्य की कथा कहते हैं। भरद्वाज ने इस ऋषि से राम की कथा कहने की प्रार्थना की। याज्ञवल्क्य कथा कहते हैं और यह कहते हैं कि राम की कथा स्वयं शिव ने रची और अपनी पत्नी पार्वती या उमा से कही। अपनी ओर से कथा कहते हुए शिव उमा को सूचित करते हैं कि उन्होंने यह कथा कागभुशुंडि को दी और फिर कभी कागभुशुंडि ने उसे गरुड़ से कहा।

इस अत्यधिक विविधात्मक समावेश के फलस्वरूप हम तुलसीदास की कविता में कथा कहने वालों के संबोधन के विविध रूप देखते हैं। उदाहरणतः याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं—'सुनो मेरे भाई', 'मेरे मित्र, सुनने की कृपा करो'। शिव पार्वती को संबोधित करते हुए कहते हैं—'सुनो प्रिये', 'सुनो उमा'। कागभुशुंडि इन शब्दों से सम्बोधित करते हैं। "सुनो विहगनायक, सुनो पक्षिराज" इत्यादि।

कभी इन विभिन्न वक्ताओं के संबोधन विस्तृत रूप में दिए गए हैं। उदाहरण के लिए याज्ञवल्क्य राम की विभिन्न कथाओं की स्थिति का संकेत करके कहते हैं—

"तदपि जथा स्रुत कहउँ बखानी"

या शिव उमा से कहते हैं:—

"सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरित मानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना विहग नायक गरुड़॥

उत्तरकांड में शिव कई बार अपनी पत्नी को संबोधित करते हैं—

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा, व्यास समास स्वमति अनुरूपा।
उमा कहेउँ सब कथा सुहाई, जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥

काकभुशुंडि संक्षिप्त रूप में गरुड़ को संबोधित करते हैं—

खगपति राम कथा मैं बरनी, स्वमति विलास त्रास दुखहरनी।

कभी कभी कवि स्वयं नई कहानी शुरू करते हुए विभिन्न वक्ताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। उदाहरण के लिए पाँचवें कांड में वह कहता है:—

सावधान मन करि पुनि शंकर, लागे कहन कथा अति सुन्दर।

राम की मुख्य कथा में संग्रहीत कहानियों के समावेश का उद्देश्य मुख्य कहानी की कथावस्तु के एक या दूसरे प्रतिपाद्य को प्रमाणित करना है। उदाहरण के लिए, सच्चिदानन्द के राम रूप में अवतार लेने के कारणों की व्याख्या के लिए तीन कहानियाँ दी गई हैं—(१) नारद की कथा; जिसने (नारद ने) सर्वोच्च ईश्वर को शाप दिया और ईश्वर को इस शाप को सहन करना पड़ा। (२) राजा भानुप्रताप की कथा जिसने बड़ा भारी अपराध किया और जिसके फलस्वरूप उसे शक्तिशाली रावण के

रूप में जन्म लेना पड़ा। (३) आदि पूर्वज मनु और उनकी पत्नी शतरूपा की कथा जिन को, उनकी तपस्या के कारण स्वयं सच्चिदानन्द ने उनके पुत्र-रूप में दूसरे जन्म में पैदा होने का, वर-दान दिया। काकभुशुंडि की कथा का समावेश, समग्र कविता की दार्शनिक व्याख्या, 'छिपे हुए तत्व के उद्‌घाटन' के उद्देश्य से किया गया है।

काकभुशुंडि की कथा के अतिरिक्त, जो मुख्य रूप से रचना में अलग खड़ी दिखाई पड़ती है किन्तु कवि द्वारा कविता की दार्शनिक व्याख्या के लिए चित्रित की गई है, शेष संग्रहीत कहानियाँ मुख्य वस्तु-विषय के अधीन हैं और उसे पुष्ट करती हैं। इनमें से प्रत्येक कहानी कविता में राम या सच्चिदानन्द के स्वरूप (भाग्य) को संजीवित करती है और घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है। इनमें से प्रत्येक काव्य के मुख्य अंश को आगे विकसित करती है या मुख्य कथा को नई दिशा देती है।

रामचरित मानस (या राम के कार्यों की कविता) की प्रबन्धात्मक में कई पक्ष प्रभावित हुए हैं। उनमें से (हम) मुख्य की चर्चा करते हैं।

१—राम की असंख्य कहानियों में साहित्यिक परंपरा की रक्षा करना। यह परम्परा कवि वाल्मीकि की विख्यात प्राचीन भारतीय रामायण का उद्‌घाटन करती है। निर्विवाद रूप से इस परम्परा के अनुरूप घटनाओं के तर्कपूर्ण क्रम ने राम-काव्य के वस्तु विषय को प्रभावित किया।

२—साम्प्रदायिक सिद्धांत जो तुलसीदास के दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण के मूल में हैं। वाल्मीकि से अलग, जिनकी (वाल्मीकि) कविता में राम मनुष्य-रूप में भारत के सबसे बड़े नायक के रूप में सामने आते हैं, तुलसीदास के राम, दैवी

परमतत्व के अवतार और स्वयं देवी तत्व हैं। राम के इस स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए सार-रूप में कविता की रचना में (उसका) कहना आवश्यक है।

३—भारतीय काव्य-शास्त्र के अत्यन्त जटिल और मौलिक सिद्धांत। इन सिद्धान्तों का अनुसरण (काव्य के यथावश्यक स्वरूप में) कविता के पूर्ण स्वरूप और उसके अंशों को निर्धारित करता है, भारतीय काव्य-शास्त्र काव्यात्मक अभिव्यक्ति के निरूपित साधनों को निश्चित करता है और इन साधनों के बाहर काव्य नहीं मानता, विशेषतया उच्च-काव्य; जैसा कि राम की कविता में प्रकट होता है।

४—विभिन्न वृत्तात्मक स्वरूप का प्रयोग। इनमें से मुख्य एक दूसरे के अनुरूप और कथा के प्रवाह के अनुकूल हैं।

५—काव्य के रचयिता द्वारा तीन साहित्यिक भाषाओं का प्रयोग १—संस्कृत २—पूर्वी हिंदी (अवधी) ३—पश्चिमी हिन्दी (ब्रज)। इनमें से प्रत्येक भाषा का काव्य में अपना विशिष्ट कार्य है।

काव्य की तात्कालिक रचनात्मकता की ओर उन्मुख होते हुए सबसे पहले आरम्भिक पद्यों में, जो कि प्रथम कांड की भूमिका-स्वरूप हैं, तुलसीदास उन स्रोतों का संकेत देते हैं जिनका उन्होंने उपयोग किया है। उनमें से मुख्य को गिनाते हुए आरम्भिक पंक्तियों में वह कहते हैं :—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि
स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति,

इस प्रकार काव्य के मुख्य स्रोत वेद और शास्त्र (निगम और आगम) पुराण और वाल्मीकि-रामायण प्रतीत होते हैं।

इस सूचना का कवि के दार्शनिक और धार्मिक विचारों के स्वरूप की व्याख्या के लिए अत्यधिक महत्व हैं। तुलसीदास ने उस युग में लिखा जब कि वेद और शास्त्र की, अब्राह्मण जातियों के प्रतिनिधि निन्दा करते थे और तुलसीदास कहते हैं कि वह कट्टर (सनातन) हिन्दुत्व का अनुसरण करते हैं। स्वयं कट्टर परम्परा के विश्वासी होने के कारण तुलसीदास कथा की मुख्य वस्तु को दृढ़ करते हैं। उन्होंने इसे अपने गुरू से सुना था अर्थात् आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक, (दस्तगीरः पकड़ कर ले चलने वाला) से सुना था—

मैं पुनि निज गुरु सन सूनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

तदपि कही गुरु बारहिं बारा, समुझि परी कछु मति अनुसारा।
भाषाबद्ध करब में सोई, मोरे प्रन प्रबोध जेहि होई॥

विश्वदर्शन के अनुरूप प्राचीन और मध्ययुगीन दर्शन और धर्म पर शासन करते हुए हिन्दू देवता, असंख्य संसारों के ऊपर उठते हुए, जीवन और नाश से प्रादुर्भूत हो (ऊपर उठते) हुए, अनन्त क्रम से पुनरावृत्ति करते रहते हैं। इनमें से प्रत्येक में राम अवतार लेते हैं। इस कारण राम की कथाएँ असंख्य और अनन्त हैं। इस विचार की तुलसीदास अत्यन्त वित्तार से पुनरावृत्ति करते हैं। स्वभावतः वाल्मीकि प्राचीन भारतीय रामायण से अपनी रामायण की भिन्न को समझाने के लिए वह कहते हैं—

जथा अनंत राम भगवाना, तथा कथा कीरत गुंन नाना।

\+ + +

हरिगुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित॥

\+ + +

राम चरित सत कोटि अपारा, स्रुति सारदा न बरनइ पारा।
रामु अनंत अनंत गुनानी, जनम कर्म अनंत नामानी॥
जल सीकर महिरज गनि जाहीं, रघुपति चरित न बरनि सिराहीं।

याज्ञवल्क्य, कागभुशुंडि और शिव का नाम लेकर तथा उनको कथा का रचयिता कहकर, तुलसीदास अपनी कथा के सनातन (कट्टर) रूप को और भी दृढ़ करते हैं:—

जागवलिक जो कथा सोहाई, भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई।
शंभु कीन्ह यह चरित सोहावा, बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सोइ सिव काग भुसुंडिहिं दीन्हा, रामभगति अधिकारी चीन्हा।
तेहि सन जागवलिक पुनि पावा, तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

शिव के रचयिता होने के विचार का तुलसीदास प्रायः दुहराते हैं। उदाहरण के लिए काव्य के प्रथम कांड में वे कहते हैं—

रामचरित मानस मुनि भावन, बिरचेउ संभु सुहावन पावन।
रचि महेस निज मानस राखा, पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा॥

तुलसीदास स्वयं इसका महत्व प्रतपादित करते हुए कहते हैं कि उन्होंने शिव की रची कथा को साधारण भाषा में बना डाला। इसके विषय में कवि कविता के अन्तिम कांड के अन्तिम संस्कृत वृत्तों या श्लोकों में कहता है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं।
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वांतस्तमःशांतये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

अपने को ऊँचे प्रभुत्वमय नामों से दृढ़ कर तुलसीदास फिर पाठकों का ध्यान अपनी कथा के विशिष्ट स्वरूप की ओर उन्मुख करते हैं:—

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई, जनि आचरज करहि सुनि सोई।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी, नहिं आचरज करहिं अस जानी॥

राम कथा कै मिति जग नाहीं, अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं।
नाना भाँति राम अवतारा, रामायन सत कोटि अपारा।
कलप भेद हरि चरित सुहाए, भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ।।
राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार।

तुलसीदास, केवल कट्टर विचारों के संबंध से ही नहीं (जो कि इसके मूल में हैं), प्रत्युत साहित्यिक संबंधों से भी अपने काव्य को तत्कालीन परम्पराओं से सम्बद्ध करते हैं। वह युग के मस्तिष्क को प्रभावित करने की इच्छा प्रकट करते हैं—

होहु प्रसन्न देहु बरदानू, साधु समाज भनिति सनमानू।
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं, सो स्रम बादि बालकवि करहीं ।।

तुलसीदास की दृष्टि के अनुकूल कविता को सर्वसाधारण का हित सम्पन्न करना चाहिए—

कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई।

वस्तुविन्यास की भारतीय साहित्यिक परम्परा में, काव्य की कथावस्तु की व्याख्या अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रचलित प्रतीत होती है। इस संबंध में भारतीय कविताएँ दूसरे साहित्य की कृतियों से अपने को अत्यधिक विशिष्ट प्रदर्शित करती हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से काव्य की कथावस्तु अपने में अत्यंत महत्वहीन स्थान रखती है। कथावस्तु, और कथावस्तु के मुख्य तत्वों को पूर्ववर्ती साहित्यिक परंपराओं से लेने की बात कही गई है। कवि स्वयं पहले से कथावस्तु समझा देता है। कवि की कलात्मकता (काव्यशास्त्र में वर्णित), काव्य की प्रबंधात्मकता तथा स्वरूप-संगठन में, और अभिव्यक्ति के विभिन्न काव्यात्मक साधनों के कौशलपूर्ण उपयोग में प्रकट होनी चाहिए। कथावस्तु के प्रति ऐसा संबंध उन काव्यात्मक रूपों में प्रकट होता है जिनको कि काव्यशास्त्र काव्य-कला का उच्चतम निदर्शन मानता है। ऐसे साहित्यिक रूपों में 'क्लासिकल ड्रामा' और

महाकाव्य प्रकट होते हैं। प्रायः सामान्य काव्य-रूपों में, उदाहरणतः उपन्यासों में, मुख्य घटना-विकास में, और कथा में, कथावस्तु के प्रति संबंध वैसा ही है जैसा कि योरोपीय साहित्य में, अर्थात् साहित्यिक कृति के एक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में कथावस्तु पहले से नहीं बताई जाती।

तुलसीदास अपने प्रबन्ध काव्य में मान्य परम्पराओं का अनुसरण करते हुए विस्तार से इसकी कथावस्तु की व्याख्या करते हैं।

पहले कांड में वह तीन बार कथावस्तु बतलाते हैं। आरंभ में ही राम के शक्तिशाली नाम का वर्णन करते हुए संक्षेप में अपनी रामायण की कथावस्तु के मूलभूत तत्त्वों का समावेश करते हैं (बाल, ३६१ ४, ४० १ ४)। थोड़ा ही आगे, विशिष्ट प्रणाली से इसे अधिक विस्तार के साथ देते हैं, (बाल ६०, १ ४ और अन्तिम श्लोक)। अन्त में यह काव्य की कथावस्तु की व्याख्या शिव की पत्नी पार्वती या उमा के मुख से कराते हैं। पार्वती शिव से राम की कथा कहने की प्रार्थना करती हैं और कहती हैं—

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी, निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी।
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा, बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिवाही, राम तजा सो दूषन काही।
बन बसि कीन्हें चरित अपारा, कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला।

विशेष रूप से, विस्तार के साथ कविता की कथावस्तु उत्तर कांड में समाविष्ट की गई है, वहाँ कागभुशुंडि पक्षियों के राजा गरुड़ को राम की कथा समझाते हैं और कवि उसकी कथावस्तु बताता है।

राम के साहसपूर्ण कार्यों की कथा तुलसीदास सात कांडों

में विस्तारित करते हैं। कवि स्वयं अपनी कृति के बारे में कहता हुआ सूचना देता है :—

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना, रघुपति भगति करे पंथाना।

पहली दृष्टि में ही यह बताया जा सकता है कि रचना का सात कांडों में विभाजन इसकी कथावस्तु को अत्यन्त न्यायोचित ठहराता हैं। वास्तव में कांडों के नाम जैसे काव्य की रूपरेखा और उद्देश्य देते हों:—१. बाल कांड, २. अयोध्या, ३. अरण्य ४. किष्किंधा, ५. सुन्दर, ६. लंका, ७. उत्तर कांड। कविता में राम का बालपन, उनका अयोध्या का जीवन, राम का वन-जीवन, और यहाँ से रावण द्वारा सीता का हरण, बन्दरों के देश किष्किन्धा का जीवन, हनुमान द्वारा लंका द्वीप की यात्रा और सीता को राम का कुशल संवाद देना, लंका में युद्ध और अन्त में राम का सीता, लक्ष्मण और मित्रों सहित राजधानी में १४ वर्ष के निर्वासन की अवधि की समाप्ति पर लौटने का वर्णन किया गया है।

तुलसीदास द्वारा लिखित इस कविता की ओर ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कविता का सात कांडों में विभाजन पहली ही दृष्टि में निश्चित परम्परा की व्याख्या करता है। वाल्मीकि की प्राचीन भारतीय रामायण से लेकर सभी बड़े कवि इस कथा को सामान्यतः सात कांडों में विभाजित करते हैं। तुलसीदास के काव्य में सभी कांडों के नाम, केवल छठे को छोड़ कर, वाल्मीकि की कविता के कांडों के नाम समान मिलते हैं। तुलसीदास के छठे कांड का नाम "लंका" है, जबकि वाल्मीकि के छठे कांड का नाम "युद्ध" है।

इस परम्परा के पालन के परिणाम-स्वरूप और कथावस्तु को सात कांडों में विभाजित करने की अनिवार्यता के कारण तुलसी-दास प्रबन्धात्मक कौशल की कमी प्रकट करते हैं। प्रबन्धात्मकता

की दृष्टि से विफलता पहले और अन्तिम कांड में दृष्टिगोचर होती है जिनमें से प्रत्येक में दार्शनिक पक्ष (कथा के) मौलिक स्वरूप पर प्रबल होता है और महत्वपूर्ण ढंग से कथा-वर्णन के क्षणों (अंश) पर छा जाता है जो (कथा-वर्णन) प्रत्येक कांड में बहुत कम स्थल प्राप्त करता है।

निर्विवाद रूप से, यदि तुलसीदास काव्य-रचना के पहले, केवल काव्य-सामग्री के तर्कपूर्ण समावेश से प्रेरित होते तो वह काव्य की जटिलता को ध्यान में रखते हुए पहले और अन्तिम (प्रत्येक) कांड को दो में विभाजित कर देते।

वाल्मीकि-रामायण के अन्तर्विभाजन में समाविष्ट कहानियाँ जो तुलसीदास के काव्य में सन्निविष्ट हैं, मुख्य रूप से पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा को नई दिशा की ओर संचालित कर रही हैं।

तुलसीदास की पूरी कविता इस अनभिव्यक्त आधार पर निर्मित हुई है कि राम की मौलिक कथा (जितनी कि मुख्य समाविष्ट कथा के रूप में इस काव्य में प्रविष्ट हुई है वह) पाठकों और श्रोताओं को ज्ञात है। इस स्थिति की ओर, जो कि तुलसीदास के काव्य की स्पष्ट व्याख्या करती है, तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा के अन्वेषक और अध्ययन करने वालों में से एक का भी ध्यान आजतक नहीं आकृष्ट हुआ।

वाल्मीकि के काव्य में पाई जाने वाली कथाओं का तुलसीदास द्वारा अत्यन्त व्यापक चित्रण जो हुआ है उसके स्वरूप को यह तथ्य स्पष्ट करता है। तुलसीदास इन कथाओं की ओर केवल संकेत या इंगित करते हैं। कभी-कभी तत्संबंधी कथाओं के नायकों का नामोल्लेख मात्र करते हैं। इस प्रकार उदाहरणतः शिवि, दधीचि, बालि, हरिश्चन्द्र, गालव, नहुष, ययाति, सगर, रन्तिदेव, प्रथुराज, अजामिल और असंख्य दूसरों का उल्लेख है। चित्रण का वह स्वरूप, जिसमें कि उल्लिखित नायक उपस्थित होते हैं,

उसी स्थिति में समझा जा सकता है, जब हम उनसे सबंधित कहानियों को जानें। महाभारत, पुराण, तथा वाल्मीकि में अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध असंख्य कथाओं के इस प्रकार के उल्लेख से तुलसी का काव्य ओत-प्रोत है।

तुलसीदास प्रायः कहानी के नायक का नाम भी नहीं देते। उनका उल्लेख या संकेत तत्संबंधी कथाओं के समझने में हमेशा पूर्णतया सक्षम नहीं होता।

कथाओं के इस प्रकार के संकेत के उदाहरण-स्वरूप हम अहिल्या की कथा ले सकते हैं। तुलसीदास कविता में एक पंक्ति में कहते हैं कि राम के चरण की धूल पत्थर पर गिरी और पत्थर सुंदर स्त्री अहिल्या में परिवर्तित हो गया। वाल्मीकि की रामायण में अहिल्या की कथा दो अध्यायों में विस्तार के साथ दी गई है। संक्षेप में इन अध्यायों की कथावस्तु इस प्रकार है। एक बार ऋषि गौतम जंगल में लकड़ियों के लिये गए। उस समय जंगल में आकाश से आकर अमरों का स्वामी इन्द्र घूम रहा था। प्रथम दृष्टि में ही वह गौतम की पत्नी सुन्दरी अहिल्या से प्रेम करने लगा और उसके पति का रूप धारण कर उसे बहका लिया। यद्यपि अहिल्या इस प्रवंचना को जान गई; फिर भी वह इन्द्र की ओर से दिये गए लालचों से अपने को अलग न रख सकी। गौतम ने अपराधियों को पकड़ा और दोनों को शाप दिया। इस शाप के कारण अहिल्या दस हजार वर्ष के लिए पत्थर बन गई और इन्द्र के अण्डकोष काट डाले गए। केवल सभी देवताओं द्वारा सर्वोच्च इन्द्र की ओर से बहुत अधिक प्रार्थना करने के बाद नए अण्डकोष बने, जो कि भेंड़ के थे और यज्ञ में उत्पन्न हुए।

तुलसीदास की कविता में हम सर्वथा भिन्न प्रणाली देखते हैं। जहाँ कि वाल्मीकि संक्षेप में कहते हैं, तुलसीदास विस्तार से कथा देते हैं। उदाहरणतः अपने काव्य के प्रथम कांड के छोटे से

अध्याय में वाल्मीकि युद्ध के देवता कार्तिकेय की कथा का समावेश करते हैं। वाल्मीकि के समय में इस कथा ने विभिन्न कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। विशेष रूप से यह कथा अत्यन्त कलात्मकता के साथ कालिदास की विख्यात कृति कुमारसंभव में प्रकट होती है। तुलसीदास अपने काव्य के प्रथम कांड में इस कथा को बड़ा विस्तृत रूप देते हैं। यह उनके काव्य में वाल्मीकि और कालिदास के दिये हुए रूप से अलग और भिन्न है। यह तुलसीदास को दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक मनोदृष्टियों से संबद्ध है जिसने तत्कालीन अत्यधिक दृढ़ धार्मिक मतवाद के प्रतिनिधियों को (जो वैष्णव और शैव के रूप में प्रकट हुए) मिलाने की कोशिश की।

तुलसीदास की कविता की वाल्मीकि के काव्य से तुलना करने पर हमारे लिए समाविष्ट कहानियों में बड़ी दिलचस्पी है। चूँकि राम-कथा के मुख्य क्षण इन दो कविताओं में प्रविष्ट होते हैं, विभिन्न कथाओं के समावेश के कारण और फलतः अलग-अलग कहानियों में विभिन्न परिपाटी के प्रयोग के कारण, उनमें बड़ा भेद हो जाता है।

प्रधान कथा की वस्तु-विषय के मौलिक क्षण मौखिक और साहित्यिक परम्पराओं से दृढ़ और विशिष्ट बनाए गए; समाविष्ट कहानियाँ स्वतन्त्र चित्रण या निर्वाह को स्वीकार करती हुई कथा-वस्तु के अंगों को प्रकट करती हैं। इस कारण इन दो महान भारतीय काव्यों में राम के कार्य और जीवन के विषय में बड़ा भेद है।

कतिपय स्थितियों में हमें तुलसीदास की कविता में स्वयं इसकी व्याख्या मिल जाती है कि कविता में एक या दूसरी कहानी क्यों नहीं समाविष्ट की गई। वह स्पष्टतया आग्रहपूर्वक कहते हैं :—

"संबुक भेक सेवार समाना, इहाँ न बिषय कथा रस नाना"

जैसा कि ज्ञात है यह गुण, अर्थात् चमत्कार के अंश का अभाव—तुलसीदास की सर्जनात्मक प्रतिभा के विशिष्ट स्वरूप को बनाए रखता है और उनको अपने युग के अधिकांश सामान्य कवियों से अलग करता है।

तुलसीदास की कविता की प्रबन्धात्मकता पर उसके रचयिता के दार्शनिक और धार्मिक विचारों का साहित्यिक परंपरा की अपेक्षा किसी प्रकार कम प्रभाव नहीं पड़ा। जैसा कि पहले कहा गया है वाल्मीकि के नायक राम सूर्यवंश के राजकुमार हैं। केवल इस कवि की कविता के प्रारम्भ से ही यह बताया जा सकता है कि राम परमेश्वर और विष्णु के अवतार हैं। वाल्मीकि के काव्य के सभी अनुसंधानकर्ता इस विचार के हैं कि राम के इस स्वरूप की भावना बाद की जोड़ी हुई चीज है। स्वयं संस्कृत के इस काव्य के विकास और नायक के चित्रण से यह प्रतिबिम्बित नहीं होता।

इससे अलग तुलसी के राम दैवी-तत्व और इसके साकार अवतार हैं जो विकासमान संसार में कार्य करते हैं। तुलसीदास राम को इस भ्रममय संसार से बाहर मानते हैं। उनके राम सच्चिदानन्द ब्रह्म, परब्रह्म, विष्णु और हरि हैं, इनके अनुरूप ही दूसरे व्यक्तित्व भी बहुत अधिक बदल जाते हैं। लक्ष्मण इसी प्रकार सच्चिदानन्द के अंशावतार हैं और इसके साथ-साथ वह परम्परा-प्राप्त एक हजार फन वाले सर्प के अवतार हैं जिस पर कि भारतीय कथा के अनुसार सारी पृथ्वी स्थित है। सीता केवल पृथ्वी देवी की कन्या नहीं है, किन्तु माया, दैवी परम-तत्व की सर्जनात्मक शक्ति, और उससे पृथक नहीं, और फिर भी उसकी वास्तविक स्थिति नहीं है। सीता समस्त विकासमान संसार को बनाने वाली माया हैं जो (संसार) कि राम की क्रीड़ा, दैवी कल्पना का, आभास-मात्र प्रतीत होता है।

राम के स्वरूप का यह नया चित्रण दार्शनिक विशिष्टता की माँग करता था जो तुलसीदास के काव्य के पहले और अन्तिम कांड में दिया गया है।

पहले कांड का केवल थोड़ा ही अंश राम से संबद्ध है और तीन चौथाई में राम के दार्शनिक स्वरूप, नैतिक समस्याएं (सत्य और असत्य) और राम के अवतार के तत्व की विशिष्टता का निदर्शन है।

इसी प्रकार सातवें कांड का केवल थोड़ा सा ही अंश राम की कथा से संबद्ध है। उत्तरकांड का मुख्य भाग विभिन्न महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्नों की व्याख्या में संलग्न है।

तुलसीदास के मतवादी सिद्धांत महत्वपूर्ण ढंग से समाविष्ट कहानियों की भूमिकाओं में कहे गये हैं। समाविष्ट कहानियों में मुख्य, जिनकी व्याख्या उत्तरकांड का महत्वपूर्ण भाग ले लेती है, कागभुशुंडि की कहानी है। इस कारण समग्र कहानी नई व्याख्या प्राप्त कर लेती है।

इसी प्रकार पहले कांड में राम के अवतार की विशिष्टता के लिए कहानियों की एक माला-सी समाविष्ट की गई है, जिनकी संस्कृत की कविता में कोई चर्चा नहीं है। प्रतापभानु की कथा, मनु और उनकी पत्नी सतरूपा की, नारद की तथा कतिपय दूसरी कथाएँ, जो समग्र कांड में फैली हुई हैं, इसी प्रकार की हैं।

मुख्यतया तुलसीदास के काव्य की प्रबन्धात्मकता पर पूर्णतया मौलिक और विचित्र भारतीय काव्यशास्त्र—अपूर्व काव्य शास्त्र जो वैज्ञानिक नियमों पर बना है और अत्यन्त सूक्ष्मता से कार्यान्वित किया गया है—के सिद्धान्तों का बड़ा प्रभाव है। भारतीय काव्यशास्त्र का आरम्भिक विकास हमें ज्ञात नहीं। उसका प्रभाव स्पष्टतया हमारे संवत्सर के आरम्भ तक चलता रहा क्योंकि बौद्ध कथावस्तु पर लिखी गई कवि अश्वघोष (दूसरी

शताब्दी ईसा के पूर्व) की कृतियाँ जो कि रूसी पाठकों को ज्ञात हैं, भारतीय काव्यशास्त्र से घनिष्ट परिचय प्रकट करती हैं। काव्य-शास्त्र से संबंधित सबसे प्राचीन ग्रन्थ, जो हमें प्राप्त है, भारतीय नाट्यशास्त्र प्रतीत होता है, जो चौथी शताब्दी से बाद का नहीं है, क्योंकि कालिदास (पाँचवीं शताब्दी) उससे अच्छी तरह परिचित थे। उस समय से संस्कृत काव्यशास्त्र की पूर्णता का प्रवाह एक हजार वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के दुर्बल होने पर नई भारतीय भाषाओं, विशेषतया हिंदी, के काव्यशास्त्र का विकास आरम्भ होता है ।

भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, महाकाव्य की कथावस्तु, उसकी प्रबंधात्मकता के कतिपय गुण और वस्तु विषय की निश्चित परिभाषा देते हैं। इस प्रकार उदाहरणतः दंडी (सातवीं शताब्दी के लेखक) अपने काव्यशास्त्र में बतलाते हैं कि महाकाव्य का वस्तुविषय प्राचीन कथाओं से लिया जाना चाहिए। इसका स्रोत कल्पना (फैंटेसी) नहीं हो सकती। इसके नायक को उच्च सद्गुणों और अनेक पूर्णताओं से विशिष्ट होना चाहिए। दंडी कहते हैं कि प्रत्येक काव्य में नगर, सागर, पर्वत, वर्ष की ऋतुएँ, सूर्य और चन्द्रमा का उदय तथा अस्त, कुंजों और जल में क्रीड़ा, सहभोज, वियोग. विवाह, राज सभा का बैठना, दूत, आक्रमण, युद्ध और अन्त में नायक की विजय का वर्णन अवश्य होना चाहिए।

भारतीय काव्य-सिद्धांत काव्य के सार-तत्व के प्रश्न का विशिष्टता से विचार करते हैं। विभिन्न लेखक इसका भिन्न उत्तर देते हैं। काव्य के सार-तत्व को कुछ रस —अर्थात् विभिन्न प्रकार के अनुभव और अनुभूतियाँ जो दर्शक, श्रोता या पाठक में पूर्णतया कलात्मक उद्रेक को कार्यान्वित करती हैं—में देखते हैं। दूसरे,

अलंकारों में काव्य का तत्व देखते हैं—अर्थात् विभिन्न प्रकार के अलंकरण जो काव्यात्मक कृति को सामान्य वाणी से अलग करते हैं। तीसरे, काव्य का तत्व 'अभिधा' न मानकर उन चित्रों की चेतना के जागरण या उद्दीपन में मानते हैं जिनका कि कवि संकेत देता है। वे ध्वनि को, अभिव्यक्त विचारों की दीवार के बीच से उत्पन्न होने वाली गूँज को, काव्य का सच्चा सार तत्व कहते हैं। उदाहरणतः कवि जंगल का वर्णन कर सकता है; किन्तु काव्यात्मक चित्रों (उपमान) के द्वारा पाठक के मन में यह विचार उत्पन्न करता है कि कवि वास्तव में नगर और निवासियों का वर्णन कर रहा है; और उसकी शब्दावली "एक कोमल लता की ओर एक टेढ़ी शाखा झुक रही है" अभिधात्मक सामान्य विचारमात्र नहीं धारण करती, किन्तु यह ध्वनि भी कि पाठक के सामने एक युवती बाला और वृद्ध मनुष्य के चित्र उपस्थित होते हैं।

तुलसीदास के काव्य में जो अपनी धीरे विकसित होने वाली कथा में काव्यात्मक प्रश्नों की ओर उन्मुख होता है, भारतीय काव्शास्त्र की सभी महत्वपूर्ण माँगें अवतरित हुई हैं।

इस संबंध में सबसे अधिक रोचकता काव्य के पहले कांड में है और सात चौपाइयों में जो ५७वें दोहे के बाद आती हैं अर्थात् चौदह जटिल पद्यों में। यह उनकी कविता रामचरितमानस का प्रस्थान विंदु (Departing point) है। यहाँ से आरम्भ कर तुलसीदास अपनी कृति की प्रबन्धात्मकता को काव्यात्मक ढंग से कहते हैं—

"सप्त प्रबंध सुभग सोपाना, ज्ञान नयन निरखत मन माना।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा, बरनब सोइ बरबारि अगाधा॥
रामसीय जस सलिल सुधासम, उपमा बीचि बिलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई॥

छंद सोरठा सुंदर दोहा, सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा, सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा, तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा।
सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला, ज्ञान विराग विचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती, मीन मनोहर ते बहु भाँती।
अरथ धरम कामादिक चारी, कहब ज्ञान बिज्ञान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा, ते सब जलचर चारु तड़ागा।

यह दिखाने के लिए कि वर्णन की आवश्यकता तुलसीदास की कविता में कैसे मूर्त्तिमत्ता प्राप्त करती हैं, हम थोड़े उदाहरण देते हैं।

पहले उदाहरण में राम का वर्णन परम्परा प्राप्त भारतीय शैली में दोहा और चौपाई में दिया गया है—

'नील सरोरुह नीलमनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥"

सरद मयंक बदन छबि सीवां, चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवां।
अधर अरुन रद सुंदर नासा, बिधुकर निकर विनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी, चितवनि ललित भावती जी की।
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी, तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा, कुटिल केस जनु मधुप समाजा।
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला, पदिक हार भूषन मनि जाला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ, बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ।
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा, कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

"तड़ित विनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छबि छीन॥"

"पद राजीव बरनि नहिं जाहीं, मुनि मन मधुप बसहिं जिन माहीं।
बाम भाग सोभति अनुकूला, आदि सक्ति छबि निधि जग मूला॥"

दूसरे उदाहरण में जंगल में निर्वासित वनवासी राम का वर्णन दिया गया है। वर्णन में आश्रम और सागर के बीच कलात्मक समानता दिखाई गई है, और समस्त चित्र इस सादृश्य के अधीन है—

"आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिएँ जाहि रघुनाथु॥"

"बोरति ज्ञान बिराग करारे, बचन ससोक मिलत नद नारे।
सोच उसास समीर तरंगा, धीरज तट तरुवर कर भंगा।
बिषम बिषाद तोरावति धारा, भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।
केवट बुध विद्या बड़ि नावा, सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥
बनचर कोल किरात बेचारे, थके बिलोकि पथिक हियँ हारे।
आश्रम उदधि मिली जब जाई, मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
सोक बिकल दोउ राजसमाजा, रहा न ज्ञान न धीरजु लाजा।
भूप रूप गुन सील सराहीं, रोवहिं सोक सिंधु अवगाहीं॥"

"अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं, नारि नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं, बामबिधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा विदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की॥"

"किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनि बरन्ह।
धीरजु धरिय नरेस, कहेउ बसिष्ठ विदेह सन॥"

"जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा, बचन किरन मुनि कमल विकासा।
तेहि कि मोह ममता नियराई, यह सिय राम सनेह बड़ाई॥"

जैसा कि दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है, तुलसीदास अपने वर्णनों में अत्यधिक परिणाम में रूपविधान अर्थात् अलंकार का प्रयोग करते हैं।

काव्यात्मक अभिव्यक्ति के सभी माध्यम (साधन) तुलसीदास की कविता की रचना से घनिष्ट रूप में (अंगांगिरूप में)

सम्बद्ध हैं। वे कविता में भावातिरेक के आतिशय्य के बीच वृद्धि प्राप्त करते हैं। इस स्थिति का निदर्शन सीता के जीवन के उस सर्वोच्च क्षण का वर्णन है जब कि उन्होंने पहली बार राम को देखा। यहाँ पर रूपविधान का आतिशय्य दिखाई पड़ता है जो प्रकृति से उतना ही लिया गया है, जितना कि पुराण और दूसरी कथाओं से—

"प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिजु मीन जुग, जनु बिधु मंडल डोल॥"

"गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी, प्रगट न लाज निसा अवलोकी।
लोचनु जलु रह लोचन कोना, जैसे परम कृपन कर सोना॥"

कृति के अनुपात में उदाहरणों की संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती जिससे कि सरलता से इंगित किया जा सकता कि तुलसीदास की कविता में बहुत से वर्णन हैं जो काव्यशास्त्र के लेखकों द्वारा आवश्यक समझे जाते हैं। नायक के ऐसे असंख्य वर्णन हैं जिनको कि काव्यशास्त्र में 'नखशिख' का विशिष्ट नाम दिया गया है जो कि नायक के चरण के नख से लेकर उसके सिर तक का वर्णन करते हैं। तुलसीदास राम के रूप का विस्तृत वर्णन करते हैं जो काव्यात्मक अभिव्यक्ति के सभी साधनों का उपयोग करते हुए किया गया है और विशिष्टता (Virtuosity) प्रदर्शित करते हैं।

असंख्य वर्णन और समाविष्ट कहानियाँ पूरे काव्य के बीच फैली हैं जो तुलसीदास के काव्य की प्रबन्धात्मकता पर प्रभाव डालती हैं। तुलसीदास के काव्य की प्रबन्धात्मकता पर भारतीय काव्यशास्त्र के प्रभाव का पूरा-पूरा विचार करने के लिए तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त 'सुभाषित' का संकेत करना अनिवार्य है।

'सुभाषित' में दीर्घ चिंतन द्वारा प्राप्त जीवनानुभव के ज्ञानपूर्ण सारतत्व तथा राजनीतिक, नैतिक, और दार्शनिक स्थिति के नियम

सामान्यतया अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दिये जाते हैं। सुभाषित व्याख्यात्मक रूप में बहुत सी कहानियों का निष्कर्ष सुन्दर ढंग से देते हैं। हम यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं—

"बंदउँ संत असज्जन चरना, दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरिलेहीं, मिलत एक दारुन दुख देहीं॥"
"बायस पलिअहि अति अनुरागा, होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।"
"नयनन्हि संत दरस नहिं देखा, लोचन मोर पंख कर लेखा॥"

"भलो भलाइहि पै लहहिं, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु॥"

"निज कबित्त केहि लाग न नीका, सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं, ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥
जग बहु नर सुरसरि सम भाई, जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई, देखि पूर बिधु बाढ़ई जोई॥"

अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिन स्रम पारहिं जाहिं॥"

"करत बिचारु न बनइ बनावा।"
"को करि तरक बढ़ावइ साखा।"
"बाँझ कि जान प्रसव की पीरा।"

"बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं, गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं।
जलधि अगाध मौलि बह फेनू, संतत धरनि धरत सिर रेनू॥"
"जिन्ह के लहहि न रिपु रन पीठी, नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं, ते नरबर थोरे जग माहीं॥"
"सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ, सब बिधि अगम अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई, जानि न जाइ नारिगति भाई॥"

"काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ॥"

"मातु पिता भगिनी प्रिय भाई, प्रिय परिवार सुहृद समुदाई।
सासु ससुर गुरु सजन सहाई, सुत सुन्दर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥"
"तनु धनु धामु धरनि पुरराजू, पतिविहीन सब सोक समाजू"
भोग राग सम भूषन भारू, जम जातना सरिस संसारू,
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माही, मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नांहीं,
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी, तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी !"

तुलसीदास व्याख्यात्मक सूक्ति (सुभाषित) का व्यापक उपयोग करते हैं जिसके प्रयोग की परंपरा भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन है। वे प्रायः कहानियों को सजीव बना देते हैं। तुलसीदास मुख्य रूप से उनका व्यापक प्रयोग उन कांडों में करते हैं जो भावना के विशिष्ट आधेय की महत्वपूर्ण कठिनाई को प्रदर्शित करते हैं। इसके कारण सुभाषित मुख्यतया अधिक संख्या में काव्य के पहले और अन्तिम कांड में दिए गए हैं।

तुलसीदास के सुभाषित भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हो गए हैं। बहुत से लेखकों के साक्ष्य पर उत्तरी भारत में ऐसा मनुष्य (पुरुष वा स्त्री) कठिनाई से मिलेगा जो पूर्णतया अशिक्षित होने पर भी तुलसी के काव्य की कतिपय सूक्तियाँ न जानता हो।

रामायण की प्रबंधात्मकता पर उन वृत्तों का भी प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है जिनका तुलसीदास ने प्रयोग किया है।

तुलसीदास की रामायण के मुख्य वृत्तों में (जनता की भाषा) हिन्दी के छन्द ये हैं—चौपाई, दोहा, सोरठा और छंद, संस्कृत छन्दों में श्लोक। इनके अतिरिक्त हिन्दी के वृत्तों में दो कम व्यापक छन्दों का प्रयोग किया गया है—त्रोटक और तोमर छन्द। संस्कृत के छन्दों में कभी-कभी अत्यधिक विरल विशिष्ट-वृत्त प्रयुक्त है, जिसका नाम छन्द है। इनमें से प्रत्येक

उल्लिखित वृत्तात्मक स्वरूप का अपना विशिष्ट कार्य है और वे अपने पारस्परिक निश्चित क्रम में पाए जाते हैं।

तुलसीदास द्वारा रामायण में सबसे अधिक प्रयुक्त छंद चौपाई प्रतीत होता है, अर्थात् चार चरण वाला जिसका प्रत्येक चतुर्थ या चरण १६ मात्राओं का है, जिनको, उच्चारण के एक ह्रस्व स्वर को अनिवार्य आधार मान कर समय के काल-मात्रा में गिना जा सकता है। दीर्घ स्वर, उच्चारण की दो मात्राओं के समान गिना जाता है। चौपाई की पहली पंक्ति का दूसरी से और तीसरी का चौथी से तुक मिलता है। उदाहरण के लिए:—

"तब रघुबीर स्रमित सिय जानी, देखि निकट तट्ट सीतल पानी
तहँ बसि कंदमूल फल खाई, प्रात नहाइ चले रघुराई"

काव्य का मुख्य अंश चौपाई छन्दों में लिखा गया है जिसके निश्चित क्रम में दोहा और सोरठा छंद आते हैं।

दोहा असम चरणों का छंद है। इसके पहले और तीसरे चरण १३ मात्राओं के (सामान्यतया ६+४+३) होते हैं और दूसरे व चौथे चरणों में ११ मात्राएँ (सामान्यतया ६+४+१) आती हैं। दोहा के दूसरे और चौथे चरण का तुक आपस में मिलता है। उदाहरण—

"ताँहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस, राम बिमुख रत काम।"

सोरठा दोहा का ही उल्टा प्रकट होता है। प्रत्येक असम अर्ध पंक्ति सम, और सम असम पंक्ति हो जाती है। इस प्रकार सोरठे का विधान निम्न स्वरूप प्राप्त करता है; पहली और तीसरी पंक्ति (६+४+१) ११ दूसरी और चौथी (६+४+३) १३ मात्राएँ; तुक की अनिवार्यता दूसरी पंक्ति को चौथे से बाँध देती है। उदाहरण—

"गुरु मोहि नित्त प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई ।"

(हिन्दी के छन्दों में) चौथा सबसे अधिक प्रयुक्त वृत्त 'छन्द' है। यह ४ पंक्तियों का होता है जिसका प्रत्येक चरण (चतुर्थ) २८ मात्राओं का होता है और पहली पंक्ति का दूसरी से और तीसरी का चौथी से तुक मिलता है। छन्द कविता की प्रबन्धात्मकता में स्वतन्त्र रूप से नहीं स्थिर रह सकता। यह हमेशा चौपाई के पीछे आता है और इसके पीछे हमेशा दोहा या सोरठा आता है—

चौ०—"जेहि तुरंग पर राम बिराजे, गति बिलोकि खग नायकु लाजे ।
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा, बाजि बेषु जनु काम बनावा ।।"

छंद—"जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिज, राम हित अति सोहई ।
अपने बल बय रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई ।।
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ।।"

दोहा—"प्रभु मनसहिं लयलीन मनु, चलत बाजि छबि पाव ।
भूषित उडगन तड़ित घनु, जनु बर बरहि नचाव ।।"

चौ०—"जेहि बरबाजि रामु असवारा, तेहि सारदउ न बरनैं पारा ।"

संस्कृत के वृत्तों में से केवल श्लोक ही नियमित रूप से तुलसीदास की कविता में प्रयुक्त हुआ है। श्लोकों से काव्य के प्रत्येक सात कांड शुरू होते हैं। श्लोक प्राचीन भारतीय प्रबन्ध काव्यों का सबसे प्रयुक्त छन्द है जो दो अर्ध पंक्तियों का है, जिनमें से प्रत्येक में १६ मात्राएँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ७ मात्राओं के बाद यति है।

रूसी अनुवाद में श्लोक "हेक्सामीटर" में दिये गए हैं—

"वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बालविधर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।।

सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ।।
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखांबुजश्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ।।
नीलांबुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।"

संस्कृत श्लोक प्रत्येक कांड में अपने विशिष्ट भाव अभिव्यक्त करते हैं। उनसे प्रत्येक कांड का आरम्भ होता है। उनमें भारतीय काव्यशास्त्र के नियमानुसार देवताओं की प्रसन्नता के लिए प्रार्थनाएँ दी गई हैं। आरंभिक भूमिकात्मक श्लोक में शंकर या शिव को संबोधित किया गया है; उनकी स्तुति की गई है। अंतिम पंक्तियों में कांड की कथा-वस्तु का उल्लेख, जैसे राम का वन जाना इंगित है। प्रत्येक कांड के आरंभ में पाए जाने वाले श्लोकों की संख्या भिन्न है। उदाहरणतः पहले कांड के भूमिकात्मक श्लोक ७ हैं। चौथे कांड की भूमिका में केवल दो श्लोक हैं। संस्कृत श्लोकों के परिमाण में भेद होने पर भी वे वस्तु-विषय के दो अंगों से संबद्ध हैं, (अ) देवताओं के प्रति संबोधन, प्रार्थना (ब) कविता की कथावस्तु का संकेत।

संस्कृत श्लोकों के बाद सामान्यतया दोहा या सोरठा आते हैं। केवल पाँचवें कांड में (सुंदर काण्ड) संस्कृत श्लोक के बाद न दोहा है न सोरठा और श्लोकों के बाद चौपाइयाँ हैं। तीन कांडों में अर्थात् पहले, तीसरे और चौथे में श्लोकों के बाद सोरठा आते हैं। पहले कांड में पाँच सोरठा, चौथे में दो और तीसरे में एक। तीन कांडों में—दूसरे, छठे और सातवें में—श्लोकों के बाद दोहा आते हैं। सातवें कांड में सात, दूसरे में एक और छठे में एक दोहा सोरठा के साथ है जिसके बाद चौपाई छन्द शुरू होता है।

चौपाई छंद की पंक्ति-संख्या-निर्धारण में प्रत्येक काण्ड में

प्रयुक्त दोहा या सोरठा का ही आधार लेना पड़ेगा। प्रत्येक दोहा या सोरठा के बाद अधिकतर चौपाई आती है। उदाहरणतः दूसरे काण्ड के आरंभ में हम पढ़ते हैं—

"सबके उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज पदु, रामहिं देउ नरेसु॥
"एक समय सब सहित समाजा, राजसभा रघुराज बिराजा।
सकल सुकृत मूरति नरनाहू, राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू।
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें, लोकप करहिं प्रीति रुख राखें।
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं, भूरि भाग दशरथ सम नाहीं।
मंगल मूल रामु सुत जासू, जो कछु कहिअ थोर सबु तासू।
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा, बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा।
स्रवन समीप भये सित केसा, मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।
नृप जुवराजु राम कहँ देहू, जीवन जनम लाहु किन लेहू।
यह विचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहिं सुनायेउ जाइ॥

एक दोहा या इसके स्थानापन्न सोरठा के पहले चार चौपाइयों का प्रयोग सुविज्ञात ढंग से केवल दूसरे काण्ड में ही स्थिर है। दूसरे काण्डों में प्रायः एक दोहा के पहले पाँच, छः, सात या अधिक चौपाई देखी जाती हैं। चौथे काण्ड में (किष्किंधा) आठवें दोहा के साथ पन्द्रह चौपाई हैं। तीसरे काण्ड में बहुत से दोहा, चौपाइयों की महत्वपूर्ण संख्या के साथ हैं। इस प्रकार चौदहवाँ दोहा बारह चौपाइयों के साथ है। पन्द्रहवें दोहे के बाद चौदह चौपाइयाँ आती हैं। सोलहवें के बाद सात चौपाई और सत्रहवें दोहे के बाद नौ चौपाई। अन्तिम काण्ड में २८७ वाँ दोहा उन्नीस चौपाइयों के साथ है।

चूँकि तुलसीदास की कविता के वर्तमान रूप में, महत्वपूर्ण परिमाण में बाद में वृद्धि की गई है, यह संभव है कि कतिपय

स्थिति में यह बढ़ी हुई चौपाइयाँ बाद में प्रक्षिप्त प्रमाणित हो सकें। इस प्रकार आलोचनात्मक पाठ के तैयार करने में वृत्तात्मक स्वरूप का विचार मूल को प्रक्षिप्त से पृथक् कर सकता है।

विभिन्न वृत्तात्मक स्वरूप के युक्तिपूर्ण प्रयोग का पर्यवेक्षण स्पष्ट संकेत करता है कि इनमें से प्रत्येक का काव्य की प्रबन्धात्मकता में विशिष्ट अर्थगत (सेमैंटिक) कार्य है; यथा चौपाइयों में सभी काण्डों में मुख्य कथा चलती है। यह वृत्तात्मक रूप प्रधानतया आख्यानात्मक या कथनात्मक है। दोहा या सोरठा का थोड़े भेद के साथ एक कार्य है। इस छन्द द्वारा सामान्यतया कहानी आरंभ की जाती है या चार या अधिक चौपाइयों से निसृत निष्कर्ष व्यक्त किया जाता है। यह निष्कर्ष कहानी को और आगे प्रेरित करता है जो फिर चौपाइयों के रूप में चलती है। ऊपर कही हुई स्थिति के निदर्शन के लिए हम संक्षिप्त उदाहरण देते हैं—

दो०—"सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरन्तर गान॥"

चौ०—"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई, तदपि कहे बिनु रहा न कोई।
तहाँ बेद अस कारन राखा, भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा।
एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानंद पर धामा।
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना, तेहि धर देह चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी, परम कृपाल प्रनत अनुरागी।
जेहि जन पर ममता अति छोहू, जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू।
गई बहोर गरीब नेवाजू, सरल सबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहि हरिजस अस जानी, करहिं पुनीत सुफल निज बानी।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा, कहिहउँ नाइ राम पद माथा।
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई, तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।

दोहा—"अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु स्रम पारहिं जाहिं ॥"

चौ०—"एहि प्रकार बल मनहिं देखाई, करिहउँ रघुपति कथा सोहाई ।
ब्यास आदि कवि पुंगव नाना, जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥"

मुख्य वृत्तात्मक स्वरूप चौपाई, दोहा या सोरठा, जिनकी पारस्परिक सम्बद्धता पर कथा खड़ी की गई है, तुलसीदास द्वारा अधिकांशतः प्रयुक्त छन्दों में चौथा अर्थात् 'छन्द' का स्वतन्त्र अर्थपूर्ण महत्व नहीं है । अपने सार-रूप में छंद का यह स्वरूप काव्य के गत्यात्मक विकास में भाग नहीं लेता । सामान्यतया चौपाई के अन्तिम शब्दों की पुनरावृत्ति भी करता हुआ इसका प्रयोग पूर्ववर्त्ती चौपाइयों में कथित उक्ति पर जोर देने के लिए है । छन्द में कथा का प्रयोग कभी नहीं हुआ । यह काव्य के कथांशों के बीच भावातिरेक से पूर्ण निर्देशन के लिए पुनरावृत्ति करता हुआ प्रविष्ट होता है और पूर्ववर्ती चौपाइयों में जो कुछ कहा गया है उसे विशेष प्रकार से साथ लेकर चलता है ।

छन्द को उच्च भावातिरेक के आतिशय्य और निर्देशन से घनिष्टता के साथ सम्बद्ध कर देने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास की कविता में इस वृत्त-रूप का नियमित प्रयोग नहीं मिलता है । इसका प्रयोग अन्य छन्दों के साथ नियमित रूप से नहीं हुआ है ।

सभी स्थितियों में जब कि कविता में 'छन्द' आता है यह अनिवार्य रूप से चौपाई का अनुसरण करता है । छन्द के पीछे हमेशा दोहा या सोरठा आता है जिसके पीछे सामान्यतया चौपाइयों का नया समुदाय । वस्तु-विषय के उन्हीं सामान्य शब्दों से छन्द असंश्लिष्ट रूप में पूर्ववर्ती चौपाइयों से बँधा है । दोहा और

उसके पीछे आने वाली चौपाइयाँ सामान्यतया कथा को नई दिशा देती हैं। उदाहरणतः,

चौ०—उठहु बेगि सोइ करहु उपाई, जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई।

छन्द—जेहि भाँति, सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसर चालहीं॥
जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेह कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥

चौ०—उतरु न देहि दुसह रिस रूखी, मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी।

दूसरे वृत्तात्मक रूप, जो हिन्दी के मूल पाठ में प्रयुक्त हैं, एक ही कोटि में आते हैं और इससे हम काव्य की रचना में उनके कार्य की परिभाषा निश्चित कर देने की संभावना से वंचित रह जाते हैं। प्रधान वृत्तात्मक रूपों में से प्रत्येक जैसे श्लोक, चौपाई, दोहा, सोरठा, इस प्रकार निर्मित हैं कि प्रत्येक (चौपाई, दोहा, सोरठा या श्लोक अधिक या कम) अपने में नियमित एकता को प्रतिबिम्बित करता है और अपनी अर्थगत विशिष्टता (इकाई या यूनिट) के प्रकार को।

चौपाई में इसकी अर्थगत इकाई या विशिष्टता चौकड़े की प्रत्येक पंक्ति है। इसकी पंक्ति के एक अंश का दूसरे में जाना सामान्यतया विहित नहीं है। उदाहरणतः—

चौ०—"संग तें जती कुमंत्र तें राजा, मान तें ज्ञान पान ते लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी, नासहिं बेगि नीति असि सुनी।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा, जनु सचान बन झपटेउ लावा।
बिबरन भयउ निपट नरपालू, दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।
बहु कृपान तरिवारि चमंकहिं, जनु दसदिस दामिनी दमंकहिं।
गजरथ तुरग चिकार कठोरा, गर्जंत मनहुँ बलाहक घोरा।"

इसी प्रकार की समान स्थिति सामान्यतया दोहा और सोरठा में भी देखा जाती है। उदाहरणतः—

दो०—"मैं खल मल संकुलमति, नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखे जरउँ, करउँ बिष्नु कर द्रोह॥

सो०—"गुरु मोहि नित्त प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई॥"

उक्त वृत्तात्मक स्वरूपों में किसी सीमा तक यतिभंग—पंक्ति के भाव के कुछ अंश का दूसरी पंक्ति में मौलिक स्थानान्तरण करना—लक्षित होती है। हम कुछ उदाहरण देते हैं जिनमें यति-भंग देखी जाती है:—

चौ०—"मिलि केवटिहि उमगि अनुरागा, पुरजन सकल सराहहिं भागा।
देखी राम दुखित महतारी, जनु सुबेलि अवली हिम मारी।
नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया, प्रेमु नेमु ब्रत धरम अमाया।
लषन राम सिय पंथ कहानी, पूछत सखहि कहत मृदु बानी।"

दो०—"तब रघुपति लंकेस के, सीस भुजा सर चाप।
काटे भये बहुत बढ़े, जिमि तीरथ कर पाप॥"

सैद्धान्तिक रूप से भारतीय वृत्तों में यति-भंग क्षम्य नहीं है। चौपाइयों की प्रत्येक पंक्ति को अर्थगत एकता का प्रतिनिधित्व करना आवश्यक है। इस कारण यति-भंग से युक्त पद्यों का तुलसीदास जैसे काव्य के महान् आचार्य से संबद्ध होना संदेहोत्पादक है।

यह बहुत सम्भव है कि इस प्रकार के पद्य जो उदाहरणों में दिखलाई पड़ते हैं, बाद के जोड़े हुए हों। सुभाषित के कतिपय अंशों की चौपाइयों में रचना, किन्तु विभिन्न चौपाइयों में उनकी छिन्न-भिन्नता का तथ्य हमारे इन विचारों को और भी दृढ़ बनाता है। यह पूर्णतया समझ में आता है कि सुभाषित की दो चौपाइयों के बीच में टूट जाने की स्थिति बाद की प्रक्षिप्तता के परिणाम की ओर ही इंगित करती है।

इस प्रकार वृत्तात्मक स्वरूप के सामान्य क्षेत्र का पर्यवेक्षण आलोचनात्मक पाठ की एक आधारशिला के रूप में प्रकट हो सकता है।

काव्य की प्रबन्धात्मकता पर प्रभाव डालने वाले अन्तिम उक्त कारणों में उनकी भाषा प्रकट होती है।

भाषा की दृष्टि से तुलसीदास के काव्य की प्रबन्धात्मकता बड़ी जटिलता प्रकट करती है। तुलसीदास की रामायण में तीन भाषाओं का प्रयोग हुआ है। यथा (१) पूर्वी हिंदी (अवधी) तुलसीदास के जन्मस्थान और काव्य के नायक अवध के राजा राम की भाषा। (२) ब्रज, तुलसी के युग में अत्यधिक व्यापकता से प्रयुक्त पश्चिमी हिन्दी का एक रूप। (३) संस्कृत। इन तीन साहित्यिक भाषाओं का संयोग, उनके असंख्य रूप और मिलावट का भिन्न अनुपात, तुलसीदास को अपूर्व अनेक रूपात्मक शैली के चित्रण की सम्भावना प्रदान करता है।

यदि इन तीन भाषाओं में से प्रत्येक के अलग प्रयोग का पर्यवेक्षण किया जाय तो तुलसीदास के काव्य में उनकी अत्यधिक जटिलता और काव्य में उनके प्रयोग की निश्चित दशा अपनी पूर्णता में देखी जा सकती है। संस्कृत भाषा यहाँ कई कार्यों के लिए प्रयुक्त हुई है। सात कांडों में से प्रत्येक की आरम्भिक कविता में और पूरी कविता के आरम्भ और अन्त में इसके (संस्कृत) द्वारा एकान्विति देता हुआ कवि स्वयं इन भाषाओं का प्रयोग करता है। साथ ही, वह इसे काव्य में विशेष परिस्थिति में आये हुए ब्राह्मणों और देवताओं के मुख से कहलाता है।

संस्कृत का दूसरा कार्य लेखक द्वारा प्रयुक्त विभिन्न वृत्तात्मक स्वरूपों की प्रमुखता दिखाना है। प्रत्येक कांड की आरम्भिक पंक्तियों में केवल श्लोक ही प्रयुक्त हुए हैं जो संस्कृत के प्रबन्ध-काव्य

का प्रिय छंद है। हम काव्य की आरम्भिक पंक्तियों को विस्तृत उदाहरण के रूप में उद्धृत कर रहे हैं—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ ।।
भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणी।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाःस्वांतःस्थमीश्वरम्।।
वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररुपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते ।।
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वंदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।
उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।।
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं।।
नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्।
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वांतः सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा।
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति ।।

स्पष्टतया संस्कृत के प्रयोग का प्रधान उद्देश्य कविता को पूर्ववर्ती महाकाव्य की साहित्यिक परम्परा से संबद्ध करना है। यह तथ्य इस विचार को आधार देता है कि तुलसीदास सब साधनों के द्वारा घोषित करने की चेष्टा कर रहे हैं कि उनकी कविता पूर्ववर्ती (कट्टर) सनातन परंपरा से दृढ़ सम्बन्धों से जुड़ी हुई है। यह प्रथम कांड में दिये हुए आरम्भिक छंदों के निष्कर्ष से दृढ़ हो जाता है, जहाँ कि वह अपनी कविता में वही रूप रखता है जो कि वेद, पुराण

आदि के अनुकूल है, अर्थात् अत्यन्त पवित्र सनातन पुस्तकों के अनुरूप।

संस्कृत वृत्तों में जिनको कि कवि ब्राह्मणों के मुख से कहलाता है, श्लोकों का प्रयोग कभी नहीं किया गया है; वहाँ संस्कृत के दूसरे छंद लिये गये हैं। इनके अतिरिक्त इन साधनों के द्वारा वह ब्राह्मणों और देवताओं की वाणी के भावातिरेकमय वस्तु-विषय को प्रमुखता देता है। यहाँ संस्कृत सामाजिक बोली के रूप में ब्राह्मणों और आकाशवासी देवताओं की ऊँची सामाजिक स्थिति को प्रकट करती हुई विशिष्टता प्राप्त करती है; जैसा कि ज्ञात है संस्कृत के 'क्लासिक्ल' नाटकों में भी यह कार्य संस्कृत सम्पन्न करती है। उदाहरण के लिए हम ब्राह्मण तपस्वी अत्रि की वाणी का कुछ अंश उद्धृत करते हैं जो तुलसीदास की रामायण के तीसरे कांड का है। रूसी अनुवाद मौलिक संस्कृत छंद के स्वरूप को पूरा-पूरा प्रस्तुत करता है—

नमामि भक्तवत्सलं, कृपाल शील कोमलं
भजामि ते पदांबुजं, अकामिनां स्वधामदं
निकाम श्याम सुंदरं, भवांबुनाथ मंदरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं, मदादि दोष मोचनं
प्रलंब बाहु विक्रमं, प्रभोऽप्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं, धरंत्रिलोकनायकं
दिनेश वंश मंडनं, महेश चाप खंडनं
मुनींद्र संत रंजनं, सुरारि वृंद भंजनं
मनोज वैरि वंदितं, अजादि देव सेवितं
विशुद्ध बोध विग्रहं, समस्त दूषणापहं
नमामि इंदिरापतिं, सुखाकरं सतां गतिं
भजे सशक्ति सानुजं, शचीपति प्रियानुजं
त्वदंघ्रि मूल ये नराः भजंति हीनमत्सराः

पतंति नो भवार्णवे, वितर्क वीचि संकुले
विविक्त वासिनः सदा, भजंति मुक्तये मुदा
निरस्य इंद्रियादिकं, प्रयांति ते गतिं स्वकं

संस्कृत के दोनों कार्यों के संयोग में अर्थात् प्रत्येक कांड की आरम्भिक पंक्तियों तथा ब्राह्मण वा देवताओं के मुख से प्रयुक्त संस्कृत में, उसकी सर्वोच्च विजय प्रदर्शित है। यह विजय ब्राह्मणों और देवताओं की वाणी के वस्तु-विषय की विशिष्टता को ही प्रमुखता नहीं देती, किन्तु नव-भारतीय छन्दों से पृथक् संस्कृत के मौलिक वृत्तात्मक स्वरूप को भी (विशेषतया भाषा के archaic आर्ष स्वरूप की विशिष्टता को जिसके असंख्य रूप कृति में प्रविष्ट हैं और जो नवभारतीय भाषाओं के मूल में कही जाती है) कथा की सामान्य और रूप-रंग को ऊँचा उठाते हुए एक विशेष मानसिक स्थिति को जन्म देती है।

शैलीगत और प्रबन्धात्मक साधनों के रूप में संस्कृत की यह विशेषता अनुवाद में नहीं अवतरित की जा सकती। मूल ग्रंथ की उच्च स्थिति की निकटता को हम कुछ-कुछ प्राप्त कर सकते यदि हम काव्य के कुछ अंशों को जो परिमार्जित संस्कृत में लिखे गये हैं, परिमार्जित चर्च स्लेवानिक (Church Slavonic) भाषा में अनूदित करते; किंतु यह रूसी भाषा की आत्मा और सिद्धांतों से तादात्म्य नहीं रखती। इस कारण भाषा का आर्ष स्वरूप से कम-अधिक मात्रा में अनुवाद में प्रस्तुत किया गया है।

तुलसीदास की रामायण में संस्कृत, कविता के गत्यात्मक विकास में भाग लेती है। कविता के सभी कांडों की आरंभिक संस्कृत कविताएँ आपस में बँधी हुई साररूप में सारी कविता की कथावस्तु को संगठित स्वरूप देती हैं। ब्राह्मणों और देवताओं की संस्कृतमयी वाणी अपने में काव्य की कथावस्तु के स्वतन्त्र तत्व

का प्रतिनिधित्व करती है जो कि रचना में प्रयुक्त दूसरी भाषाओं में नहीं अभिव्यक्त हुआ है।

मुख्य भाषा, जिसमें कि कविता लिखी गई है पूर्वी हिन्दी अथवा अवधी प्रतीत होती है। तुलसीदास के पूर्वज कवियों द्वारा (जिनमें मलिक मुहम्मद जायसी आते हैं, जिनका कार्यकाल सोलहवीं शताब्दी के बीच है) अपनी कृतियों में प्रयुक्त होकर अवधी स्वतन्त्र कलात्मक साहित्यिक भाषा के रूप में उपस्थित होती है। मलिक मुहम्मद जायसी की कविता "पदुमावती" बिना विदेशी तत्वों के सम्मिश्रण के शुद्ध अवधी में लिखी गई है। इस प्रकार मूल रूप में पूर्वी हिन्दी में लिखी हुई कृतियों में बहुत सी भाषाओं का प्रयोग, शैलीगत और प्रबन्धात्मक विशिष्टता देता है, जिनका तुलसीदास ने अवधी भाषा की साहित्यिक परम्परा में समावेश किया।

तुलसीदास की कविता में अवधी में लिखा हुआ बहुत सा काव्य दबा पड़ा है। इस भाषा में कवि ने पहले के प्रयुक्त प्रधान वृत्तात्मक स्वरूपों का प्रयोग किया है और कविता में सभी छन्दों को (चौपाई, दोहा, सोरठा) लिया है जिनके आधार पर सारी कविता आद्योपान्त स्थित है।

दोहा और सोरठा के वृत्तात्मक स्वरूप से जो कार्य सम्पन्न किये गए हैं वे स्पष्टतया वाह्यात्मक ही नहीं है अर्थात् एकस्वरूपता का निवारणमात्र ही नहीं, जो अनिवार्य रूप से एक ही छन्द स्वरूप (चौपाई) के प्रयोग से उत्पन्न होता है। वे प्रबन्धात्मक उद्देश्य का अधिक गंभीर अनुसरण करते हैं। दोहा सामान्यतया कतिपय निष्कर्ष (या सामान्य परिणाम) देता हुआ और कथा के सूत्र पर मौलिक अर्थगत ग्रन्थि (या दृढ़ता) बाँधता हुआ चौपाई (स्वरूप) की ओर अग्रसर होता है।

इस प्रकार तुलसीदास के काव्य की अवधी, कथा की प्रधान

भाषा है। काव्य का मुख्य भाग इस भाषा में लिखित है। इस भाषा में प्रयुक्त विभिन्न वृत्तात्मक स्वरूपों की कार्य के अनुरूप अपनी विशिष्टता है। चौपाई छन्द में, जो पूर्ववर्ती उदाहरणों से स्पष्ट है, मुख्य कथा संचालित होती है। सामान्य कथन करने वाले तत्व, या चौपाई में आने वाली कथा का तर्कपूर्ण उत्कर्ष दोहा छन्द के रूप में दिया गया है। सोरठा छन्द में सुभाषित दिए गए हैं या उस प्रकार के सामान्य कथन जो दोहों में अभिव्यक्त हुए हैं। कभी-कभी सोरठा, कथा के उस भाग में प्रयुक्त होता है जहाँ भावातिरेक का आतिशय्य दिखाई पड़ता है।

तुलसीदास की कविता में ब्रजभाषा का स्वतन्त्र महत्व नहीं है। यह कविता की घटनाओं के गत्यात्मक विकास में भाग नहीं लेती और न कथा के अटूट तर्कपूर्ण अनिवार्य तत्व के रूप में अवतरित होती है। इस भाषा के द्वारा न नए तथ्य और न नई घटनाओं का समावेश हुआ है, इसकी उपस्थिति मुख्यतया वृत्तात्मक स्वरूप के संबंध से है। सारी कविता में प्रयुक्त तीन भाषाओं में से प्रत्येक अपने विशिष्ट वृत्तात्मक स्वरूपों का प्रयोग करती है। ब्रजभाषा अविछिन्न रूप में 'छन्द' के वृत्तात्मक स्वरूप से सम्बद्ध है।

काव्य में ब्रजभाषा के प्रयोग का पर्यवेक्षण बतलाता है कि इसका उपयोग केवल पूर्ववर्ती वृत्तों में वर्णित कथा-वस्तु की भव्यता को महत्ता देने के लिए और वृत्तों में उसकी भव्य पुनरावृत्ति के लिए भी हुआ है। इस छंद का राजसी रूप जो कि हमारे वृत्तात्मक स्वरूपों में संवहित नहीं हो पाता और जो ब्रज से अंगागिभाव से सम्बद्ध है, उसकी शैली की भव्यता के भाव को और भी अधिक दृढ़ करता है।

ब्रजभाषा में लिखित 'छन्द' वृत्त की विचारणा बतलाती है कि तुलसीदास के काव्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा अपने शुद्ध स्वरूप को नहीं प्रदर्शित करती। ब्रजभाषा में लिखे इन वृत्तों में हमें ऐसे तत्व

मिलते हैं जो इस साहित्यिक भाषा में सहज और स्वाभाविक हैं और अवधी में नहीं मिलते। तुलसी द्वारा प्रयुक्त कोषगत तत्व, प्रधानतया संस्कृतमय रूप से भाराक्रान्त व्रज, उनकी अवधी में पूर्ण संस्कृतमय स्वच्छंता के साथ प्राप्त हैं।

फलतः तुलसीदास की कविता में व्रज विशिष्ट शैली के रूप में या वास्तव में व्रज से प्रभावित शैलीगत रूप में प्रकट होती है। व्रज का यह शैलीगत परिस्थिति-जन्य रूप संस्कृत के 'क्लासिकल' नाटकों की शैली विशिष्ट प्राकृतों की याद दिलाता है। इस प्रकार व्रजभाषा मौलिक रूप में न आकर केवल मौलिक शैलीगत साधन के रूप में आती है।

तुलसीदास के काव्य में प्रयुक्त इन तीनों भाषाओं में से संस्कृत स्वरूप के संबंध में उतनी ही स्थिर (standard) या टकसाली है जितनी कि शब्द कोष के संबंध में। इसमें न बोलियाँ मिलती हैं, न प्रान्तीयता और न शब्दों के विचित्र प्रयोग (archaism); इसी प्रकार समानरूप से परंपरागत वस्तु-विषय की सीमा में आती हुई इसे नवन्याय-(neo-logic) की आवश्यकता नहीं। इसके फलस्वरूप संस्कृत में लिखे वृत्त, नवभारतीय भाषाओं में लिखी गई मूल कविता को स्निग्ध एवं विचित्र (archaic) भव्य शैली देते हैं।

कवि अवधी में लिखे गए वस्तु-विषय की पुनरावृत्ति और उसे विकसित करता हुआ शैली की उच्च भव्यता की अभिव्यक्ति के लिए व्रज का प्रयोग करता है। व्रज के वृत्त शैलीगत विचित्रता (archaism) से वंचित हैं। अवधी भाषा के वृत्तों के साथ निश्चित क्रम में उपस्थित होते हुए, व्रज में संस्कृतमयता के व्यापक प्रयोग के परिणामस्वरूप यह अपने विदेशी वैभाषिक स्वरूप (dialectism) से सजीवता लाती है (जो कभी-कभी स्पष्टतया स्थितिगत है)।

काव्य की मुख्य भाषा अवधो में सबसे अधिक शैली की अनेकरूपता चित्रित है। यह विभिन्न विभाषाओं के क्रियापद और कर्त्तारूप के प्रयोग में और विभिन्न विभाषाओं के कोषगत शब्दों के अनेक रूपात्मक प्रयोग में सफल हुई है।

अवधी के तत्वों का संस्कृत के तत्वों से संयोग (मिश्रण) काव्य में सभी संभाव्य अनुपात में हुआ है। वृत्तों में से एक में अत्यधिक (एक्स्ट्रा) संस्कृतमयता मिलती है, दूसरों में संस्कृत से उधार लिए हुए अतिरेक की विभिन्न मात्राएँ।

तुलसीदास के काव्य की भाषा का अध्ययन बताता है कि इसमें प्रयुक्त तीनों भाषाओं में से प्रत्येक का अपना विशिष्ट शैलीगत कार्य है। प्रत्येक भाषा कविता की रचना में विचारों की अभिव्यक्ति के विशिष्ट साधनों का समावेश करती हुए, काव्य के विन्यास या रूपरंग तथा सामाजिक भेद को आधार बनाती हुई अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

अवधी में मुख्य कथा संचा;लत होती है। इस साहित्यिक भाषा के विभिन्न वैभाषिक शब्द और स्वरूप का विभिन्न अनुपात में संस्कृत के शब्द और स्वरूप से सम्मिलन अनेक प्रकार की शैलियों की रचना करता है। ब्रज भव्यतापूर्ण पुनरावृत्ति का प्रयोग करती है और उच्चशैली की विशिष्टता को प्रदर्शित करती है। संस्कृत का समावेश पूरे काव्य के ढा;चे के रूप में और काव्य में अत्यधिक समाविष्ट ब्राह्मणत्व और भारतीय देवमंडल के कतिपय प्रतिनिधियों की विशिष्टता-स्वरूप भव्य विचित्र (आर्षप्रणाली) शैली के कार्य में हुआ है।

काव्य की प्रबन्धात्मकता पर उच्च विचारणा का समावेश कतिपय सामान्य परिचर्यात्मक निष्कर्षों को प्रस्तुत करता है—

१—प्रबन्धात्मक दृष्टि से तुलसीदास की कविता अत्यधिक जटिलता से अपने को विशिष्ट बनाता है। नव भारतीय

साहित्य में ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है जिसकी इस संबंध में इसके साथ तुलना की जा सके।

२—कविता की प्रबन्धात्मकता पर विभिन्न प्रकार के कारणों का प्रभाव पड़ा; यथा।

(अ) पूर्ववर्ती साहित्यिक परंपरा।

(ब) तुलसीदास के नए दार्शनिक और धार्मिक विचार।

(स) मौलिक भारतीय काव्यशास्त्र के जटिल सिद्धान्त और साधन।

(द) मौलिक वृत्तात्मक स्वरूप जो एक दूसरे के साथ निश्चित क्रम परिवर्तन के साथ पाए जाते हैं।

(य) कविता की विभिन्न भाषाएँ, प्रमुख रूप से तीन साहित्यिक भाषाएँ, संस्कृत, अवधी और ब्रज की उपस्थिति। इनमें से प्रत्येक का काव्य की रचना में विशिष्ट कार्य है।

३—गिनाए हुए कारणों में से प्रत्येक के प्रभाव की मात्रा का वर्त्तमान समय में निर्णय करना कठिन है; क्योंकि कविता का प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन बहुत कम हुआ है।

४—उक्त कारणों में से प्रत्येक का निश्चित स्थान केवल काव्य के (वैज्ञानिक) आलोचनात्मक पाठ के अध्ययन के बाद ही स्वीकार किया जा सकेगा।

५—उक्त कारणों में से प्रत्येक का अध्ययन कुछ प्रमेयों की ओर ले जाता है जो काव्य के अत्यन्त सामान्य आलोचनात्मक पाठ के स्वरूप के लिए अनिवार्य हैं। इनमें से कतिपय का उल्लेख किया जा सकता है।

(अ) चूँकि तुलसीदास स्पष्टतया इंगित करते हैं और कई बार दुहराते हैं कि उनकी कविता राम की विख्यात कथा से भिन्न है, यह सोचा जा सकता है कि तुलसीदास की कविता का वाल्मीकि की कविता से समानता या नैकट्य

का संकेत बाद की चीज है जो कि उद्देश्य की निकटता से प्रवर्तित हुआ।

(ब) यह स्थिति प्रक्षिप्त कहानियों के विचार करने में विशेषतया मौलिक महत्व रखती है। आलोचनात्मक पाठ के लिए दूसरा संभावित प्रस्थान-विंदु है विशिष्ट वृत्तात्मक स्वरूपों का पारस्परिक संयोग; किसी दोहा या सोरठा के साथ अत्यधिक चौपाइयों का साथ संदेह उत्पन्न करता है।

(स) सुभाषित की ओर ध्यान आकृष्ट करना विशेषरूप से महत्वपूर्ण है। बहुत सी चौपाइयों के बाद इसके प्रयोग का तथ्य किसी त्रुटि की ओर संकेत देता है और पाठ के कलुषित होने का संकेत दे सकता है जो कि बाद की प्रक्षिप्तता के फलस्वरूप घटित हुआ।

———

तुलसीदास की कविता का विशिष्ट स्वरूप

भारतीय काव्य की मौलिक विशिष्टता (मुख्यतः उसके रूप-विधान की मौलिकता) इस बात में है कि उसके अनेक सूत्र देश से, उसके अतीत से, उसकी प्रकृति से, जीव, वनस्पति और उसकी असंख्य कथाओं से अत्यन्त घनिष्टता से बँधे हुए हैं। भारतीय काव्य में वनस्पति, पक्षी, पशु, कीट और पौराणिक पात्रों की बहुत बड़ी संख्या असंख्य चित्रों में ऐसी पूर्णता से घुलती-मिलती चित्रित की गई है, जैसा कि कहीं नहीं देखा गया।

प्रकृति से भारतीय काव्य की यह संबद्धता योरोपीय काव्य से उसकी तुलना करने पर स्पष्टता से प्रकाशित हो जाती है, जिसमें (योरोपीय काव्य) कि प्रकृति, चित्रण के विधान में अपेक्षाकृत शिथिलता के साथ प्रयुक्त होती है और वृक्षों, जीवों, में बहुत-थोड़े अपनी स्वरूपगत विशिष्टता (Patternal Physiognomy) रखते हैं, जैसे ओक (ओक वृक्ष की तरह मजबूत) गुलाब, बाज, हंस, कौआ, भालू (भालू की तरह फूहड़) गाय, साँप और कतिपय अन्य। योरोपीय काव्य के चित्र-विधान में चीड़ (Fir) या आल्डिर (Aldir) जैसे विशाल वृक्ष भी नहीं आते हैं।

भारतीय काव्य की अपूर्व मौलिकता इसके चित्रों की भारतीय मुसलिम काव्य के चित्रों से तुलना करने पर प्रकट होती है। भारतीय मुसलिम काव्य की उर्दू भाषा, फारसी काव्य के लिए

गए चित्र (विधान) और काव्यात्मक परम्पराओं से जीवित है। इसके चित्रों में बुलबुल, नरगिस, ट्यूलिप, साइप्रस, सामने आते हैं जो भारत में नहीं होते; किंतु समृद्धिशाली भारतीय प्रकृति पूर्णतया छोड़ दी गई है। ये उदाहरण (इसके) काव्यगत चित्रों की रूढ़िवादिता के अतिरेक का विश्वास दिलाते हैं।

भारतीय मुसलिम काव्य के चित्र-विधान से तुलना करने पर भारतीय काव्य के चित्र-विधान स्थानगत साहित्यिक परम्परा के क्रम को अक्षुण्ण रखते हुए, भारतीय प्रकृति से उतना ही गंभीर संबंध (सम्बद्धता) स्थापित करते हैं जितना कि जीवन और घटनाओं से। तुलसीदास की कविता में इनके चित्र अंकित हैं :—

१—पेड़-पौधे:—अमल, बात, चमेली, काल, कुम्हड़ा, अबीर, तमाल, मूली, शिरीष, कुम्हल, तुलसी, रूसा, कुरकुमा, बबुल, कदम्ब, सुपारी, घुँघची, ताल, पाकर, कोदों, चम्पक, कटहल, ऊमर, दाड़िम, श्रीफल, पलाश, पनस, फालसा, रसाल, बेंत, सन, और बहुत से अन्य।

२—पशु और जंगली जानवर :—सिंह, हाथी, चीता, शेरनी, सुअर, हिरन, छोटा मृग (Gazelle) खरगोश, सियार, मूसा, चमगादड़, गाय, बछड़ा, बैल, गधा, भेड़, कुत्ता और बहुत से दूसरे।

३—पक्षी :—हंस, कोकिल या कोयल (योरोपीय और पारसी काव्य की बुलबुल का भारतीय काव्य में स्थान ग्रहण करने वाली), चकवा, चातक, चकोर, मयूर, बाज, बत्तक, खंजन, काक, उलूक, बगुला, गिद्ध, कठफोड़वा सारस, टिट्टिभ, गरुड़।

इनमें से अधिकांश वृक्ष और पक्षियों के साथ कम कथाएँ नहीं जुड़ी हैं, जो अनेकरूपात्मक चित्र-विधान प्रस्तुत करती हैं जिनमें ये समाविष्ट हैं।

४—अनेक प्रकार की छलियाँ, मेढक, साँप, maggot, baby-worm, mountainworm, बिच्छू इत्यादि।

५—कीट—भ्रमर, तितली, जुगनू, पतिंगा, कुटकी या पिस्सू, टिड्डी, मक्खी, चींटी, बोट, बर्रं।

६—पृथ्वी-धातुएँ—सूखी जमीन, रेगिस्तान, पर्वत, चट्टान, धान के खेत, पीली मिट्टी, कीचड़, धूल, सोना, हीरा, जमरु्द (ochre), पारस, कोयला, धुआँ, जलने की गन्ध इत्यादि।

७—जल और जल के रूपः—तालाब, समुद्र, महासागर, भँवर, नदी, तूफानी बादल, बादल, मुसलाधार वर्षा, ओला, ओस, झरना।

८—भारत की असंख्य नदियाँ जिनमें से प्रत्येक के साथ कथाएँ जुड़ी हैं।

९—आकाश और आकाश के रूप (ग्रहपिण्ड):—सूर्य, सूर्य की किरणें, चंद्रमा, चंद्रमा की किरणें, चंद्रमा के धब्बे, चाँदनी, तारे, बिजली, गर्जन, इन्द्रधनुष।

१०—विभिन्न वस्तु-विषय, वस्तुएँ, भावनाएँ इत्यादि—भट्ठी, नाव, झूला papersnake, मोती, (mussel shell, musselroft), आग, रात, अंधकार, ठंढक, हवा, पाला, परछाहीं, स्वप्न, मृत्यु, घाव, फोड़ा, विष।

११—जनता—ब्राह्मण, योगी, योद्धा, सौदागर, बढ़ई, मुखिया, तरकारीवाला, कुम्हार, नट, शिकारी, बहेलिया (चिड़ीमार), गरीब, जुआरी, चोर, अंधा, गूँगा इत्यादि।

१२—मनुज-शरीर के अंग—हृदय, आँख का गोलक, दृष्टि, पलक, कान, जीभ, हाथ, पैर, बाल इत्यादि।

१३—पेय—दूध, खट्टा दूध, मक्खन, मधु, knass, नमक, दही, अमृत इत्यादि।

१४—बर्तन, फर्नीचर, वस्त्र—प्याला, छोटा बर्तन, घड़ा, दीपक, मोमबत्ती, दर्पण, वस्त्र, डोरा।

१५—शस्त्र, औजार इत्यादि—छड़ी, धनुष, तीर, तलवार, चाकू फरसा, कुल्हाड़ी, छेनी, कैंची इत्यादि।

१६—अनेक कल्पनात्मक (legendry) व्यक्ति एवं वस्तुएँ—कामधेनु, (मनोवांछा पूरी करने वाली गाय), कल्पवृक्ष, (इच्छा पूरी करने वाला वृक्ष), मंदर, विंध्य इत्यादि।

१७—अनेक पौराणिक पात्र—देवता, अर्द्ध देवता, दानव और वीर नायक। इनमें से प्रत्येक के साथ कम या अधिक संख्यक कथाएँ जुड़ी हैं।

प्रत्येक वृक्ष, जीव, निर्जीव वस्तु तथा पौराणिक पात्र का भारतीय काव्य में अपना शरीरगत (physiognomical) स्वरूप या निजत्व है। इससे योरोपीय पाठकों के लिए उसका समझना अत्यंत कठिन हो जाता है, क्योंकि तुलना करने पर भारतीय वस्तुओं का चित्रविधान योरोपीय काव्य में प्रकट होने वाले चित्र-विधान से भिन्न परिपाटी पर विकसित होता है।

उपरोक्त स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ गाय के कई उदाहरण देते हैं—

रूसी साहित्य में गाय बहुत कम काव्यात्मक वस्तु मानी जाती है और किसी लड़की या स्त्री के लिए यह कहना कि वह गाय के समान है, प्रशंसनीय नहीं समझा जाता। चित्र-विधान के रूप में यह शब्द काव्यात्मक व्याख्या के लिए निश्चय ही अनुपयुक्त माना जाता है। भारतीय काव्य में पूर्णतया भिन्न स्थिति है। यहाँ यह अत्यन्त अच्छे स्वभाव की, कोमल, शुभ और स्वच्छ पशु मानी जाती है। अत्यन्त लोक-प्रिय उपमान के रूप में गाय की उपमा उत्कृष्ट काव्य में मिलती है। इस प्रकार तुलसीदास में हम पाते हैं:—

(अ) अच्छे स्वभाव वाली भोली गाय के विपरीत क्रूर सिंह है, उदाहरणतः —

फिरि पछितैहसि अंत अभागी, मारसि गाइ नहारू लागी।

(ब) राम की पत्नी, सुंदर, भोली सीता की गाय से तुलनाः—

अधम निसाचर लीने जाई, जिमि मलेछ बस कपिला गाई।

(स) राम की माता कौशल्या की गाय और स्वयं बड़े देवता राम की बछड़े से तुलना की गई है :—

राम जननि जब आइहि धाई, सुमिरि बच्छु जिमि धेनुलवाई।
पूछत उतर देव मैं तेही।

(द) पवित्र विश्वास की गाय से तुलना हम पढ़ते हैं :—

सात्विक श्रद्धा धेनु लवाई, जो हरिकृपा हृदय बसि आई।

(य) विशेष रूप से भारतीय काव्य में अत्यन्त प्रिय चित्र है, माता-गाय। यह चित्र महाकाव्य में प्रयुक्त हो चुका है, और वर्तमान समय तक जीवित है। तुलसीदास, अपनी प्रिय कन्याओं से राजा की विदा का दृश्य प्रस्तुत करते हैं :—

पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी, बार बार भेटहि महतारी।
पहुँचावहि फिर मिलत बहोरी, बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी।
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई, बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।

(फ) बछड़े के साथ गाय—भारतीय काव्य में बच्चों के साथ माँ के सर्वश्रेष्ठ रूप में तुलसीदास, राम के अपनी माँ तथा अन्य रानियों से मिलन का वर्णन करते हैं—

कौसल्यादि मातु सब धाईं, निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिषति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।

(ज) ईश्वर के प्रति सच्चे ज्ञान और पूर्ण भक्ति के सार तत्व की व्याख्या के लिए, तुलसीदास अपने काव्य के अंतिम कांड में गाय के दुहे जाने, दही जमाने, मक्खन निकालने, और उसके गरम करने के चित्र प्रस्तुत करते हैं।

गाय के बछड़े के प्रति कोमल और शुद्ध प्रेम की भावना, जो केवल काव्य में ही नहीं प्रत्युत भारतीयों के मानस में अत्यन्त गंभीरता से व्याप्त है, इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि (बछड़े) वत्स शब्द से बना वात्सल्य शब्द पूर्णतया निस्वार्थ प्रेम को अभिव्यंजित करता है। 'वात्सल्य' का शाब्दिक अर्थ है 'वत्स भाव'।

भारतीय काव्य में बहुत से रूपों में गोपद का चित्र आता है वह गड्ढा जो कि नम जमीन या दल-दल में गाय के खुर से पड़ जाता है।

बहुत से कवियों में और तुलसीदास में भी प्रायः गोपद के विपरीत (contrast) संसार की सागर से उपमा मिलती है। उदाहरणः हम उनके काव्य में पढ़ते हैं—

सादर सुमिरन जे नर करहीं, भव वारिधि गोपद इव तरहीं।

गाय की काव्यात्मकता भारतीय साहित्य के विकास के अत्यंत प्राचीन काल से संबद्ध है। हम इसे ऋग्वेद तक में देखते हैं।

कुत्ता जो कि योरोपीय काव्य में स्वामिभक्ति की प्रतिमूर्ति के रूप में आता है, भारतीय काव्य में प्रायः अत्यन्त दुष्ट और नीच पशु के रूप में दिखाया गया है। तुलसीदास कहते हैं—

खल परिहरिय स्वान की नाईं,

रूसी और भारतीय साहित्य में प्रयुक्त केवल थोड़े से ही पशु चित्रविधान में एक दूसरे के निकट हैं, जैसे खरगोश (कायरता) gazelle (हिरन), सियार, बाज़ (साहस), निर्मल हंस।

भारत के लोक-प्रिय कवि पुरानी भारतीय पौराणिक कथाओं

और गल्पों द्वारा प्रकृति और जीवन से संबद्ध मिलते हैं। इनमें से प्रत्येक, कम-अधिक महत्वपूर्ण संख्या में, अतीत के आरम्भ से चली आती हुई उपमाओं का समावेश करता है।

इनमें कतिपय उपमान अपनी सजीवता के महत्वपूर्ण अंश को खोकर विचित्र शैलीगत साधन के रूप में रहकर रूढ़ हो गए हैं। इस प्रकार उदाहरणतः भारतीय काव्य का लोकप्रिय फूल कमल का चित्र है।

भारतीय काव्य में चित्र-विधान के विकास का इतिहास विद्वानों द्वारा अस्पृष्ट है। हमें इसका बहुत कम ज्ञान है कि वैदिक साहित्य, विशेषतया ऋग्वेद, अपने चित्र-विधान के कारण पिछले काव्य से पूर्णतया भिन्न है, क्योंकि यह प्रवन्धकाव्य और उत्तर भारतीय काव्य में अत्यन्त व्यापकता से प्रचलित उपमानों से अवगत नहीं है ; विशेषतया ऋग्वेद, निश्चयात्मक रूप से अत्यन्त विशिष्ट भारतीय चित्र (साम्य) कमल और हाथी को नहीं जानता।

भारतीय काव्य में साम्य-विधान के विकास का अध्ययन अत्यन्त वैज्ञानिक महत्व प्राप्त कर सकता है। तिथिक्रम को (chronology) जो भारतीय साहित्य के इतिहास का अत्यन्त दुर्बल अंग है, और उपमानों के तिथिक्रमानुसार विकास की कोटि को, भारतीय साहित्य के महान ग्रंथों के तिथिक्रम के एक महत्वपूर्ण साधन द्वारा, दिखाया जा सकता है,

तुलसीदास की रामायण अपने चित्रों की ऐकान्तिक समृद्धि के द्वारा भारतीय काव्य की महान कृतियों के समृद्धिशाली चित्रों के बीच विशिष्टता प्राप्त करती है। अपनी रामायण में तुलसीदास ने अनेक उक्त पशु और उक्त विभिन्न पक्षी, मछली इत्यादि अनेक कीट, भारतीय समाज के विभिन्न वर्ण, अनेक जल-पक्षी और पेय, शस्त्र, वस्त्र, बर्तन, खिलौने, वस्तु-विषय और प्राकृतिक

दृश्यों का समावेश किया है। इन सबके ऊपर तुलसीदास ने अर्द्ध-विकसित बहुत से पौराणिक पात्रों का चित्र प्रस्तुत किया है।

भारतीय काव्य में ऐसा दूसरा कवि पाना अत्यन्त कठिन है जिसकी साम्य की व्यापकता और अनेकरूपता की दृष्टि से तुलसीदास से तुलना की जा सके।

भारतीय प्रकृति के पर्यवेक्षण और अध्ययन द्वारा प्राचीन चित्रों, उपमानों को पुनर्जीवित करना, उनके प्रयोग और तुलना द्वारा नए पक्षों को ढूँढ़ लेना, और पूर्ववर्ती काव्यात्मक परम्परा में अविज्ञात नए चित्र-विधान का निर्माण, तुलसीदास की विशिष्टता है।

तुलसीदास में प्राप्त प्राचीन वस्तु के नए अंग या पक्षों की स्थिति को प्रदर्शित करने के लिए हम प्रथम कांड से सुभाषित प्रस्तुत करते हैं जहाँ देवनदी (गंगा) का सागर से वैपरीत्य (contrast) दिखाया गया है। परम्परात्मक रूप और साम्य में गंगा अध्यात्मिकता, महान माँ, सब जीवों की पालनकर्त्री, और पवित्रता की मूर्ति का प्रतीक है। सागर सामान्यता कुछ भयंकर और क्रूर है। इस रूप में तुलसीदास के काव्य में गंगा और सागर के चित्र प्रयुक्त हुए हैं। किंतु इस समाविष्ट सुभाषित में गंगा अहंभाव और सागर उच्च आध्यात्मिकता के उदाहरण के रूप में प्रकट होता है —

"जग बहु नर सुरसरि सम भाई, जे निज बाढ़ि बढ़िहिं जल पाई।
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई, देखि पूर बिधु बाढ़ई जोई।"

प्रकृति के अध्ययन के आधार पर नव साम्य-विधान के निर्माण का उदाहरण देने के लिए हम कछुआ के प्रयोग का उल्लेख करते हैं। प्राचीन काव्य में कछुआ का कथात्मक (पौराणिक) रूप था। भारतीय सृष्टि विधान (cosmology) के अनुसार कछुआ

सारे संसार को धारण किए है। संबंधित कथा के अनुसार जिस समय देवता और दानवों ने समुद्र का मंथन किया, स्वयं महान देवता विष्णु ने कछुआ के रूप में अवतार लिया और मंदर पर्वत को धारण किया। इन कथाओं के आधार पर तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त चित्र, काव्य के द्वितीय कांड में मिलता है—

"सो में बरनि कहौं बिधि केही, डाबर कमठ कि मंदर लेही।"

उसी कांड में कछुआ नए रूप में आता है। यथा :—

"रामहि बंधु सोचु दिन राती, अंडहि कमठि हृदय जेहि भांती।"

तुलसीदास की यह उपमा (चित्र) उनके समकालीनों द्वारा न समझी गई और उनपर निरर्थक तुलना का आक्षेप किया गया। प्रचलित परंपरा कहती है कि तुलसीदास ने कछुए के स्वरूप का निरीक्षण करने के बाद इसका प्रतिवाद किया। यह कहा जाता है कि कछुआ यद्यपि अंडों पर नहीं बैठता, पर दूर से उनपर अपनी नजर रखता है और अधिक दूर न जाने की कोशिश करता है।

भारतीय काव्य के चित्र-विधान की स्थिति के ज्ञान के बिना योरोपीय पाठकों को तुलसीदास के काव्य के बहुत से स्थल समझ में नहीं आते और पूर्णतया निरर्थक प्रतीत होते हैं। हम अत्यन्त सरल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। रावण द्वारा सीताहरण के पश्चात् पक्षी और पशुओं की ओर राम इन शब्दों में उन्मुख होते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर सैनी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी, कमल सरद ससि अहिभामिनी।
बरुन पास मनोज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं।

तुलसीदास ने यहाँ पर मौलिक अतिशयोक्ति का निर्माण किया है। स्त्री-सौंदर्य के वर्णन के लिए तुलना में बहुत से पक्षी, पशु, मछली, सर्प, चंद्रमा, कमल इत्यादि का प्रयोग किया गया है। सर्व सुन्दरी

के रूप में सीता ने इन सबको अपने सौंदर्य से तिरोहित कर दिया और सब आशंकित और त्रस्त थे। जब सीता लुप्त हो गई तो ये सभी पक्षी, पशु, फूल इत्यादि प्रबल प्रतिद्वन्दी से मुक्त हो सके, इसके बाद ही उनके सौंदर्य की प्रशंसा की जा सकती थी।

विभिन्न पशु, पक्षी, फूल, इत्यादि के प्रयोग के अनेक रूपात्मक पक्षों की (यद्यपि शिथिल) अभिव्यक्ति देने के लिए हम तुलसीदास की कतिपय तुलनाएँ प्रस्तुत करते हैं जिनमें से सर्वाधिक उल्लिखित ये हैं ; यथा-हाथी, हंस, भ्रमर, कमल और चंद्रमा।

तुलना में तुलसीदास द्वारा पशुओं में सबसे अधिक प्रयुक्त हाथी है। यह पशु प्रायः बिना उपमा के भी आता है :—

"कलित करिबरन्हि परी अंबारी, कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी।
चले मत्त गज घंट बिराजी, मनहु सुभग सावन घनराजी।"

तुलसीदास प्राचीन प्रबंध-काव्य में मिलने वाले परम्परा प्राप्त चित्रों का भी व्यापक प्रयोग करते हैं।

क. हाथी के समान गति, सुन्दरी स्त्रियों के लिए प्रयुक्त जो गज की गति से चलती हैं (गजगामिनी)—

"भरि भरि हेम थार भामिनी, गावत चली सिंधुरगामिनी।"

ख. अथवा नायक के लिए, कई स्थानों पर स्वयं राम के लिए—

"सहजहिं चले सकल जग स्वामी, मत्त मंजु बर कुंजर गामी।"

ग. प्रायः प्राचीन चित्र हाथ—हाथी की सूँड़, राम के लिए कहा जाता है—

"स्याम सरोज दाम सम सुन्दर, प्रभु भुज करिकर सम दसकंधर।"

या

"करि कर सरिस सुभग भुज दंडा।"

घ. शोक से भरे व्यक्तियों के लिए, सूँड़ विहीन हाथी, दुख का अनुभव करते हुए लोग—

"जथा पंख बिनु खगपति दीना, मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।"

इन परम्परा-प्राप्त चित्रों के अतिरिक्त तुलसीदास हाथी की उपमा में नवीन पक्षों का भी प्रयोग करते हैं—

च. स्वतंत्रता खोजता हुआ जंगली हाथी, राम का हृदय।

"नव गयंदु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर अनन्द अधिकान॥"

छ. जलते हुए जंगल में हाथी, उत्तप्त आत्मा—

"मनकरि बिषय अनल बन जरई।"

ज. अविज्ञात रूप से माला त्यागता हुआ हाथी, शरीर त्यागती हुई आत्माः—

"राम चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ तें, गिरत न जानइ नाग॥"

झ. शक्ति विहीन वृद्ध हाथी, वृद्ध राजाः—

"जाइ देखि रघुबंस मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु॥"

ट. हाथी और हथिनी, पति-पत्नीः—

"राम दरस बस सब नर नारी, जनु करि-करिनि चले तकि बारी।"

ठ. हाथी, पापः—

"को कहि सकइ प्रयाग प्रभाउ, कलुष पुंज-कुंजर मृगराऊ।"

ड. हाथी असत्; रामः—

"पापपुंज कुंजर मृगराजू।"

ढ. हाथी, मृत्यु; रामः—

"...... काल मत्तेभसिंहं।"

प्रायः हाथी सिंह के वैपरीत्य में प्रस्तुत किया जाता है।

ण. शक्तिशाली सिंह से भयभीत हाथीः—

"सुनत भरत भय बिबस बिषादा, जनु सहमेउ करि केहरि नादा।"

त. कमल के वैपरीत्य में हाथीः—

"भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गजु पंकज नाल।"

थ. हाथी का झुंड, कायरतापूर्ण भीड़:—

"चितवत मनहुं मृगराज प्रभु, गजराज घटा निहारि कैं।"

द. हाथी और अंकुशः—

"महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्ब।"

घ. अशिष्ट या धृष्ट के रूप में आता है; विवेकहीन शक्तिः—

"मोर मनोरथु सुरुतरु फूला, फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।"

बुद्धि के संबंध में प्राचीन भारतीय कथाओं से समन्वित हंस प्रस्तुत होता है। इन (कथाओं) के अनुसार वह बुद्धिमान है, क्योंकि पानी मिले दूध में से वह दूध ले लेता है और पानी छोड़ देता है।

(क) हंस के विवेक का यह प्राचीन चित्र अत्यन्त विशिष्टता से तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त हुआ है।

"सगुन षीर अवगुन जलु ताता, मिलइ रचई परपंच विधाता।
भरतु हंस रवि बंस तड़ागा, जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी।"

अथवा—"जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु मन तासु।।"

अथवा—"संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।"

प्रायः तुलसीदास हंस की उपमा उन धर्मों (कार्य) के लिए देते हैं जो हमारे जातीय काव्य में मिलते हैं।

(ख) सुंदरी स्त्री के रूप में—

"सखी संग लेइ कुँअरि तब चली जनु राजमराल।"

(ग) हंस गति, सुन्दरी स्त्री की भव्यगति—

"हंस गवनि तुम नहिं बन जोगू।"

(घ) मुग्धकारी हंस, मनोहारिणी सुन्दरी सीता :—

"परी बधिक बस मनहुँ मराली।"

(च) रूसी जातीय काव्य से विभिन्न तुलसीदास का हंस युवा सुन्दर नायक के रूप में भी प्रयुक्त होता है—

"सो धनु राज कुंअर कर देहीं, बाल मराल कि मंदर लेहीं।"

(छ) तुलसीदास के काव्य के चित्र (विधान) में एक नहीं प्रत्युत् दो हंस भी आते हैं—

"ये दोऊ दशरथ के ढोटा, बाल मरालन्ह के कल जोटा।"

(ज) तुलसीदास के काव्य में हंस के चित्र को पर्याप्त स्थान दिया गया है, वाणी—

"बिमल बिबेक धरम नय साली, भरत भारती मंजु मराली।"

(झ) भारतीय काव्य के अनुरूप निर्मल विवेक पूर्ण पक्षी के रूप में हंस, बगुला (Heron) के विपक्ष में (जो अत्यन्त चालाक और पाखंडी है) चित्रित किया जाता है—

"बकिहि सराहइ मानि मराली।"

'मधुकर' भारतीय काव्य की प्राचीन संपत्ति है। यह प्राचीन महाकाव्यों में सामने आता है। इस समय से यह घनिष्ट रूप में भारतीय काव्य में विकसित हुआ है ।म कर के उल्लेख के बिना वन, वृक्ष या उद्यान का वर्णन पूर्णतया असंभव है। तुलसीदास का भ्रमर इस प्रकार उपमाओं की अवली में प्रकट होता है। इसका काव्य में प्रायः उल्लेख हुआ है।

(क) वन, उद्यान और वृक्षों के वर्णन में बिना तुलना के—

"सरनि सरोज बिटप बन फूले, गुंजत मंजु मधुप रस भूले।"

(ख) पुण्यात्मा व्यक्ति के रूप में,

"मधुकर सरिस संत गुन ग्राही।"

(ग) भ्रमर चम्पक वृक्ष से संबंद्ध होकर आता है जिसके सुगंधित पुष्प पर वह नहीं बैठता—

'तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा, चंचरीक जिमि चंपक बागा।"

(घ) तुलसीदास के प्रिय चित्रों में से एक, मधु से वंचित मधु-मक्खियों का झुंड, दुख से व्यग्र व्यक्तिः—

"तन कृस मन दुखु बदन मलीने, बिमल मनहुँ माखी मधु छीने ।"

(च) भौंरा—वाणी—

"गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी ।"

(छ) भौंरा इसी प्रकार के चित्र में, तुलना में प्रायः प्रयुक्त है ।

"देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भृंग
सादर पान करत अति............ ।"

(ज) तुलसीदास द्वारा भौंरे की उपमा प्रायः व्यापकरूप से आत्मा के लिए दी गई हैः—

"पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना ।"

अथवा

"मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान ।"

यह परम्परा-प्राप्त चित्र अनेकरूपात्मकता के बीच समुपस्थित होता है ।

(झ) विरलरूप में भौंरा योद्धा इत्यादि के रूप में दिखाई पड़ता है । उदाहरणतः—

"उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा ।
गहि भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्ह बसे निसि मधुकरा ।"

(ट) भौंरा तीर के रूप में भी—

"रावन सिर सरोजवन चारी, चलि रघुबीर सिलीमुख धारी ।"

(ठ) तुलसीदास का प्रिय साम्य, भौंरों की पंक्ति, कुंचित केश :—

"कुटिल केस जनु मधुप समाजा ।"

अपनी रामायण में तुलसीदास अस्सी से अधिक कथित वृक्षों के चित्र का प्रयोग करते हैं । फूल, घास, झाड़ियाँ, वृक्ष इत्यादि उपमानों में सबसे अधिक लोक-प्रिय और अनेक-

रूपात्मक कमल का फूल प्रतीत होता है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए तुलसीदास दशाधिक शब्दों का समावेश करते हैं।

कमल, भारतीय काव्य का अत्यन्त प्राचीन फूल है। वैदिक काव्य को न इसका पता है और न उसमें इसका उल्लेख है। उत्तरकालीन सभी युगों में और आज तक यह भारतीय काव्य का अत्यन्त प्रिय पुष्प रहा है। अन्य भारतीय कलाओं में, चित्रकला और वास्तुकला में भी, इसे व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। कमल के स्वरूप का अनेक रूपात्मक ढंग से भारतीय धर्म और दर्शन में भी प्रयोग हुआ है।

अपने काव्य में तुलसीदास कमल के रूप का व्यापक प्रयोग करते हैं। भारतीय काव्य के इस अत्यन्त प्रिय पुष्प की अभिव्यक्ति के लिए वह बहुत से पर्यायों का उपयोग करते हैं। तुलसीदास में कमल के लिए अत्यंत प्रयुक्त शब्द निम्नलिखित हैं:—सरोरुह, बारिज, कमल, कंज, पंकज, जलजात, सरोज, राजीव, पाथोज, अंबुज, नलेंदु, अरविंद, जलज, वनजात, नीरज, वनज, पंकरुह, सरसीरुह, कैरव, तामरस, जलरुह, जलजाया, अब्ज, इंदीवर, नलिनी, कुवलय, पद्म इत्यादि।

इन विभिन्न शब्दों के द्वारा कमल और अन्य पुष्पों के असंख्य विविधात्मक रूपों की अभिव्यक्ति होती है।

(क) तुलसीदास में कमल का बहुत अधिक समावेश है। भारतीय काव्य के दृष्टिकोण से कमल या कमल के पत्ते (पुरइन) के उल्लेख के बिना, उद्यान या सरोवर का वर्णन असम्भव है।

(ख) कभी कभी तुलसीदास द्वारा यह साम्य कमल पुष्प पर आधारित न होकर—जैसा कि सामान्यतया होता है—उसकी पत्तियों पर निर्मित होता है। इस प्रकार दूसरे कांड में वह पवित्र व्यक्तियों के संबंध में कहते हैं कि वे—

"जे बिरंचि निरलेप उपाये, पदुम पत्र जिमि जग जल जाये।"

(ग) विशेषतया नायक कमल के समकक्ष हो जाता है। इस प्रकार राम के विषय में तुलसीदास कहते हैं :—

"नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥"

हरि के विषय में जिसके कि अवतार राम हैं, कवि कहता है—

नील सरोरुह नीलमनि, नील नीरधर स्याम।

(घ) सूर्यवंश के सभी सदस्य जिनसे कि राम संबंधित हैं, कमल के रूप में चित्रित किए गए हैं—

"आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि, हरषी रबि कुल जलरुह चंदिनि।"

अथवा—

"गाँव गाँव अस होइ अनंदू, देखि भानु कुल कैरव चंदू।"

(च) काव्य में प्रायः कमल पुष्प के विभिन्न चित्र मिलते हैं। चूँकि राम सदा नीले कमल के रूप में चित्रित किए जाते हैं और उनके भाई लक्ष्मण सुनहले कमल के रूप में, तुलसीदास कहते हैं—

"सोभा सींव सुभग दोउ बीरा, नील पीत जलजाभ सरीरा।"

(छ) अपने शोक की मात्रा के अनुरूप, नायक की तुलना कमल से की जाती है। संपुटित कमल से—

सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने, मनहु साँझ सरसिज सकुचाने।"

अथवा—

"तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिनि से।"

मुरझाए कमल से—

"इंद्रिय सकल बिकल भइँ भारी, जनु सर सरसिज बन बिनु बारी।"

जाड़े के पाले से मारा हुआ कमल—

"सिअरे बचन सूखि गये कैसे, परसत तुहिन तामरस जैसे।"

उन्मूलित कमल से,

"सोच बिकल बिबरन महि परेऊ, मनहुँ कमल मूल परिहरेऊ।"

(ज) कमल से केवल नायक या नायक के शरीर की ही तुलना नहीं की जाती, प्रत्युत् उसके शरीर के विभिन्न अंगों की भी।

सिर—कमल,

"रावन सिर सरोज बनचारी, चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।"

मुख—कमल,

"देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भृंग
सादर पान करत अति........।"

या—

"पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।"

चक्षु—कमल,

"सकुचि सीय तब नयन उघारे, सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे।'

या—

'लोचन सरोरुह स्रवत सींचत, बिरह उर अंकुर नये।'

मुह—कमल,

"मानस तें मुख पंकज आई।"

बाहु—कमल,

"सिर परसे प्रभु निज कर कंजा।"

हाथ—कमल,

सुनत जुगल कर माल उठाई,
प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।

"सोहत जनु जुग जलज सनाला, ससिहिं सभीत देत जयमाला।"

चरण—कमल,

'श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।"

विशेषरूप से चरण की उपमा के लिए कमल के चित्र मिलते हैं। मधुमक्खियों के संयोग से—आत्मा,

"राम चरन पंकज मन जासू, लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।"

"बंदउ लछिमन पद जलजाता'...... ।"

हृदय—कमल,

"बहुरि राम पद पंकज धोये, जे हर हृदय कमल महुँ गोये।"

या,

"माम अवलोकय पंकज लोचन, कृपा बिलोकनि सोक बिमोचन
नील तामरस स्याम काम अरि, हृदय कंज मकरंद मधुप हरि।"

"जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर.......... ।"

आत्मा—कमल,

बचन किरन मुनि कमल विकासा

या,

मम हृदय पंकज भृंग

(झ) प्रायः कमलनयन, या कमलनयनी विशेषण का प्रयोग होता है—

"सुचि सुन्दर आश्रम निरखि हरषे राजिवनैन।"

दृष्टि—कमल,

"जहँ बिलोकि मृग सावक नयनी, जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी।"

(ट) प्रायः कमल के विभिन्न गुणों का प्रयोग होता है।

नीला फूल .... 'नीलकंज तनु सुन्दर स्यामा'

लाल फूल, ... 'नव सरोज लोचन रतनारे'

हल्कापन—कमल.... 'कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउ"

कोमल कमल.... 'मृदु पद कमल कठिन मगु जानी'

'भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गजु पंकजनाल'.

चंद्रमा (चंद, चंद्र, चंद्रमा) भारतीय काव्य में अनेक रूपों में प्रकट होता है। साम्यविधान की व्यापकता में वह कमल तक नहीं पहुँचता, भारतीय काव्य में इसके चित्र की लोकप्रियता की मात्रा इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि संस्कृत और हिंदी में आकाश की इस ज्योति के शताधिक भिन्न स्वरूप हैं, दूसरी भारतीय भाषाओं में भी समान स्थिति देखी जाती है।

(क) नायक का चंद्रमा से तादात्म्य, विशेषरूप से भारत के सबसे बड़े देवता राम, कृष्ण या हरि के साथ प्रमुखरूप से देखा जाता है। उनके नाम प्रायः उच्चरित होते हैं—रामचंद्र, कृष्णचंद्र, हरिश्चंद्र, देवताओं के नामों के साथ चंद्र शब्द से निम्न स्तर का शब्द नहीं जोड़ा जाता।

(ख) सबसे बड़े नायक की चंद्रमा के साथ तुलना—तुलसीदास की प्रिय उक्ति है, राम हैं 'रघुकुल कैरव चंद्र'—

"आवत देव मुदित मुनि बृन्दा, कीन्ह दंडवत रघुकुल चन्दा।"

(ग) राम और उनके भाई लक्ष्मण के विषय में तुलसीदास प्रायः कहते हैं कि जैसे दो चंद्रमा—

लता भवन ते प्रकट भये तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु .... ॥

(घ) भारतीय काव्य में सबसे प्रिय चित्र प्रतीत होता है, मुख—पूर्णचंद्र। तुलसीदास द्वारा यह जितना स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है उतना ही पुरुष के चेहरे के लिए भी—

"प्राची दिसि ससि भयउ सुहावा, प्रिय मुख सरिस देखि सुख पावा।"

राम के मुख के लिए तुलसीदास कहते हैं—

"आनन सरद चंद छबि हारी।"

(च) श्वेत शरीर का चित्र—शिव के शरीर के लिए चंद्रमा का प्रयोग हुआ है—

"कुंद इंदु दर गौर सरीरा।"

(छ) चंद्रमा प्रायः सूक्ष्म भावनाओं की तुलना के लिए आता है, उदाहरणतः इन शब्दों के साथ—

"हरिहर जस राकेस राहु से।"

(ज) चंद्र किरण की तुलना मुस्कान से की गई है—

"विधु कर-निकर बिनिन्दक हासा।"

इन शब्दों के साथ भी—

"ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी।"

सौंदर्य के साथ—

"भयो तेजहत श्री सब गई, मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।"

(झ) विरल रूप में चंद्रमा स्थूल और विशिष्ट वस्तु-विषय की तुलना में आता है।

चंद्रमा—सिंह,

"कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक।"

"मत्त नागतम कुंभ बिदारी, ससि केसरी गगन बन चारी।"

(ट) चंद्रमा के रूप का तारों से एक बार भी वैपरीत्य (कंट्रास्ट) नहीं दिखाया गया है—

"राज समाज बिराजत रूरे, उड़गन यह जनु जुग बिधु पूरे।"

(ठ) भारतीय काव्य का प्रिय विषय है—चंद्रमा का दाग।

"यमाश्रितोहि वक्रोपिचंद्रः सर्वत्र वंद्यते।"

यह विषय रामायण के प्रथम कांड में विकसित हुआ है :—

"प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा, सिय मुख सरिस देखि सुख पावा
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं, सीय बदन सम हिमकर नाहीं।"
जनम सिंधु पुनि बन्धु बिष दिन मलीन सकलंकु,
सिय मुख समता पाहि किम चन्द बापुरो रंकु।
घटइ बढ़इ विरहिन दुखदाई, ग्रसहि राहु निज सन्धिहि पाई।
कोक सोक प्रद पंकज द्रोही, अवगुन बहुत चन्द्रमा तोहीं।"

(ड) तुलसीदास राम के सुंदर हृदय की चंद्रमा के प्रकाश से तुलना करते हैं—

"हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।"

(ढ) सजीवता के आगार के रूप में चंद्रमा समुपस्थित होता है—

"चंद चवइ बरु अनल कन सुधाहोइ विष-तूल।"

(ण) बहुत से भारतीय कवियों के समान तुलसीदास चंद्रमा

का उन रूपों या चित्रों में प्रयोग करते हैं जिनके साथ चंद्र संबंधी अनेक कथाएँ जुड़ी हैं।

भारतीय काव्य में विशेष रूप से काव्यात्मक, और प्रिय, दो पक्षियों, चकोर और चकवा की कथाएँ हैं जो चंद्रमा से जुड़ी हैं।

चकोर चंद्रमा से प्यार करता है, यह चन्द्रमा की किरण पीता हैं, और कभी अंगार (चिनगारी) को भी चंद्रमा की किरण समझ कर खाता है। इसलिए तुलसीदास प्रायः चंद्र-दर्शन पर चकोरी की प्रसन्नता के विषय में कहते हैं, उदाहरणतः—

"छिनु-छिनु पिय बिधु बदन निहारी, प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी।"

(त) इसके विपरीत चंद्रमा चकवा का शत्रु है, क्योंकि कथाओं के अनुसार सन्ध्या के आगमन और चन्द्रोदय के साथ चकवा अपनी मित्र (चकवी) से अलग हो जाता है।

(थ) कथाओं के अनुसार चंद्रमा शुक्ल पक्ष में अमृत से पूर्ण हो जाता है और कृष्ण पक्ष में इसे खो देता है; इसलिए तुलसीदास राम के भाई भरत के कार्यों के संबंध में कहते हैं—

"राम सनेह सुधाकर सारू।"

(द) शोक से युक्त राजा की तुलना अमृत-विहीन चंद्रमा से की गई है:—

"जाइ सुमन्त दीख कस राजा, अमिय रहित जनु चन्द बिराजा।"

(ध) भारतीय कथाओं के अनुसार राहु चंद्रमा को खा जाता है जिससे चंद्रग्रहण होता है। इस कथा की प्रतिध्वनि तुलसीदास के अनेक चित्रों (रूपों) में मिलती है। उदाहरणतः—

"टेढ़ जानि बन्दइ सब काहू, बक्र चन्द्रमहिं ग्रसहि न राहू।"

(न) इस स्वरूप के कतिपय संस्मरण चंद्रमा के प्रकाश, चाँदनी के वैपरीत्य में देखे जाते हैं:—

"चाँदिनि कर कि चन्द-कर चोरी।"

————

तुलसीदास के दार्शनिक विचार

तुलसीदास के दार्शनिक विचारों ने उत्तरी भारत की असंख्य जनता की विचारधारा के निर्माण को प्रभावित किया और वे आज भी प्रभावित कर रहे हैं। इसलिए स्वाभाविक था कि वे (विचार) भारतीय अनुसंधानकर्त्ताओं का उतना ही ध्यान आकृष्ट करते जितना कि योरोपीय विद्वानों का। फिर भी तुलसीदास के दर्शन का अध्ययन शैशवावस्था में है। वर्त्तमान समय तक उनके दर्शन के मौलिक प्रश्नों को निर्णीत नहीं माना जा सकता।

अपनी रामायण के पाठ में तुलसीदास ने अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप में बहुत से दार्शनिक मतों—सांख्य, वेदान्त, योग इत्यादि—का उल्लेख किया है; किन्तु वह इनमें से किसी एक का पूर्ण निश्चय और विश्वास के साथ अनुसरण नहीं करते।

उदाहरणतः तुलसीदास की उक्तियों में से एक, यह सोचने का अवसर देती है कि वह दार्शनिक कपिल द्वारा निर्मित सांख्य को सर्वोच्च मानते हैं :—

"सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रकट बखाना, तत्व विचार निपुन भगवाना।"

उत्तरकांड में तुलसीदास द्वैतवाद के विरोधी के रूप में आते हैं जिस पर सांख्य-दर्शन की नींव है। वहाँ हम पढ़ते हैं—

"द्वैत बुद्धि बिनु क्रोध किम् द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।"

इस प्रकार तुलसीदास अद्वैत के अवलम्बी प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास के अनुसार केवल "दैवी पारमार्थिक सत्ता" की ही सच्ची स्थिति है। तुलसीदास इस पारमार्थिक दैवी सत्ता को विभिन्न नामों से अभिहित करते हैं। वह इसे ब्रह्म (इसे सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा से अलग करना चाहिए), परब्रह्म, सच्चिदानन्द इत्यादि कहते हैं।

सच्चिदानन्द के गुण तुलसीदास द्वारा विशिष्टता से दिखाए गए हैं। इनमें से सभी नकारात्मक विशिष्टताएँ हैं⋯

"अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।"
अकल अनीह अनाम अरूपा, अनुभव गम्य अखंड अनूपा।
मन गोतीत अमल अबिनासी, निर्विकार निरवधि सुखरासी।
सो तें ताहि तोहि नहिं भेदा, बारि बीचि इव गावहिं वेदा।'

रामायण के सात कांडों में प्रत्येक में (इसी प्रकार के) विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणत :—

"ज्ञान गिरा गोतीत अज माया गुन गो पार।
सोइ सच्चिदानन्द घन ⋯⋯⋯⋯⋯⋯।"

राजा जनक दूसरे कांड में कहते हैं :—

"व्यापक ब्रह्म अलख अबिनासी, चिदानन्द निरगुन गुनरासी।
मन समेत जेहि जान न बानी, तरक न सकहिं सकल अनुमानी।
महिमा निगम नेति कहि कहहीं, जो तिहुँकाल एकरस अहहीं।"

तुलसीदास दैवी पारमार्थिक सत्ता का माया या संसार (जिसकी केवल कल्पनात्मक स्थिति है) से वैपरीत्य प्रदर्शन करते हैं—

"जोग बियोग भोग भल मन्दा, हित अनहित मध्यम भ्रमफन्दा।"
जनमु मरनु जहँ लग जग जालू, सम्पति बिपति करम अरु कालू।
धरनि धामु धनु पुरु परिवारू, सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू।
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं, मोह मूल मरमारथ नाहीं।
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

मोह निसा सब सोवनि हारा, देखिय सपन अनेक प्रकारा।"

छठे कांड में राम माया के विषय में निम्नलिखित रूप में कहते हैं:—

"मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानेउ भाई।
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ, बिद्या अपर अविद्या सोऊ।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा, जा बस जीव परा भव कूपा।
एक रचिय जग गुन बस जाके, प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।"

माया की शक्ति असीम है:—

"माया बस कवि कोबिद ज्ञाता"
"हरि माया कर अमित प्रभावा"

"सुत बित लोक ईषना तीनी, केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।
यह सब माया करि परिवारा, प्रबल अमित को बरनइ पारा।
सिव चतुरानन जाहि डराहीं, अपर जीव केहि लेखे माहीं।"

ब्यापि रह्यो संसार महँ, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादिभट, दंभ कपट पाखंड।"

"सो दासी रघुबीर कै, समुझें मिथ्या सोपि।"

"जो माया सब जगहिं नचावा, जासु चरित लखि काहु न पावा।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खग राजा, नाच नटी इव सहित समाजा।"

कल्पनात्मक स्थिति वाली माया का, दैवी पारमार्थिक सत्ता से वैभिन्य-प्रदर्शन तुलसीदास को द्वैतवाद की ओर नहीं ले जाता है। उनके द्वारा दोनों के संबंध की इन शब्दों में व्याख्या की गई है—

"गिरा अरथ जल बीच सम, कहियत भिन्न न भिन्न।"

इस प्रकार दैवी पारमार्थिक सत्ता, और दैवी भ्रांति-माया की कृति, संसार, एक है। फिर भी संसार केवल उसी समय तक

सच्चा प्रतीत होता है जब तक कि हम सच्चिदानंद को समझने में समर्थ नहीं हैं—

"झूठहु सत्य जाहि बिनु जाने, जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाइ हिराई, जागे जथा सपन भ्रम जाई।"

दैवी पारमार्थिक सत्ता जिसे कि तुलसीदास सच्चिदानंद या अगुण कहते हैं और जिसकी वेद 'नेति' (समानता न रखने वाला) शब्द से व्याख्या करते हैं, संसार में (world of being) में अवतार ले सकता है। इस प्रकार सच्चिदानन्द की ओर उन्मुख होते हुए (जिसके प्रतिनिधि राम हैं) देवता कहते हैं—

"तुम सम रूप ब्रह्म अबिनासी, सदा एक रस सहज उदासी।
अकल अगुन अज अनघ अनामय, अजित अमोघ सक्ति करुनामय।
मीन कमठ सूकर नरहरी, बामन परसुराम बपुधरी।
जब जब नाथ सुरन दुख पावा, नाना तनुधरि तुमहि नसावा।"

दैवी पारमार्थिक सत्ता के पूर्ण अवतार भ्राताओं सहित राम और कृष्ण प्रतीत होते हैं—(वैष्णवता के दो अत्यन्त प्रतिष्ठित स्वरूप)।

अपने में स्थित दैवी पारमार्थिक सत्ता, गुणों का त्याग करती हुई, इस प्रकार संसार में अपनी माया से अलग न होकर, सच्ची स्थिति न रखने वाले भासमान संसार (world of being) में प्रकट हो सकती है।

इस प्रकार वह अगुण से सगुण अर्थात् गुण या विशिष्टता धारण करनेवाली हो जाती है। (गति के इस क्षण अर्थात्) अवतरण का मुख्य कारण दुखियों के प्रति प्रेम प्रतीत होता है, यद्यपि दुख की वास्तविक स्थिति नहीं है। अवतार लेती हुई दैवी पारमार्थिक सत्ता अपने में स्थित रहा करती है।

"सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा, गावहि मनि पुरान बुध बेदा।

अगुन अरूप, अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे, जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा, तेइ किम कहिय बिमोह प्रसंगा।
राम सच्चिदानन्द दिनेसा, नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।
सहज प्रकास रूप भगवाना, नहिं तहँ पुनि विज्ञान बिहाना।
हरख बिषाद ज्ञान अज्ञाना, जीव धरम अहमिति अभिमाना।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना, परमानन्द परेस पुराना।
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परावर नाथ।"

शिव के इन शब्दों में, दैवी पारमार्थिक सत्ता के अवतार के रूप में राम का "पुरुष" (विश्व के प्रतिनिधि आदि व्यक्ति) से तादात्म्य है।

राम के विराट् रूप के, जो छठे काण्ड में दिया गया है, विषय में रावण की पत्नी मंदोदरी कहती है:—

"बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु,
लोक कल्पना बेद कर अंग-अग प्रति जासु।"

"पद पाताल सीस अजधामा, अपर लोक अँग-अँग बिस्रामा।
भृकुटि बिलास भयंकर काला, नयन दिवाकर कच घनमाला।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा, निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
स्रवन दिसा दस बेद बखानी, मारुत स्वास निगमनिज बानी।
अधर लोभ जम दसन कराला, माया हास बाहु दिग पाला।
आनन अनल अम्बु पति जीहा, उत्पति पालन प्रलय समीहा।
रोम राजि अष्टादस भारा, अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना, जगमय प्रभु की बहु कल्पना।"
"मनुज बास चर अचर मय रूप राम भगवान।"

ईश्वर की यह सर्ववादी (Pantheistic) भावना, तुलसीदास की अपनी मौलिक कृति नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि ऋग्वेद की दशम पुस्तक (मंडल) में यह वर्तमान है।

एक प्रकार से विश्व के स्वरूप की इस प्रकार की भावना के अत्यन्त निकट उनकी भावना अगस्त्य ऋषि के शब्दों में दी गई है, जो राम की ओर उन्मुख होते हुए कहते हैं—

"ऊमरि तरु बिसाल तव माया, फल ब्रह्मांड अनेक निकाया।
जीव चराचर जंतु समाना, भीतर बसहिं न जानहिं आना।
ते फल भक्षक कठिक कराला, तव भय डरत सदा सोउ काला।
ते तुम्ह सकल लोक पति साईं।"

इस विचार की तुलसीदास द्वारा कई बार पुनरावृत्ति हुई है कि राम देवी पारमार्थिक सत्ता हैं। इसे हम प्रत्येक काण्ड में पाते हैं। विशेष रूप से यह (विचार) प्रथम काण्ड में शिव के शब्दों में मुखरित हुआ है:—

"निज भ्रम नहिं समझहिं अज्ञानी, प्रभु पर मोह धरहिं जड़ ज्ञानी।
जथा गगन घन पटल निहारी, झांपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।
चितव जो लोचन अंगुलि लाए, प्रपेट जुगल ससि तेहि के भाए।"
उमा राम-विषयक अस मोहा, नभ तम घूम धूरि जिमि सोहा।
विषय करन सुर जीव समेता, सकल एक ते एक सचेता।
सब कर परम प्रकासक जोई, राम अनादि अवधपति सोई।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू, मायाधीस ज्ञान गुन धामू।
जासु सत्यता तें जड़ माया, भास सत्य इव मोह सहाया।
रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥
एहि बिधि जग हरि आस्रृत रहई, जदपि असत्य देत दुख अहई।
जौं सपने सिर काटै कोई, बिनु जागे न दूरि दुख होई।
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई, गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।
आदि अंत कोउ जासु न पावा, मति अनुमानि निगम अस गावा।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु करम करै बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी बकता बड़ जोगी।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा, ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी, महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथसुत भगत हित कौसलपति भगवान॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी, रघुबर सब उर अंतरजामी।
राम सो परमातमा भवानी ....।"

जिस प्रकार तुलसीदास की रामायण में राम दैवी पारमार्थिक सत्ता के गुणों के प्रतिनिधि चित्रित किए गए हैं, उसी प्रकार उनकी सीता भ्रान्तिमय संसार बनाने वाली, दैवी माया, रचनात्मिका शक्ति की प्रतिनिधि हैं।

राम के भाई लक्ष्मण, एक सहस्र फन वाले पौराणिक सर्प 'शेष' के रूप में समुपस्थित होते हैं, जिनपर भारतीय मतानुसार दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूपों में से एक रूप हरि या विष्णु (सामान्यता राम से संबंधित) आधारित है। इसके विषय में हम दूसरे कांड में पढ़ते हैं:—

"स्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी,
जो सृजति जगु पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की।
जो सहस सीस अहीसु महिधरु, लषन सचराचर धनी,
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥"
"राम सरुप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥"
"जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे, बिधि हरि संभु नचावनि हारे।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा, अउर तुम्हहिं को जाननि हारा।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहिं-तुम्हहिं होइ जाई।
तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहिं रघुनंदन, जानहिं भगत भगतवर चंदन।
चिदानन्द मय देह तुम्हारी, बिगत बिकार जान अधिकारी।
नरतनु धरेउ संत सुरकाजा, कहहु करहु जस प्राकृत राजा।"

यह प्रस्थापना कि राम और दैवी पारमार्थिक सत्ता का तादात्म्य है, तुलसीदास द्वारा कई बार दुहराई गई है। इस प्रकार प्रथम कांड में वह कहते हैं—

"एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानंद परधामा।
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना, तेहि धर देह चरित कृतनाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी, परम कृपाल प्रनत अनुरागी।
जेहि जन पर ममता अति छोहू, जेहि करुनाकरि कीन्हन कोहू।
गई बहोर गरीब नेवाजू, सरल सबल साहिब रघुराजू।"

तुलसीदास के विचारानुसार दैवी पारमार्थिक सत्ता का अवतार-रूप उसके निर्गुण सूक्ष्म स्वरूप की अपेक्षा कम समझ में आता है:—

"निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन न जानहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होई।"

यद्यपि तुलसीदास प्रायः कहते हैं कि दैवी पारमार्थिक सत्ता, सच्चिदानंद, अपने प्रेम के अधीन भक्तों के लाभ के लिए मायामय संसार में अवतार लेती है, किंतु, चूँकि भासमान संसार की केवल मायामय सत्ता है, तथा असत्, प्रसन्नता, और शोक भ्रान्तिमय रूप हैं, (इसलिए) सच्चिदानन्द मायामय संसार में अवतार लेकर अभिनेता, नट या जादूगर की तरह अपने भ्रान्तिमय खेल से मनोरंजन करता है।

तुलसीदास प्रायः दैवी पारमार्थिक सत्ता के अवतार लेने का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार उदाहरणतः वह कहते हैं—

"प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला।"

या

"कौतुकनिधि कृपालु भगवाना।"

देवताओं सहित समस्त सत्ता, सारा संसार, केवल कठपुतली मात्र है, गाँव की गुड़ियों की तरह:—

"सारद दारु नारि सम स्वामी, राम सूत्रधर अंतर जामी।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी, कवि उर अजिर नचावहिं बानी।"

जिस प्रकार कि नट का सेवक उसके प्रति प्रेम रखता है उसी प्रकार समस्त सत्ता भासमान संसार में रहते हुए सच्चिदानंद या राम के प्रति पुष्ट प्रेम द्वारा उसके खेल को देखने में समर्थ है—

"काल कर्म नहिं ब्यापहिं तेही, रघुपति चरन प्रीति रति जेही।
नट कृत कपट बिकट खगराया, नट सेवकहिं न ब्यापइ माया।"
"हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।"

तुलसीदास के दर्शन के अनुसार आत्मा दैवी-पारमार्थिक सत्ता का अंश है। भासमान संसार में प्रकट होकर यह अंश, शाश्वत अविज्ञात दैवी पारमार्थिक सत्ता से, माया के मरीचिकामय भ्रान्तिमय संसार में वियुक्त हो जाता है—

"ईश्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।
सो माया बस भयउ गोसाईं, बँधेउ कीर मरकट की नाईं।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई, जदपि मृषा छूटत कठिनई।
तब ते जीव भयउ संसारी, छूट न ग्रंथि न होई सुखारी।
स्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई, छूट न अधिक-अधिक अरुझाई।
जीव हृदय तम मोह बिसेखी, ग्रंथि छूटि किमि पाइ न देखी।
अस संजोग ईस जब करई, तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।"

इस प्रकार माया, भ्रान्तिमय संसार, आत्मा को दैवी पारमार्थिक सत्ता से, उसके सच्चे स्रोत से, अलग कर देती है। इसके विषय में तुलसीदास इस प्रकार कहते हैं—

"आगे राम लषनु बने पाछे, तापस बेषु बिराजत काछे।
उभय बीच सिय सोहित कैसी, ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।"

भारतीय दार्शनिक और धार्मिक मतवाद के सभी रचयिताओं के समान, तुलसीदास जन्मान्तरवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। भारतीय विज्ञान जीवों के चौरासी लाख स्वरूपों को मानता

है; और आत्मा, जन्म की लम्बी सीढ़ियों से, स्थिति के एक रूप से दूसरे रूप में जाती हुई, अपने को शाश्वत गति में पाती है—

"आकर चारि लच्छ चौरासी, जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।"
फिरत सदा माया कर प्रेरा, काल कर्म सुभाव गुन घेरा।
कबहुँक करि करुना नर देही, देत ईस बिनु हेतु सनेही।"

दैवी पारमार्थिक सत्ता सभी गुणों से (वंचित) विहीन है। गुण केवल भासमान संसार, माया के संसार के लिए ही स्वाभाविक हैं। इस भासमान संसार की विशिष्टता बताने वाले सबसे अधिक सामान्य गुण सत्व (शुद्ध स्थिति), रज (गति) और तमस् (अंधकार, जड़ता, Inertia) हैं।

ये दूसरे ढंग से संसार के समय या 'युग' का द्योतन करते हैं। अपरिवर्तनीय और शाश्वत क्रम में चार युगों का पारस्परिक अवस्थान है—कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग। इनकी विशिष्टताओं की तुलसीदास इस प्रकार व्याख्या करते हैं—

"कृत जुग होहिं धर्म सब केरे, हृदय राम माया के प्रेरे।
सुद्ध सत्व ममता बिज्ञाना, कृतप्रभाव प्रसन्न मन जाना।
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा, सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।
बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस, द्वापर धर्म हरष भव मानस।
तामस बहुत रजोगुन थोरा, कलि सुभाव बिरोध चहुँ ओरा।"

फलतः सत्वगुण और राजस गुण की कमी और तामस का आधिक्य, दैवी पारमार्थिक सत्ता से, माया के संसार के युग-विभाजन की विशिष्टता बताता है। कलियुग के समय में जिसमें कि अंधकार और जड़ता का तत्व पूर्णतया व्याप्त रहता है, माया के मरोचिकामय संसार के अन्त और नाश का आरम्भ होता है और दैवी पारमार्थिक सत्ता में उसका लय होता है। प्रलय के बाद संसार का फिर से आविर्भाव होता है, और एक

से दूसरे संसार के उक्त समय-विभाजन, अथवा युग का अंतर रहित क्रम चला करता है।

शाश्वत और अपरिवर्तनीय केवल दैवी पारमार्थिक सत्ता अथवा सच्चिदानंद स्थिर रहता है—

"अगुन अखंड अनंत अनादी, जेहि चितवहिं परमारथवादी।
नेति-नेति जेहि बेद निरूपा, चिदानंद निरुपाधि अनूपा।
संभु विरंचि बिष्नु भगवाना, उपजहिं जासु अंत तें नाना।"

इस प्रकार चारों युग में से प्रत्येक युग में सभी जीवधारी, पशु, असुर, सुर और देवताओं में सर्वश्रेठ भी, अपनी दैवी पारमार्थिक सत्ता से अविभक्त, दैवीमाया के बीच आविर्भूत होते हैं। राम इसके विषय में इस प्रकार कहते हैं—

"एहि विधि जीव चराचर जेते, त्रिजग देव नर असुर समेते।
अखिल बिस्व यह मम उपजाया, सब पर मोहि बराबरि दाया।"

आत्मा (जो दैवी पारमार्थिक सत्ता के अंश पर स्थित है) से अलग (भिन्न)शरीर भौतिक तत्वों से निर्मित है। कपिपति बालि को मार कर उसकी पत्नी तारा को सान्त्वना देते हुए राम इस विषय में कहते हैं—

"छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा, जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।"

पुनर्जन्म के नियम के वश में पड़ती हुई और भौतिक स्थिति के एक रूप सें दूसरे रूप में जाती हुई आत्मा कर्म के नियम के अधीन हो जाती है। कर्म प्रत्येक सत्ता के अच्छे-बुरे कार्यों का लेखा-जोखा करता है और हिसाब जोड़कर आगे आने वाली (अगले जन्म की) स्थिति के स्वरूप का निर्णय करता है। कर्म स्वतःसंभवी रूप में (automatic) कार्य करता है :—

"काहु न कोउ सुख दुख कर दाता, निज कृत करम भोग सबु भ्राता।
"कठिन करम गति कछु न बसाई।"

राम की माता कौशल्या, कर्म की भारतीय भावना की कतिपय विशेषताओं के संबंध में कहती हैं—

"कौसल्या कह दोष न काहू, करम बिबस दुख सुख छति लाहू।
कठिन करम गति जानि विधाता, जो सुभ-असुभ सकल फल दाता।
ईस रजाइ सीस सबही के, उतपति तिथि लय बिषहु अमी के।"

सारे विश्व में कर्म का कठोर नियम कार्य करता है। दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में राम, आत्मा को अच्छाई और निस्वार्थता के प्रवाह में, अपनी ओर उन्मुख करते हैं। इस प्रकार बृहस्पति इन्द्र से कहते हैं—

"जद्यपि सम नहि राग न रोखू, गहहिं न पापु पुन्य गुन दोषू।
करम प्रधान बिस्व करि राखा, जो जसि करइ तो तस फल चाखा।
तदपि करइ सम बिषम बिहारा, भगत अभगत हृदय अनुसारा।
अगुन अलेप अमान एक रस, राम सगुन भए भगत प्रेम बस।"

दैवी पारमार्थिक सत्ता का अंश आत्मा, माया के मरीचिकामय संसार में रहती हुई, जन्म, कर्म, काल और स्वभाव के अधीन हो जाती है। अपनी सजीव स्थिति (Living existence) के कार्यों से, यह अपने को दैवी पारमार्थिक सत्ता की सहायता के बिना मुक्त नहीं कर सकती जो (दैवी सत्ता) उस समय भासमान संसार में प्रकट होती है जब अंधकार और असत् दूसरे तत्त्वों के आविर्भाव को पराभूत कर देते हैं:—

"जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़ें असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीत जाइ नहि बरनी, सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।"

दैवी सत्ता का माया के संसार में अवतार, जीवों को संसार से बाहर ले जाने वाले और दैवी पारमार्थिक सत्ता से मुक्त कराने वाले मार्गों में से एक पर स्थित करने में सहायता देता है। दो रास्ते हैं।

वैयक्तिक आत्मा को दैवी पारमार्थिक सत्ता से मिलाने वाला पहला रास्ता 'ज्ञानमार्ग' है। दूसरा रास्ता 'भक्ति मार्ग' है – अर्थात् सभी जीवों के प्रति और स्वयं दैवी पारमार्थिक सत्ता के प्रति पूर्ण प्रेम।

ज्ञान, संसार की अप्रकाशित रात्रि अर्थात् भासमान संसार (world of being) को प्रकाशित करता है—

"इह जग जामिन जागहिं जोगी, परमारथी प्रपंच बियोगी।
जानिय तबहिं जीव जग जागा, जब सब बिषय बिलास बिरागा।
होइ बिवेक मोह भ्रम भागा, तब रघुनाथ चरन अनुरागा।
सखा परम परमारथ एहू, मन क्रम बचन राम पद नेहू।"

पूर्णज्ञान तो केवल राम (जानकी के पति) में है क्योंकि वह दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में प्रकट होते हैं :—

"ज्ञान अखंड एक सीतावर, माया बस्य जीव सचराचर।"

ज्ञान के अन्तर्गत तुलसीदास संसार और ब्रह्म अर्थात् दैवी पारमार्थिक सत्ता के पूर्णैक्य की चेतना और फलतः प्राप्त होने वाली पूर्ण निर्भीकता का उल्लेख करते हैं :—

"ज्ञान मान जहँ एको नाहीं, देख ब्रह्म समान सब माहीं।"

इस प्रकार का ज्ञान केवल अत्यन्त कठिनता से ही प्राप्त होता है—

"कहहिं संत मुनि बेद पुराना, नहिं कछु दुरलभ ज्ञान समाना।"

"कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय ज्यों, पुनि प्रत्यूह अनेक॥
ज्ञान पंथ कृपान कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा।
ज्यों निर्बिघ्न पन्थ निबंहई, सो कैवल्य परमपद लहई।

सच्चा ज्ञान मायारचित भासमान संसार के प्रतिपूर्ण निर्भीकता और उदासीनता की संभावना प्रस्तुत करता है:—

जनम मरन सब दुख सुख भोगा, हानि लाभ प्रिय मिलन बियोगा।

काल करम बस होइ गुसाईं, बरबस राति दिवस की नाईं।
सुख हरखहिं जड़ दुख बिलखाहीं, दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं।

उदासीनता इस चेतना से विकसित होती है कि भासमान संसार मरीचिकामात्र है, दैवी माया का खेल है, जिसमें सभी जीव कठपुतली हैं और राम केवल नट हैं—

"सोउ जाने कर फल यह लीला, कहहिं महा मुनिबर दम सीला।"

ज्ञान मार्ग द्वारा दैवी पारमार्थिक सत्ता से ऐक्य भारतीय दर्शन और धर्म का अत्यंत प्राचीन सिद्धान्त है। यह उपनिषदों में भी निदर्शित है।

मध्य युग में पुनर्जन्म के संसार से बाहर ले जानेवाले मार्ग का अध्ययन समुपस्थित हुआ। पूर्ण प्रेम का यह मार्ग, भक्तिमार्ग है। यह मार्ग पूर्णतया सर्वसम्पन्न (Perfect) है जो सारे संसार को जीवित रखता है—

"सत हरि भजन जगतु सब सपना।"

तुलसीदास के मतानुसार भक्तिमार्ग निश्चयरूप से राम से मिलानेवाला है:—

"सुनु खगेस हरि भगत बिहाई, जे सुख चाहहिं आन उपाई।
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी, पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।"

ज्ञानमार्ग, उच्चवर्णों का, विशेषतया ब्राह्मणत्व का परम्परा प्राप्त मार्ग है, निम्नवर्णों के लिए यह अप्राप्य माना जाता है। भक्ति मार्ग में न कोई नीच है और न ऊँच। इस मार्ग में कीट और विश्व के रचयिता, ब्रह्मा या विरंचि समान हैं और दया के पात्र हैं—

"भगति हीन बिरंचि किन होई"

तुलसीदास के दृष्टिकोण से भक्ति-विहीन ज्ञान, राम अर्थात् दैवी पारमार्थिक सत्ता से मिलाने के लिए पर्याप्त नहीं है। राम कहते हैं:—

"ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका, साधन कठिन न मन कहुँ टेका।
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ, भगति हीन मोहिं प्रिय नहिं सोऊ।
भगति स्वतन्त्र सकल सुख खानी, बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।"

तुलसीदास की भावना के अनुसार, ज्ञान, भक्ति मार्ग का एक पड़ाव है जो (भक्ति) राम की कृपा या प्रसाद से प्राप्त होता है:—

"राम कृपा बिनु सुनु खगराईं, जानि न जाइ राम प्रभुताईं।
जाने बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीत होइ नहिं प्रीती।
प्रीत बिना नहिं भगति दृढ़ाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई।"

भक्ति मार्ग सभी—ऊँच नीच—के लिए खुला है। इसमें सभी बराबर हैं और केवल यही एक निश्चित मार्ग है जो संसार से बाहर ले जाता है—

"राम भगति सोई मुक्ति गुसाईं, मन इच्छित आवइ बरियाईं।
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई, कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।
तथा मोच्छ सुख सुनु खग राई, रहि न सकइ हरि भगत बिहाई।
सब कर फल हरि भगति सुहाई, सोउ बिनु संत न काहू पाई।"

यद्यपि तुलसीदास नैतिक विंदु से चलते हुए विशिष्टता से सत् और असत् के विषय में कहते हैं, फिर भी वह स्वीकार करते हैं कि दार्शनिक दृष्टिकोण से इनका भेद गौण है, और दूसरा (असत्) भी स्वयं सृष्टि-कर्त्ता द्वारा निर्मित है जिसके समक्ष न सत् है और न असत्—

"भलेउ पोच सब बिधि उपजाये, गनि गुन दोष बेद बिलगाए।
कहहिं बेद इतिहास पुराना, बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।
निगम अगम गुन दोष बिभागा।"

तुलसीदास द्वारा इस विचार की कई बार पुनरावृत्ति हुई है। इस प्रकार उदाहरणतः वह इसके विषय में चित्रात्मक ढंग से द्वितीय कांड में कहते हैं:—

"सगुनु षीर अवगुन जलु ताता, मिलइ रचइ परपंच विधाता ।"

भारतीय कथाएँ विवेकशील हंस पर ऐसी ही सजीव विचारणाओं का आरोप करती हैं जो उसे दूध को पानी से अलग करने में और दूध पीकर पानी को छोड़ देने में सक्षम बनाती हैं।

फिर भी तुलसीदास के दृष्टिकोण से सत् और असत् का भेद तात्विक नहीं है। यह, उच्चतर विचार एक ही मूल या स्रोत (से उद्भूत होने) वाले सत् और असत् के ऐक्य को धूमिल बनाता या छिपाता है :—

"जड़ चेतन जग जीव जल सकल राम मय जानि।
बंदौं सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व।
बंदौं किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व।"

....

"सिया राम मय सब जग जानी।"

इस प्रकार सत् और असत् की समस्या में तुलसीदास अद्वैत का अनुसरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

तुलसीदास के दार्शनिक विचारों की जड़ें अत्यन्त प्राचीन अतीत में (स्थित) हैं। ये कतिपय उक्त विचार तुलसीदास को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए जिनका प्रथम स्थिर रूप ऋग्वेद में है। उनके दार्शनिक विचार उपनिषद् के दर्शन से संबद्ध हैं। वे कट्टर भारतीय मतवाद की अपेक्षा, वेदान्त के दर्शन के अत्यन्त सन्निकट हैं।

तुलसीदास ने इस संबंध में रामानंद द्वारा निर्धारित दिशा का अनुगमन करते हुए भी नवीन दार्शनिक विचारों और उनके संशोधित रूपों को लिया, जो मध्ययुगीन वैष्णवता के जनात्मक विकास की दिशा में संचालित थे।

तुलसीदास रामानंद के उन शिष्यों और अनुवर्तियों से बहुत

दूर थे जो दर्शन और धर्म के क्षेत्र में नए 'पंथों' के सृजन की चेष्टा कर रहे थे।

इन असंख्य 'पंथों' और शाखाओं से अलग हटते हुए, जिनसे कि मध्ययुग में भारतीय जनता या समाज की अनिवार्य समीकरण की शक्ति शीर्ण हो गई थी, तुलसीदास कट्टर दार्शनिक मतवाद के विचारों के चौखटे में रहने की चेष्टा करते हैं।

गंभीर दार्शनिक विचारों की सरल व्याख्या, और उनकी उच्च (कोटि को) चित्रात्मकता ने, मार्मिक भावातिरेक के मेल से, इन विचारों के व्यापक प्रसार में सहायता दी। इन कारणों से इन विचारों ने, शताब्दियों के सत् प्रवाह के बीच, उत्तरी भारत की करोड़ाधिक जनता की विचारधारा के निर्माण पर प्रभाव डाला।

—·—·—·—

तुलसीदास के धार्मिक विचार

भारतीय दार्शनिक मतवाद के मूलभूत विचारों की तरह तुलसीदास के दार्शनिक विचार धार्मिक विचारों से संबद्ध हैं। उनका तथा दूसरे विचार-तंत्रों का पृथक्करण अत्यन्त कठिनाई से साध्य है, और वह भी सापेक्ष्य (conditional) होगा।

तुलसीदास के धार्मिक दृष्टिकोण की विशिष्टता उसकी अत्यधिक जटिलता प्रदर्शित करती है। उनका देव-मंडल (Pantheon) अपनी समृद्धि और अनेकरूपता से आश्चर्यान्वित करता है। यह सच्चिदानंद, हरि, ब्रह्म, परब्रह्म, राम इत्यादि का नामधारण करने वाले सर्वोच्च देवत्व—दैवी पारमार्थिक सत्ता—की एकता के अधीन है। तुलसीदास के धार्मिक विचार वैष्णवता के कट्टर मतवाद से विरत नहीं होते और न उसके उस स्वरूप से अलग हटते हैं जिसमें वह सोलहवीं-सत्रहवीं शती में समुपस्थित हुआ।

तुलसीदास की धार्मिक भावना और लोक-प्रिय भारतीय धार्मिक मतवादों की सबसे बड़ी विशेषता अहिंसा 'हिंसा न करने' के सिद्धांत की स्वीकृति है। इस कारण तुलसीदास अपने देव-मंडल के विधान से एक कोटि के देवताओं को नहीं हटाते जो उस समय से स्वतंत्र (अस्तित्व रखते) हैं जब से कि वह भारतीय देव-मंडल में प्रकट हुए। यह उनके कट्टर मतवाद के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि बहुत से प्राचीन देवता, उच्चवर्णों की दृष्टि में

उच्च सम्मान के अधिकारी रहें, और इस सम्मान को जनात्मक वर्णों के बीच और विशेषतया ग्रामीण जनता और स्त्रियों के बीच अक्षुण्ण रखें।

यदि दानवों (असुर, राक्षस, दानव, दनुज, निशिचर, रजनीचर) के विस्तृत क्षेत्र को छोड़ दिया जाय, यदि अर्ध-देवताओं (गंधर्व, किन्नर) के क्षेत्र को, असंख्य पौराणिक नायकों को, जो तुलसीदास के चित्रण के अनुसार देवताओं से भी अधिक शक्तिशाली हैं, और इसी प्रकार पूर्ण स्थितिवाली विभिन्न जातियों (सिद्ध, साधक) को, जिन्होंने बड़ी साधना द्वारा असामान्य शक्ति और पूर्णता प्राप्त की, छोड़ दिया जाय, तो तुलसीदास द्वारा अपने काव्य में चित्रित देव-मंडल में देवताओं की तीन विशिष्ट कोटियों का निर्धारण संभव है, जो विभिन्न मात्रा में सम्मान प्राप्त करते हैं। यथा—

१—वैदिक देव-मंडल के देवता।

२—ब्राह्मण-काल के देवता।

३—हिंदुत्व के सर्वोच्च देवत्व की एकता।

तुलसीदास के धार्मिक चित्रण के अनुसार मौलिक स्थिति केवल उस सत्, एक परमोच्च सार-तत्व, शाश्वत, दैवी पारमार्थिक सत्ता सच्चिदानंद राम इत्यादि की है। दो प्रथम कोटियाँ अर्थात् असंख्य वैदिक देवता और ब्राह्मणकाल के विशिष्ट त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपनी स्थिति के विभिन्न स्वरूपों में संसार के अनुरूप, अर्थात् माया के भासमान संसार में, प्रकट होते हैं।

इस प्रकार तुलसीदास के काव्य में चित्रित देव-मंडल के उदाहरण में, विभिन्न भारतीय मतवादों द्वारा निर्मित मार्ग बहुदेव-वाद से एकदेववाद की ओर (उन्मुख है) और प्रायः सर्ववाद से अत्यन्त संपृक्त है।

१—वैदिक देव-मंडल के देवता। तुलसीदास के देव-मंडल में वैदिक देवता अपनी स्थिति बनाए हुए हैं। केवल उनमें से कुछ का अपना व्यक्तिगत स्वरूप है। इस प्रकार के देवता, वैदिक, आकाशवासी देवताओं का शासक इन्द्र, आग का देवता यज्ञ को स्वीकार करता हुआ अग्नि, पाताल लोक का स्वामी यम, सूर्य और सरस्वती (शर्वाणी, गिरा इत्यादि) वाणी, कला और विज्ञान की अधिष्ठात्री हैं।

इन कतिपय शक्तिशाली आकाशवासी वैदिक देवताओं में से केवल सरस्वती तुलसीदास (के काव्य) में अपना उच्च नैतिक स्वरूप सुरक्षित रखती है और प्रत्येक अच्छे कार्य के आरम्भ में उसकी ओर समानरूप से 'विघ्नों का निवारण करने वाले' गणेश की ओर (लोग) उन्मुख होते हैं।

शेष शक्तिशाली वैदिक देवता सामान्यतया अत्यन्त धूमिलरूप में बहुत सी गौण विशेषताएँ रखते हुए समुपस्थित होते हैं। उदाहरणतः अग्नि—

"होम समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र भेष धरि वेद सब, कहि बिबाह-बिधि देहिं।"

इसी प्रकार सूर्य का सामान्य उल्लेख है—

"भरे भुवन घोर कठोर रव, रवि बाजि तजि मारगु चले"

ऋग्वेद का देवताओं का शासक इन्द्र यद्यपि देवताओं का स्वामी 'अमरों का शासक' इत्यादि से अभिहित किया जाता रहा है, फिर भी वह दयनीय मूर्ति में बदल गया है और घृणापूर्वक उल्लेख के योग्य है। उदाहरणतः हम उसके विषय में द्वितीय कांड में पढ़ते हैं—

"देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत।"

"कपट कुचाल सींव सुरराजू, पर अकाज प्रिय आपन काजू।
काक समान पाक रिपु प्रीती, छली मलीन कतहुं न प्रतीती।"

वैदिक देवताओं के बड़े समूह को छोड़कर छोटे देवताओं की भीड़ सामने आती है।

पृथ्वी पर जो कुछ होता है वे उसे आकाश से देखते हैं। जब पृथ्वी पर कोई महत्वपूर्ण घटना होती है, तो उसमें योग देते हैं, और बिना विचलित हुए देखते हैं, भोग करते हैं, नाचते हैं और 'फूलों की वर्षा' करते हैं।

इस प्रकार का उल्लेख काव्य में हमें बहुतायत से मिलता है। उदाहरणतः हम प्रथम कांड में पढ़ते हैं—

"सुमन बरषि सुर हनहिं निषाना, नाक नटी नाचहिं करि गाना।"

अथवा,

"देवन दीन्हीं दुन्दुभी प्रभु पर बरषे फूल"

"होइ सगुन बरषै सुमन, सुर दुन्दभी बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ।"

इसी से मिलता-जुलता चित्र हमें दूसरे कांड में मिलता है—

"साधु सराहि सुमन सुर बरषे।"

पाँचवें कांड में हम प्रायः पढ़ते हैं—

"कौतुक देखि सुमन बहु बरषे, नभ तें भवन चले सुर हरष।"

इसी प्रकार छठे कांड में जहाँ कि राम और रावण की लड़ाई का वर्णन है—

"सुर ब्रह्मादि सिद्धि मुनि नाना, देखत रन नभ चढ़े बिमाना।"

जब राम ने महान राक्षस कुम्भकर्ण को पराजित किया:—

"सुर दुन्दुभी बजावहिं हरषहिं अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं
कै बिनती सुर सकल सिधाए।"

इसी प्रकार का चित्र हमें अंतिम काण्ड में मिलता है। उदाहरणतः—

"नभ दुन्दुभी बाजहिं बिपुल गन्धर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछराबृन्द परमानन्द सुख मुनि पावहीं।"

कवि के समान ही काव्य के भिन्न पात्र भी आकाशवासी देवताओं को उनके अरोचक रूप में चित्रत करते हैं।

इस प्रकार दूसरे कांड में, राम के राज्याभिषेक की तैय्यारियों का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं (टिप्पणी करते हैं) कि स्वार्थी देवताओं की कुटिलता के फलस्वरूप यह न सम्पन्न हो सका।

राजधानी की समस्त जनता आनन्द मना रही है:—

"सकल कहहिं कब होइहिं काली, बिघन मनावहिं देव कुचाली।
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा, चोरहिं चाँदिनि राति न भावा।"

आकाशवासी देवता बुद्धिमती देवी सरस्वती की ओर यह प्रार्थना लेकर उन्मुख होते हैं कि राम का राज्याभिषेक न हो सके—

'बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी, बोली सुर स्वारथ जड़ जानी।"
"चली बिचारि बिबुध मति पोची"
"ऊँच निवासु नीच करतूती, देखि न सकहिं पराइ बिभूती।"

वैदिक देवता सामान्यतया कायर के रूप में चित्रित किए गए हैं, जब रावण ने अपनी शक्ति प्रदर्शित की:—

"डरे सकल सुर चले पराई"

देवता अपने विषय में राम से कहते हैं—

"हम देवता परम अधिकारी, स्वारथ रत तव भगति बिसारी।"
"भव प्रवाह सन्तत हम परे"

२—ब्राह्मणत्व के युग के देवता:—वैदिक आकाशवासी देवताओं से कहीं अधिक ऊँचे, ब्राह्मणत्व द्वारा वैदिक युग के बाद निर्मित त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश—काव्य में चित्रित किए गए हैं।

इनमें से स्रष्टा ब्रह्मा (जिसे ब्रह्म या परब्रह्म अथवा दैवी

पारमार्थिक सत्ता से अलग समझना चाहिए) त्रिदेव का अत्यन्त शिथिल सदस्य है। विष्णु या हरि अधिक कान्तियुक्त रूप में आते हैं। प्रायः हरि के नाम से स्वयं राम या दैवी पारमार्थिक सत्ता का बोध होता है। त्रिदेव के सदस्यों में शिव सबसे प्रमुख हैं।

दो सबसे अधिक शक्तिशाली और असंख्य कट्टर धार्मिक समुदाय -वैष्णव और शैव–में अनिवार्यरूप से सामंजस्य की राजनीतिक भावना से परिचालित होकर, तुलसीदास प्रायः शिव को सर्वोच्च देवता के रूप में चित्रित करते हैं, जिसका सम्मान राम के प्रेमपूर्ण हृदय को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। अंतिम कांड में ब्राह्मण अपने शिष्य की ओर उन्मुख होते हुए कहता है:—

"सिव सेवा कै सुन फल सोई, अविरल भगति राम पद होई।
रामहिं भजहिं तात सिव धाता, नर पांवर कै केतिक बाता।"

चूँकि शिव का सम्मान इस प्रकार राम के सम्मान का एक उपाय प्रतीत होता है, शिव को प्रायः स्वयं दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में ही चित्रित किया गया है:—

"नमामीशमीशान निर्वाण रूपम्, विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं, चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं, गिराज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कपालं, गुणागार संसार पारं नतोऽहं।
"प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि"
"प्रचंडं प्रकष्टं प्रगल्भं परेशम्, अखंडं अजं भानु कोटि प्रकाशम्।
"कलातीत कल्याण कल्पांत कारी, सदा सज्जदानन्ददाता पुरारी।
चिदानन्द सन्दोह मोहापकारी"

शिव के प्रशंसित होने पर भी वह त्रिदेव के दूसरे सदस्यों के समान केवल राम के अर्थात् दैवी पारमार्थिक सत्ता के एक प्रकट-रूप मात्र रहते हैं। ब्रह्मा आरंभिक सृजनात्मक शक्ति माने

जाते हैं। विष्णु संरक्षक और शिव परब्रह्म या राम के नाशकारी स्वरूप हैं।

३—हिंदुत्व के सर्वोच्च देवत्व की एकता। इस रूप में एकमात्र सच्चे देवत्व से अवतार लेते हुए राम, दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में प्रकट होते हैं जो प्रायः रघुवीर, रघुनंदन या रघुनाथ इत्यादि का नाम धारण करते हैं—

"सोइ सच्चिदानन्द घन रामा, अज विज्ञान रूप गुन धामा।
ब्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता, अखिल अमोघ सत्य भगवन्ता।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता, सब दरसी अनवद्य अजीता।
निर्मल निराकार निर्मोहा, नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी, ब्रह्म निरीह बिरुज अबिनासी।"

"भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तन भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनेक भेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होइ न सोइ॥"

"असि रघुपति लीला उरगारी, दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।"

इसके फलस्वरूप राम मनुष्य के रूप में अवतार लेकर प्रत्येक स्थिति में कला-कुशल अभिनेता के समान कार्य करते हैं (और) आदर्श पुत्र, भाई, पति, मित्र, राजा इत्यादि के रूप में समुपस्थित होते हैं, विशेषरूप से वह मनुष्य के शिशुरूप में प्रकट होते हैं। सर्वोच्च देवत्व के चित्रण में ऐसी घनिष्टता (प्रेम) जैसा कि हिंदू बालक राम और कृष्ण के बालरूप के प्रति प्रकट करते हैं, न तो किसी भी भोली-भाली जाति में और न उच्चतम विकसित धार्मिक मतवाद में प्राप्य है।

देवताओं की सभी कोटियों (सुर, दैव इत्यादि) के वैपरीत्य में जो अपने में मौलिक सत् और प्रकाश के स्रोत को चित्रित करते हैं, तुलसीदास के काव्य में अनन्त असंख्य दानव (असुर,-

निशिचर, रजनीचर, दानव, दनुज इत्यादि) हैं जो असत् अंधकार के स्रोत-रूप में प्रकट होते हुए समुपस्थित होते हैं।

दैवी पारमार्थिक सत्ता-स्वरूप राम के चारों ओर सभी देवता और दानव उनकी माया द्वारा विरचित केवल भ्रांतिमय संसार में कार्य करते हैं।

सत् और असत् (के स्रोत) का संघर्ष, प्रकाश और अंधकार का संघर्ष, माया के तीन मूल गुणों--सत्व, रजस्, और तमस्—की शक्ति के सम्मिश्रण के अनुपात-परिवर्तन के फलस्वरूप प्रकट होता हुआ, भ्रांतिमय क्रीड़ा के आधेय (वस्तुविषय) को धारण किए रहता है, जिसमें सभी, भासमान संसार में जो (संसार) केवल हमारी कल्पना और ज्ञान का विषय है, बढ़ते हुए चित्रित किए गए हैं।

राम या दैवी पारमार्थिक सत्ता के दूसरे स्वरूप भ्रांतिमय संसार में उस समय अवतार लेते हैं जब अंधकार और असत् का स्रोत प्रकाश और सत् के स्रोत को पराजित कर देता है। इस समय सभी देवता शक्तिहीन दिखाई पड़ते हैं। अंधकार की शक्ति का शासक रावण सभी जीवों को पराजित करता है। ब्रह्मा और शिव के नायकत्व में सभी देवता प्रार्थना करते हैं और दैवी पारमार्थिक सत्ता, सूर्यवंश के राजकुमार राम के रूप में अवतार लेती है। केवल एक वही (राम) अंधकार की आत्मा के राजा, रावण के विरुद्ध, खड़े हो सकते हैं और प्रकाश को, सत् के स्रोत को, देवताओं को, और लोगों को, विजय प्राप्त कराते हुए घोर युद्ध के पश्चात् रावण को हराते हैं।

तुलसीदास में चित्रित और वैष्णवों द्वारा स्वीकृत देवत्व के प्रति (अभिहित) सभी संबंधों का केवल एक सामान्य उद्देश्य है शारीरिक तथा आध्यात्मिक दुख से मुक्ति; फिर भी मुक्ति के विभिन्न स्वरूप हो सकते हैं। सबसे साधारण रूप है—पीड़ा से सुरक्षा जो कि आरम्भ से ही अनिवार्य रूप माया के संसार

और जीवन की विभिन्न सामयिक भोग-विलास की वस्तुओं से बँधी है। उच्चतर आनंद, एक या दूसरे स्वर्ग में पुनर्जन्म से मुक्ति में है। मुक्ति का पूर्णतम स्वरूप वह है जो केवल तुलसीदास के ही दृष्टिकोण से नहीं, वरन् सामान्य हिंदुत्व की दृष्टि से पूर्ण माना जाता है—मायाकृत भासमान संसार से पूर्ण विदा, जन्म, कर्म, काल, गुण की क्रिया-कलाप से विदा, भ्रांतिमय वैयक्तिक स्थिति से विराम और आत्मा का अपने आदि स्रोत, दैवी पारमार्थिक सत्ता की ओर लौटना और उससे पूर्ण मिलन जिसकी न कोई पहचान (भेद) है और न जिसमें कोई गुण है।

देवताओं और दानवों की विभिन्न कोटियों के अतिरिक्त, तुलसीदास अपने काव्य में दो सौ के करीब नायकों का उल्लेख करते हैं जो प्रकाश और अन्धकार के स्रोत का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन नायकों में से प्रत्येक के साथ कम या अधिक महत्व की बहुत सी कथाएँ जुड़ी हैं, किंतु उनके सर्वविदित होने के कारण तुलसीदास उनमें से केवल थोड़ी कथाओं का उल्लेख करते हैं।

दैवी पारमार्थिक सत्ता के रूप में चित्रित राम के अतिरिक्त, देवता, दानव, नायक, लोग, सभी, जिनका 'मूल' है अथवा जो 'भावना या ज्ञान' रखते हैं, जीवन के चौरासी लाख मात्रा या योनि को धारण करते हुए पुनर्जन्म के सोपान पर अप्रतिहत गति के बीच पड़े हुए हैं। मनुष्य, स्थिति के (अनेक रूपों के बीच) सर्वोच्च रूप (के विकास) का प्रतिनिधित्व करता है। मानवस्वरूप का अस्तित्व ही सर्वोच्च देवत्व है। वैष्णव दर्शन का अनुसरण करते हुए तुलसीदास इस विचार की प्रायः पुनरावृत्ति करते हैं। उदाहरणतः—

"नर तन सम नहिं कौनिउ देही, जीव चराचर जाचत जेही।
नरक सर्ग अपवर्ग नसेनी, ज्ञान बिराग भगत सुखदेनी।"

अन्तिम कांड में भी तुलसीदास कहते हैं:—

"बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रंथनि गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा, पाइ न जेहि परलोक सँवारा।

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहिं करमहिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ।।"

भ्रांतिमय भासमान संसार में पड़ी हुई आत्मा के विषय में तुलसीदास राम की ओर से कहते हैं—

"फिरत सदा माया कर प्रेरा, काल कर्म स्वभाव गुन घेरा।
कबहुँक करि करुना नर देही, देत ईस बिनु हेतु सनेही।
नरतनु भववारिधि कहुँ बेरो, सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।"

———

तुलसीदास के सामाजिक एवं नैतिक कथन

अपनी सामाजिक एवं नैतिक उक्तियों में तुलसीदास कट्टर विश्वास का समर्थन करते हैं। सामाजिक समानता (बराबरी) का सिद्धान्त उनके द्वारा केवल उच्चतर पक्ष में ही स्वीकृत हुआ है। राम के सामने न कोई नीच है और न ऊँचा है। तुलसीदास वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध नहीं हैं और (वह) चार वर्णों के सिद्धान्त का समर्थन भी करते हैं।

रावण पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त स्थापित राम के आदर्श राज्य में वर्ण सुरक्षित हैं :—

"बरनाश्रम निज-निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग।"

विशेषतया, काव्य में उनकी ऊँची स्थिति के फलस्वरूप, प्रायः ब्राह्मणों (द्विज) के प्रति सम्मान की अनिवार्यता पर आग्रह दिखाया गया है। राम के मुख से निम्नलिखित शब्द कहलाए गए हैं :—

"पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा, मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा, जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा"

शिव के प्रामाणिक वचनों से काव्य के निम्नलिखित शब्द गौरवान्वित हैं : —

"अब जनि करहिं बिप्र अपमाना, जानेसु संत अनंत समाना।"

विशेषतया ब्राह्मणों के प्रति जिन्होंने कि प्राचीन समय में भूदेव

की उपाधि ग्रहण की, सम्मान की अनिवार्यता प्रशंसनीय ढंग से प्रायः प्रदर्शित की गई है। उदाहरणत :—

"दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हें, दान मान परिपूरन कीन्हें।
चरन सरोज धूरि धरि सीसा, मुदित महीपति पाइ असीसा।"

ब्राह्मण, विशेषतया राज-पुरोहित, राम के पिता दशरथ के राज्य में निर्णयात्मक शक्ति के रूप में चित्रित किए गए हैं। राम को युवराज बनाने की बात सोच कर अर्थात् अपने जीवन में उनको राज्य देने के लिए—राजा दशरथ स्वयं नहीं निर्णय कर सकते। उनके कार्य के लिए ब्राह्मण वशिष्ठ का समर्थन आवश्यक है। राजा नम्रतापूर्वक उनसे अपनी इच्छा प्रकट करता है:—

"सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी, बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।
नाथ रामु करियहि जुवराजू, कहिय कृपाकरि करिय समाजू।"

स्पष्टतया समकालीन वैष्णवता की जनात्मक प्रवृत्तियों को समर्पण करते हुए भी तुलसीदास ने परम्परागत कट्टर या रूढ़ स्थिति के समानान्तर (ऐसे) सामाजिक विचारों की भी अभिव्यक्ति की है जो उसके बिलकुल विपरीत हैं। वह बार-बार इंगित करते हैं कि राम अपने निकट उन लोगों को भी लाते हैं जो अत्यन्त निम्न वर्ण और जाति के चित्रित किए गए हैं और उनको अपना अभिन्न मित्र बना लेते हैं। स्वयं राम जंगली जाति, जो अशुद्ध मानी जाती है, के राजा गुह से कहते हैं—

"तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता, सदा रहेउ पुर आवत जाता।"

तुलसीदास निम्नलिखित शब्दों में भरत के गुह से मिलन का वर्णन करते हैं :—

"लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा, जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।"

कट्टर हिंदुत्व की दृष्टि से जंगल में नीच जाति के कोल-

किरात आदि के बीच, राम के जीवन का चित्रण करते हुए तुलसीदास कहते हैं :—

"बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बैन।"

"रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेउ जो जाननि हारा।"

यह विचार कि राम केवल प्रेम द्वारा निर्मित संबंध को ही स्वीकार करते हैं और जाति तथा उच्च जन्म के भेद को नहीं मानते, तुलसीदास द्वारा बहुत वार दुहराया गया है। राम कहते हैं :—

"मानउँ एक भगति कर नाता।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई, धन वल परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा, बिनु जल वारिद देखिय जैसा।"

इस प्रकार तुलसीदास के सामाजिक दृष्टिकोण में स्पष्ट विरोध या विषमता है।

संभवतः उनकी कट्टर परम्परागत उक्तियाँ, उन ब्राह्मणों द्वारा बाद की जोड़ी हुई प्रतीत होती हैं, जो निस्संदेह तुलसीदास की प्रभुता और लोकप्रियता के सहारे अपने को ऊँचा उठाने की चेष्टा कर रहे थे।

तुलसीदास के चित्रण के अनुसार समाज का निर्माण जीवित शरीर के अंग की तरह होना चाहिए। इसके सिर (प्रधान या मुखिया) को एक प्रकार से सभी की चिन्ता रखनी चाहिए।

दूसरे कांड में तुलसीदास राम के मुख से कहते हैं :—

"मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान कहँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।"

तुलसीदास विशेष रूप से सतसंग को सर्वोच्च स्थान देते हैं—

"मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ, लोकहु बेद न आन उपाऊ।"

"भगति सुतंत्र सकल सुख खानी, बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।
पुन्यपुंज बिनु मिलइं न संता, सत संगति संसृति कर अंता।"

सर्वोच्च नैतिक आदर्श (निकट रहने वालों की) सेवा है:—

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई।
निरनय सकल पुरान बेद कर, कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।"
नर सरीर धरि जे पर-पीरा, करहिं ते सहहिं महा भवभीरा।

तुलसीदास अपने समय में लक्षित परिवार की विच्छिन्नता की भर्त्सना करते हैं और उसे पिता और पति के अधिकार (के आधार) पर दृढ़ करने के लिए प्रत्येक प्रकार से लड़ते हैं:—

"पितु आयसु सब धरमक टीका"
"धन्य जनम जगतीतल तासू, पितहिं प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके, प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।"

तुलसीदास स्त्री के कर्तव्यों के विषय में निश्चयात्मकता के साथ कहते हैं—

"नारि धरम पति देव न दूजा"

यहाँ पर वह स्त्री के कर्तव्यों के विषय में उन विचारों की पुनरावृत्त करते हैं जो भारत में अत्यन्त प्राचीन काल में स्थित थे। इस प्रकार अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया राम की पत्नी सीता से कहती हैं:—

"मातु पिता भ्राता हितकारी, मित प्रद सब सुनु राज कुमारी।
अमितदानि भर्त्ता बैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही।
धीरजु धरम मित्र अरु नारी, आपद काल परखियहि चारी।
बृद्ध रोग बस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धरम एक ब्रत नेमा, काय बचन मन पति पद प्रेमा।"

तुलसीदास ने स्त्रियों के स्वभाव के संबंध में परम्परागत भारतीय दृष्टिकोण अतीत से प्राप्त किया—

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी।

तुलसीदास द्वारा स्त्री की (वर्ष की) छः भारतीय ऋतुओं से तुलना मौलिक है:—

" .... मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।
जप तप नेम जलास्रय झारी, होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी।
काम क्रोध मद मत्सर भेका, हनहि हरषप्रद बरषा एका।
दुर्बासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई।
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा, होइ हिम तिन्हहिं दहति सुख मंदा।
पुनि ममता जवास बहुताई, पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।
पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।
बुधि बल सील सत्य सब मीना, बंसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।

तुलसीकृत रामायण—ऐतिहासिक स्तम्भ के रूप में

तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा की खोज करनेवालों में से अधिकांश इस उपपत्ति से चलते हैं कि तुलसीदास वाल्मीकि के संस्कृत काव्य का अनुसरण करते हुए पौराणिक नायक तथा धूमिल अतीत की कल्पनात्मक घटनाओं का वर्णन करते हैं।

हमारे समय तक, एक भी अनुसंधानकर्ता ने, आवश्यक रूप में तुलसीदास के काव्य के अपने युग (जिसमें यह निर्मित हुआ) से संबंध के प्रश्न पर विचार नहीं किया है। इस तथ्य का निरीक्षण बहुत कठिन नहीं है कि कल्पनात्मक नायकों के वेश और क्रिया-कलाप (के पीछे) में तुलसीदास तत्कालीन भारत का अत्यन्त स्पष्ट चित्रण कर रहे हैं।

सबसे पहले यह कहना संभव है कि काव्य में तुलसीदास के दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक विचार उस रूप में चित्रित हैं जो कि उन्हें (उन विचारों के) उस युग में प्राप्त हुए।

काव्य में उन ऐतिहासिक घटनाओं के संकेत मिलते हैं जो कि कवि के समय में घटित हुईं। विशेष स्पष्टता से तुलसीदास मुसलमान शासकों की ओर से हिंदुओं पर किए गए अत्याचार और हिंदू समाज की विच्छिन्नता का वर्णन करते हैं।

कलियुग या (लौहयुग) के रूप में तुलसीदास अपने समकालीन युग का चित्रण कर रहे हैं। मुसलमान असत् दानवों के

रूप में उपस्थित होते हैं। दानवों के शासक राजा रावण में, इस देश को जलाते और नष्ट करते हुए, भारत के मुसलमान शासकों को पहचानना कठिन नहीं है।

कलियुग का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं:—

"कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद ग्रंथ।"

पहले काण्ड में वह कहते हैं:—

"सद ग्रंथ पर्वत कन्दरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे।"

इसी काण्ड में हिंदुओं पर होने वाले अत्याचार का वर्णन करने वाले चित्र भी हैं:—

"जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला, सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं, नगर गाउँ पुर आग लगावहिं।
सुभ आचरन कतहुँ नहि होई, देव बिप्र गुरु मान न कोई।
नहिं हरिभगति जज्ञ जप दाना, सपनेहुँ सुनिय न बेद पुराना।"

"जप जोग बिरागा तप मख भागा, स्रवन सुनइ दस सीसा।
आपुन उठि धावइ रहइ न पावइ, धरि सब घालइ खीसा।
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा, धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ, जो कह बेद पुराना।"

"बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥"

"बाढ़े खल बहु चोर जुआरा, जे लंपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहि देवा, साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।"

कवि के शब्दानुसार कलियुग में उसी को सफलता मिलती है जो:—

"बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं, पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी, बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी।
लोभी लंपट लोलुपचारा, जे ताकहिं परधनु परदारा।
तजि स्रुतिपंथ बाम पथ चलहीं, बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं।"

पंथ, मतवाद (Heresy) के रूप में हिंदू समाज की छिन्न-भिन्नता का अत्यन्त स्पष्ट चित्र और हिंदू समाज के नैतिक ध्वंस का चित्रण हमें काव्य के अंतिम कांड में मिलता है, जहाँ तुलसीदास अपने युग को प्रतीकात्मक नाम देते हुए कलियुग का विस्तार से चित्रण करते हैं—

"कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥
भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।"

"बरन धर्म नहिं आश्रम चारी, स्रुति बिरोध रत सब नर नारी।
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन, कोउ नहि मान निगम अनुसासन।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा, पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई, ता कहुँ संत कहैं सब कोई।
सोइ सयान जो पर धन हारी, जो कर दंभ सो बड़ आचारी।
जो कह झूठ मसखरी जाना, कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना।
निराचार जो स्रुति पथ त्यागी, कलिजुग सोइ ज्ञान बैरागी।
जाके नख अरु जटा बिसाला, सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।

"जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य बहु।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ।

"नारि बिबस नर सकल गोसाईं, नाचहिं नट मर्कट की नाईं।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना, मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।
सब नर काम लोभ रत क्रोधी, देव बिप्र स्रुति संत बिरोधी।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी, भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।
सौभागिनी बिभूषन हीना, बिधवन्ह के सिंगार नवीना।
गुरु सिष बधिर-अंध कर लेखा, एक न सुनै एक नहिं देखा।
हरै सिष्य धन सोक न हरई, सो गुरु घोर नरक महुँ परई।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं, उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि
जानै ब्रह्म सो बिप्रबर, आँख देखावहिं डाटि।"

"पर तिय लंपट कपट सयाने, मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर, देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।
आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं, जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहिं।
कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका, परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका।
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा, स्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह संपति नासी, मूड़ मुड़ाइ होंहि संन्यासी।
ते बिप्रन्ह सन पाँव पुजावहिं, उभय लोक निज हाथ नसावहिं।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी, निराचार सठ बृषली स्वामी।
सूद्र करहिं जप तप ३ बरासन कहहिं पुराना।
सब नर कल्पित करहिं अचारा, जाइ न बरनि अनीति अपारा।

भए बरनसंकर सकल भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥
स्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

"बहु दाम सँवारहिं धाम जती, बिषया हरि लीन्हि गई बिरती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही।
कुलवंति निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबला नहिं दीठि परी जब लौं।
ससुरारि पिआरि लगी जब तें, रिपु रूप कुटुम्ब भए तब तें।
नृप पाप परायन धर्म नहीं, करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।
धनवंत कुलीन मलींन अपी, द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी।
नहिं मान पुरान न बेदहिं जो, हरि सेवक संत सही कलि सो।
कविबृन्द उदार दुनी न सुनी, गुन दूषन ब्रात न कोपि गुनी।
कलि बारहिं बार दुकाल परे, बिनु अन्न दुखी सबु लोगु मरे।

"तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषैं धरनि पर बए न जामहिं धान ॥

"अबला कहँ भूषन भूरि छधा, धन हीन दुखी ममता बहुधा।
सुत चाहहिं मूढ़ न धर्मरता, मति थोरि कठोरि न कोमलता।
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं, अभिमान बिरोध अकारनहीं।
लघु जीवन संबत पंचदसा, कलपांत न नास गुमानु असा।
कलिकाल विहाल किए मनुजा, नहिं मानत कोइ अनुजा तनुजा।
नहिं तोष बिचार न सीतलता, सब जाति कुजाति भये मँगता।
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता, भरि पूरि रही समता बिगता।
सब लोग बियोग बिसोक हए, बरनाश्रम धर्म अचार गए।
दम दान दया नहिं जानपनी, जड़ता परबंचकतातिघनी।
तनु पोषक नारि नरा सगरे, परनिंदक जे जग मों बगरे।"

अनुवाद के स्वरूप के विषय में

यद्यपि तुलसीदास की रामायण का पाठ अपेक्षाकृत बाद (सोलहवीं शती) का है, फिर भी भाषा और शैलीगत विशेषताएँ इसे अनुवाद के लिए अत्यन्त कठिन बना देती है। इनमें से मुख्य (कठिनाइयों) का हम उल्लेख करते हैं।

१—काव्य में तीन साहित्यिक भाषाओं का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्यिक भाषा अथवा संस्कृत, और दो नवभारतीय साहित्यिक भाषाएँ—(क) पूर्वी हिंदी या अवधी और (ख) पश्चिमी हिंदी या व्रज। इनमें से प्रत्येक के अपने उच्च विकसित साहित्यक मुहाविरे हैं।

२—काव्य में शैली की अनेकरूपता देखी जाती है—यहाँ तक कि उक्त भाषाएँ केवल अपने शुद्ध स्वरूपों का ही प्रयोग नहीं करतीं किंतु परिवर्तित अनुपात में उनका सम्मिश्रण भी है।

३—काव्य में बहुत से छंद-रूपों और युक्तियों का प्रयोग हुआ है। नियमतः यति-भंग क्षम्य नही है और वृत्त की प्रत्येक चौकड़ी को अपने में कम या अधिक रूप में भाव को बाँधना चाहिए; तुलसीदास में इस नियम का उल्लंघन अत्यन्त विरल है और यह संभव है कि बहुत से यति-भंग कतिपय स्थिति में बाद के प्रक्षिप्त अंश के साक्षी हों।

४—भारतीय काव्य की विशेषता उसके चित्र-विधान की मौलिकता प्रतीत होती है। यह चित्र-विधान योरोपीय परिपाटी से भिन्न पद्धति पर विकसित हुआ है।

५—बहुत स विचार योरोपीय भावनाओं द्वारा संवाहित नहीं हो पाते और वे मौलिक भारतीय संस्कृति के कई शताब्दियों के विकास के परिणाम को प्रदर्शित करते हैं।

६—काव्य के पाठ में जटिल भारतीय देवमंडल के बहुत से पात्र और विभिन्न पौराणिक चित्रों का उल्लेख है, जिनमें से प्रत्येक के साथ बहुत सी कथाएँ जुड़ी हैं और युक्तिरूप में उनक काव्य में हल्का संकेत है, यद्यपि उनको जाने बिना पाठ क समझना संभव नहीं है।

रामायण के पाठ की इन सभी विशेषताओं ने महत्वपूर्ण ढंग से रूसी अनुवाद के स्वरूप को निर्धारित किया।

चूँकि योरोपीय अनुवाद की परम्परा (रचना या कृति की) अनेक साहित्यिक भाषाओं में से केवल एक का ही कम अधिक मात्रा में समानरूप से आधार बनाकर प्रयोग करती है, इसलिए रामायण की भाषागत सूलभूत स्पष्ट विशेषताएँ अनुवाद में अन-भिव्यक्त रह जाती हैं। मौलिक से कुछ नैकट्य, रूसी के साथ प्राचीन 'स्लाव' भाषा और 'यूक्रेन की साहित्यिक' भाषा के प्रयोग द्वारा, प्राप्त किया जा सकता है। किंतु यह रूसी साहित्य में स्थापित परंपरा के अनुरूप नहीं है।

प्राचीन भारतीय भाषा की शैली की अनेकरूपता और अनुरूपता (अनुवाद को) प्रदान करने की चेष्टा के परिणाम-स्वरूप अनुवाद में, काव्य के शक्तिशाली संस्कृतमय या तत्सम प्रधान अंश की अभिव्यक्ति के लिए, शैलीगत साधन के रूप में 'स्लाववाद' और प्राचीन (आर्ष) प्रयोग (Archaism) क विस्तारपूर्वक व्यापक उपयोग किया गया है।

(सबसे अधिक) भारतीय छंदशास्त्र की मौलिक विशेषताओं के फलस्वरूप काव्य के छंदरूप पूरे-पूरे अभिव्यंजन के अधीन नह होते। भारतीय भाषाओं का छंद-विधान अपने मौलिक आधार

में ह्रस्व, दीर्घ वर्णों के क्रमिक परिवर्त्तन में है। अनुवाद में भारतीय वृत्तों को रूसी छंदों का अधिकाधिक निकट स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया है। युक्तिरूप में रूसी अनुवाद में प्रत्येक पंक्ति में मौलिक के उच्चारण की मात्राओं के अनुरूप ही संख्या (को अभिव्यक्ति हुई) रखी गई है। भारतीय ह्रस्व वर्ण के उच्चारण की इकाई के अनिवार्य समय को एक मात्रा गिनते हुए, दीर्घवर्णों में उच्चारण की दो इकाई या मात्रा हैं।

मौलिक के नियमों का अनुसरण करते हुए अनुवाद में भी यति-भंग को स्थान नहीं दिया गया है। जहाँ इसका हमारे द्वारा समावेश किया गया है वहाँ यह मूल के पाठ को ही प्रतिबिम्बित करता है।

अनुवाद में छंद के विविध अंशों को अलग करने के लिए खड़ी लकीर द्वारा प्राचीन भारतीय पद्धति को (ज्यों का त्यों) रखा गया है। इस प्रकार उदाहरणतः चौपाई में पहले और तीसरे चरण के बाद एक खड़ी लकीर है और दूसरे तथा चौथे चरण के बाद दो खड़ी लकीरें हैं। दोहे की पहली पंक्ति के बाद एक खड़ी लकीर है और दूसरी पंक्ति के बाद दो लकीरें हैं।

विशेषतया अनुवाद में भारतीय चित्रविधान की उच्च मौलिकता के सुरक्षित रखने की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

अनुवाद में मौलिक के सभी चित्र सुरक्षित हैं। अनुवाद के पाठ में एक भी योरोपीय चित्र नहीं आने पाया है। रूसी पाठकों के समझने के लिए, भारतीय काव्य के जटिल चित्रों का निकटतम अर्थ टिप्पणियों की व्याख्या में (Interlinear Explanation) दे दिया गया है।

भारतीय मौलिक भावनाएँ, जिनका रूसी भाषा में पर्याय नहीं है, अनुवाद में भारतीय उच्चरित स्वरूप में रखी गई हैं और टिप्पणी में व्याख्या कर दी गई है।

भारतीय देवमंडल के देवताओं के नाम, विशिष्ट भारतीय वृक्ष, पशु और पक्षी इत्यादि में से जो विचारों और भारतीय मौलिक चित्रों के समझने के लिए अनिवार्य हैं उनकी, नीचे की टिप्पणियों में, व्याख्या दी गई है।

काव्य के अनुवाद में बहुत से भारतीय मौलिक संस्करणों का उपयोग किया गया है। अनुवाद का मूल आधार, बनारस की वैज्ञानिक सभा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' का, समकालीन भारतीय विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ श्यामसुन्दरदास के संपादकत्व में १६२२ में प्रयाग (इलाहाबाद) से टिप्पणियों सहित प्रकाशित, संस्करण है।

परिशिष्ट

[गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कृतियों के संबंध में प्रमुख विदेशी विद्वानों के विचारों का सारांश]

(१) गार्सां द तासी—

"हिन्दुई के एक अत्यन्त प्रसिद्ध लेखक, तुलसी या तुलसीदास का 'भक्तमाल' में अपनी स्त्री, जिसे वे अत्यधिक प्यार करते थे, के द्वारा राम के प्रति विशेष भक्ति की ओर प्रेरित होना लिखा है। उन्होंने एक भ्रमणशील जीवन ग्रहण किया; वे बनारस गए, उसके बाद वे चित्रकूट गये, जहाँ उनका हनुमान से व्यक्तिगत साक्षात् हुआ, जिनसे उन्होंने काव्य-प्रेरणा और चमत्कार दिखाने की शक्ति प्राप्त की। उनकी ख्याति दिल्ली तक पहुँची जहाँ शाहजहाँ राज्य करता था। सम्राट ने उन्हें बुला भेजा; किन्तु उनके धार्मिक सिद्धान्तों से संतुष्ट न हो उसने उन्हें बन्दी बना लिया। तत्पश्चात् वहाँ हजारों बानर इकट्ठे हो गये और उन्होंने बन्दीगृह को नष्ट करना प्रारम्भ किया। शाहजहाँ ने, आश्चर्यचकित हो उन्हें तुरन्त मुक्त कर दिया और साथ ही अनुचित व्यवहार करने के बदले में कुछ माँग लेने के लिए उनसे कहा। तब तुलसीदास ने पुरानी दिल्ली, जो राम का निवास

हो गयी थी, छोड़ देने के लिए शाहजहाँ से प्रार्थना की जिसे सम्राट ने पूरा किया; और उसने एक नया नगर—शाहजहाँनाबाद—बसाया। बाद को तुलसीदास वृंदावन गये, जहाँ उनका नाभा जी से साक्षात्कार हुआ। वहाँ वे ठहरे और राधा-कृष्ण के स्थान पर सीताराम की भक्ति का प्रचार किया।

'रामायण पूर्वी भाषा या पूर्वी हिन्दुई, अर्थात् हिन्दी की बोलियों में सबसे अधिक परिष्कृत, अवध की बोली में लिखा गया है। तुलसीदास की सभी कृतियों को भारत में अत्यधिक ख्याति प्राप्त है; विद्वान् और सच्ची ख्यातिप्राप्त एच० एच० विल्सन का भी निस्संकोच कहना है कि वे संस्कृत रचनाओं की अनेक पोथियों से अधिक हिन्दू जन-समाज को प्रभावित करती हैं।

"मैं नहीं जानता यदि 'कथा बरमाल' या स्पष्ट कथा, तुलसीदास कृत है। मैं इस पुस्तक के विषय के बारे में नहीं जानता, जिसे मुहम्मद बख्श के हिन्दुस्तानी हस्तलिखित ग्रंथों के सूची पत्र में तुलसी-कृत कहा गया है।

"पिछली बातों के साथ-साथ मैं यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि, जैसाकि 'भक्तमाल' से लिये गये अंश में बताया गया है, वे संस्कृत 'रामायण' के रचयिता वाल्मीकि के अवतार समझे जाते थे। उनके पिता का नाम आत्माराम पन्त (Pant) था। बारह वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचारी हो गये थे, उनकी स्त्री का नाम देवी ममता था; वे अत्यंत पवित्र थीं, और उन्होंने उन्हें राम और सीता की भक्ति की ओर प्रेरित किया, साथ ही वैराग्य धारण करने का निश्चय उत्पन्न किया।

"तुलसी-कृत रामायण भारतवर्ष के सबसे अधिक पढ़े जाने वाले और सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथों में से है, यद्यपि सामान्यतः लोग उसकी सूक्ष्मता का कारण और उसके प्राचीन रूपों

को कम समझते हैं। उसे प्रायः 'तुलसी-ग्रन्थ'—तुलसी की पुस्तक—कहते हैं।

"अनेक स्थानों में, और पटना में ही, जहाँ तुलसी-दास की रचनाएँ अन्य स्थानों की अपेक्षा भली-भाँति समझी जाती है, प्रतिष्ठित व्यक्ति थोड़ा सा प्रसाद वितरण कर इन रचनाओं का साफ-साफ पाठ सुनने के लिए इकट्ठे होते हैं। प्रत्येक समुदाय में दस या बारह व्यक्तियों से अधिक नहीं होते जो कथा समझ सकते हों। प्रत्येक अंश का अर्थ उन्हें समझाना पड़ता है। साथ ही ऐसे लोग भी हैं जो तुलसीकृत 'रामायण' के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों में उसे पढ़ नहीं सकते, क्योंकि सुनते-सुनते वह उन्हें कण्ठस्थ हो जाती है।"

(२) जी० ए० ग्रियर्सन—

"मध्ययुगीन उत्तरी भारत के सबसे बड़े कवि तुलसीदास के विषय में निश्चयात्मक रूप से कतिपय तिथियां और आकस्मिक आत्मपरक कथनों को छोड़ कर बहुत कम ज्ञात है।

"कहा जाता है कि उनका जन्म राजापुर में सन् १५३२ में हुआ था। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। उनका अपना नाम रामबोला था। अपनी एक रचना में वह कहते हैं कि जन्म होने के साथ ही उनके माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया। उन्हें किसी रमते साधू ने उठा लिया और तुलसीदास का नाम दिया। इस साधू के साथ, जोकि कदाचित उनका गुरू ही था और जिसका नरहरिदास नाम था, उन्होंने उत्तरी भारत का भ्रमण किया। अपने गुरू से उन्होंने राम की कथा सुनी और फिर बाद में उसे जनता की भाषा में लिखने का निश्चय किया। शिक्षा समाप्त करने पर उन्होंने

गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से उनका विवाह हुआ। तारक नाम का उनके एक पुत्र भी हुआ, किन्तु वह छोटी अवस्था में ही मर गया। पत्नी के विछोह को न सह सकने के कारण वह अपनी पत्नी के पीछे ससुराल दौड़े गये और उसकी भर्त्सना से वे घरबार छोड़कर साधू हो गये। पहले ये अयोध्या में रहे फिर बाद में काशी में। इनके व्यक्तित्व ने सभी बाधाओं को परास्त किया और लोक-व्यापी सम्मान प्राप्त किया। कवि-रूप में इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली। इनके मित्रों में अजमेर के राजा मानसिंह और अब्दुर रहीम खानखाना जैसे व्यक्ति थे। बनारस का टोडरमल नाम का एक व्यक्ति (जो अकबर के मंत्री टोडरमल का मित्र था) इनका घनिष्ठ मित्र था। उसकी मृत्यु पर तुलसीदास ने कतिपय पंक्तियाँ लिखीं। उसके वंशजों में झगड़ा होने पर तुलसीदास ने पंचनामा लिखा। तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ यह पंचनामा सुरक्षित है। और इस पर संम्वत् १६६६ (सन् १६१२) की तिथि है।

"१६१६ में भारत में प्लेग का प्रकोप हुआ और वह आठ वर्ष तक रहा। कदाचित् कवि उसकी पीड़ा से ग्रस्त हुआ, क्योंकि 'हनुमान बाहुक' में कदाचित् किसी ऐसे ही रोग का वर्णन है। थोड़े समय के लिए अच्छे हो जाने के बाद वे इससे फिर ग्रस्त हुये और काशी में सन् १६२५ में उनकी मृत्यु हुई।

"समन्वयवादी सिद्धान्त से प्रेरित होकर तुलसी ने शिव तथा राम के बीच पूज्य भाव रखने का उपदेश भी दिया और उसे व्यवहृत भी किया यद्यपि इस संबंध में उनका विरोध भी बहुत हुआ।"

तुलसी के प्रभाव का आकलन करते हुए ग्रियर्सन कहते हैं कि उनकी वाणी की शुभ प्रेरणा से उतरी भारत धार्मिक आन्तरिक कलह एवं उसके कुपरिणामों से बच गया।

इंडियन ऐंटिक्वेरी में ग्रियर्सन ने तुलसीदास के ग्रंथों के संबंध में बड़े विस्तार के साथ विचार किया है। उसका निष्कर्ष निम्न लिखित है।

"बीस से अधिक ग्रन्थ उनके रचित बताये जाते हैं, किन्तु इनमें से कुछ निस्संदेह ही उनके नहीं हैं। परम्परा उनमें से केवल १२ ग्रन्थों को उनके द्वारा रचित स्वीकार करती है। इनमें छः छोटे ग्रन्थ हैं—(१) रामलला (२) वैराग्य संदीपिनी (३) बरवै रामायण (४) जानकी-मंगल (५) पार्वती-मंगल (६) रामाज्ञा और ६ बड़े ग्रन्थ हैं—(१) कृष्ण-गीतावली (२) विनय-पत्रिका (३) गीतावली (४) कवितावली (५) दोहावली और (६) रामचरितमानस।"

मानस की लोकप्रियता से ग्रियर्सन अपरिचित नहीं हैं। इस संबंध में उनका निम्नलिखित कथन महत्वपूर्ण है। मानस बाइबिल से भी अधिक प्रभावशाली है।

"कवि की महानतम और कदाचित उसकी प्रथम कृति रामचरितमानस की रचना सन् १५७४ में हुई जब कि तुलसीदास ४३ वर्ष के थे। लोगों ने इसे उत्तरी भारत के ६ करोड़ हिन्दुओं की बाइबिल कहा है। निश्चय ही सामान्य हिन्दू जितना 'मानस' से परिचित हैं उतना सामान्य अंग्रेज अपनी बाइबिल से नहीं। उत्तरी भारत में अमीर या गरीब कोई ऐसा हिन्दू न मिलेगा जो इसकी पंक्तियों से अपरिचित हो और अपनी बातचीत में इनका प्रयोग न करता हो। इसकी उपमायें भारतीय मुसलमानों की भाषा में भी समा गई हैं।"

मानस के वस्तु-विषय के संबंध में ग्रियर्सन का यह कथन युक्ति-युक्त है कि वह वाल्मीकि का अनुवाद मात्र नहीं है। उसमें अन्य कई ग्रन्थों से भी सामग्री ली गई है। इस संबंध में कवि का

कथन भी स्पष्ट कर रहा है कि 'नाना-पुराण निगमागम' आदि की सामग्री का भी समावेश इसमें किया है।

"प्रबन्ध-काव्य के रूप में उस परम सत्ता के अवतार श्रीरामचन्द्र के जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी कथावस्तु वाल्मीकि की संस्कृत रामायण के समान ही है। फिर भी तुलसी का काव्य उसका अनुवाद नहीं है। एक ही आधार होते हुए भी घटनाओं और महत्वपूर्ण विवरण के चित्रण में अन्तर है। कवि स्वयं कहता है कि उसने कई स्रोतों से सामग्री ली है। और इसमें वाल्मीकि के काव्य के अतिरिक्त आध्यात्म रामायण, भुशुंडि रामायण, वशिष्ठ संहिता और प्रसन्नराघव मुख्य हैं।"

मानस की काव्यगत विशेषताओं को बतलाते हुए ग्रियर्सन निम्नलिखित कथन में कवि की प्रतिभा, उसके भाषाधिकार और अलंकार-विधान के बीच उसकी मौलिक सूझ का सार-रूप में उल्लेख करते हैं।

"रामचरितमानस महान प्रबन्ध-काव्य है। यद्यपि यूरोपीय निवासियों को इसका आतिशय्य और इसकी घटनाओं का विवरण खटकता है फिर भी वे इसे पढ़कर इससे प्रभावित हुए विना नहीं रह सकते। विविध पात्रों का अत्यन्त सजीव और स्थिर चित्रण हुआ है और मध्ययुगीय वैभव और परम्परा के अनुरूप ही उनका कार्य-कलाप है। शैली में अनेक-रूपता और विविधता है। राम-विदाई के वर्णन अत्यन्त करुण हैं। युद्ध-भूमि के वर्णन कर्कश भाषा में उसकी विभीषिका चित्रित करते हैं। आवश्यकतानुसार उपदेशात्मक और केवल परम्परा से ही नहीं वरन् जीवनानुभव और प्रकृति से प्राप्त सामविधान से पूर्ण सूक्तिमयी भाषा का व्यवहार भी दर्शनीय है। और इन सबके ऊपर शुद्ध और उच्च काव्य का परिधान है।

कवि की स्वतंत्र परिवेक्षण शक्ति इस काव्य की सबसे बड़ी

विशेषता है। भारतीय काव्य की बहुत सी उपमायें रूढ़ हैं। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत के उत्कृष्ट काव्य भी उन्मुक्त वातावरण में न लिखे जाकर बन्द कमरे में लिखे गये हैं। तुलसीदास ने इन रूढ़ उपमानों का भी प्रयोग किया और बहुत सी अपनी निजी मौलिक उपमायें भी जोड़ीं। ये बताती हैं कि कवि ने दुनियाँ देखी थी।"

वस्तुतः मानस की व्यापकता कवि के जीवन या जीवनानुभव की व्यापकता है। मानस कवि की व्यापक पर्यवेक्षण शक्ति और उदार-दृष्टिकोण को व्यक्त कर रहा है। ग्रियर्सन के निम्नलिखित कथन में इसी की पुष्टि है—

"यह समझना बड़ी भूल होगी कि तुलसीदास केवल संन्यासी हैं। उनका जीवन पूर्ण था, वे गृहस्थ का जीवन बिता चुके थे। उन्हें पत्नी के बिछोह और पुत्र के मृत्यु-शोक का अनुभव था। इन्होंने विद्वानों की जगह सामान्य जनता को सम्बोधित किया जिसको कि वे अच्छी तरह जानते थ। जिसके बीच में वे घूमे-फिरे थे, जिससे भीख माँगी थी और जिसके दुःख-सुख से उनका योग था। सम्राट के दरबार के महान् व्यक्तियों से उनकी मित्रता थी। इन सबकी झलक उनकी रचना में मिलती है।"

तुलसी के भक्ति के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए ग्रियर्सन का निष्कर्ष यह है कि यद्यपि मानस में प्रतिपादित भक्ति कवि की निजी कल्पना नहीं है वरन परम्परागत है फिर भी तुलसीदास की वाणी की कल्पनात्मकता एवं प्रभाव ने ही उसे सबके हृदय में प्रतिष्ठित कर दिया।

"तुलसीदास के धार्मिक विचारों का बड़ा महत्व है। रामानन्द की परम्परा में वे सातवें हैं और वे भक्ति मार्ग के परम वैष्णव थे। उन्होंने यही शिक्षा दी कि वह परम सत्ता एक है और मनुष्य स्वभाव से पाप करनेवाला और मुक्ति प्राप्त करने के अयोग्य

है। फिर भी संसार के पाप को दूर करने के लिए करुणा से प्रेरित होकर वह परमकला श्री रामचन्द्र के रूप से प्रकटित होती है। यह सत्ता पाप में अस्पष्ट रहती हुई भी पापियों और भक्तों का उद्धार करती है। इसके साथ ही मनुष्य-मनुष्य की समानता और मनुष्य-मनुष्य के प्रति कर्त्तव्य की भावना भी साथ में है। राम की इच्छा के विरुद्ध जो कुछ भी किया जाय वह पाप है। इसको स्वीकार करके ही और पूर्ण प्रेम में राम के आत्मसमर्पण में ही आवागमन से मुक्ति मिल सकती है।

"भक्ति-मार्ग का सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है। रामानन्द और दूसरे आचार्य तुलसी के पहले इसका प्रचार कर चुके थे। तुलसीदास ने इसमें कोई नई बात नहीं जोड़ी, फिर भी हमारा ध्यान उनकी ओर बर्बस चला आता है क्योंकि उनकी शिक्षा अत्यन्त सफल हुई। उनके शुद्ध जीवन और उनके काव्य के प्रभाव ने भक्ति मार्ग के लिए वह कार्य कर दिखाया जिसे हजारों प्रचारकों की ओजस्विनी वक्तृता प्रतिपादित करने में असमर्थ रही है। तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे। यह न भूलना चाहिए कि वे न किसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे और न किसी सम्प्रदाय की उन्होंने स्थापना ही की। सामान्य हिन्दू की तरह हिन्दुओं के सामान्य विश्वास उन्हें मान्य थे। परब्रह्म के रूप में राम की उपासना करते हुए भी उन्होंने शिव और अन्य देवताओं की आराधना की।

तुलसीदास द्वारा निदर्शित माया के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हुए ग्रियर्सन का कथन है कि मनुष्य राम की भक्ति द्वारा —पूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा ही— इस विविध वेशधारिका एवं भ्रामक माया से छुटकारा पा सकता है।

"कवि द्वारा माया शब्द के प्रयोग को भी जान लेना चाहिए। अधिकतर आत्मा को ब्रह्म से छिपाने वाले या अलग करने वाली

शक्ति के रूप में वह माया को सम्बोधित करते हैं। वेदांतियों की "माया" के सिद्धान्तों के वह विरोधी थे। अन्य स्थानों पर वे इस शब्द को दो विभिन्न अर्थों में प्रयोग करते हैं। प्रथमतः जादू या शक्ति के रूप में, जिसका राक्षसगण राम की सेना के विरुद्ध प्रयोग करते हैं। दूसरे अर्थ में यह लुभानेवाली या ठगनेवाली है। स्त्री के समान इसका व्यक्तित्व है जो उसकी दासी है और उसकी एजेंट-सी है। इस अन्तिम रूप में वह सारे संसार को नचाती रहती है और परमात्मा का भ्रू विलास उसको नचाता रहता है। वह सबको, देवताओं का भी फँसा लेती है और भगवान उन पवित्र व्यक्तियों का भी लुभाने के लिए भेजते हैं जब वे घमंड से भर जाते हैं। वह मनुष्य को पाप की ओर ले जाती है। फिर भी यदि मनुष्य में सच्ची भक्ति है तो यह माया उसके पास तक नहीं पहुँच सकती। तुलसीदास ने कहा है कि परब्रह्म का सगुण व्यक्तित्व है। निर्गुण सत्ता को अस्वीकार न करते हुए भी उन्होंने कहा कि यह मनुष्य के मन के परे है और निर्गुण के सगुण रूप का ही ध्यान सम्भव है।

"तुलसीदास स्मार्त-वैष्णव थे। राम के भक्त होते हुए भी वह हिन्दू समाज की रीतियों और अपने वर्ण की धार्मिक प्रथाओं का पालन करते थे। इसलिए शिव के भक्त भी थे और अलख भजन करते थे। इस दृष्टि से उनका वैरागी वैष्णवों से अन्तर था जो कि केवल विष्णु की ही उपासना करते थे और एक साथ भोजन करते थे। अयोध्या में वह इन वैरागियों के सम्पर्क में रहे और वहीं रामचरितमानस के प्रथम तीन काण्डों की रचना की, किन्तु आगे चल कर उनका इन लोगों से विरोध हुआ और वह काशी चले आये। वहाँ उन्होंने रामायण को पूरा किया।"

"तुलसीदास के विचारों को जनता ने स्वीकार किया। तुलसी के समय में सामान्य जनता के सामने केवल दो धार्मिक मार्ग थे।

एक तो बहुदेवोपासना जिनमें अनेक प्रकार के देवता (जिनमें छोटे-मोटे ग्राम-देवता भी थे) की उपासना थी और दूसरा कृष्ण सम्प्रदाय। तुलसी के प्रभाव से पहला बहुत-कुछ मंद पड़ गया। अपढ़ जनता के बीच कृष्ण-सम्प्रदाय की कैसी परिणति हो सकती है इसे बंगाल बता रहा है। इसका झुकाव अनिवार्य रूप से यौन उपासना की ओर हो जाता है। इसके उद्गार उद्दाम वेश और कृष्ण की उच्छृंखल प्रेम-क्रीड़ाओं से उद्भ्रांत हो जाते हैं और क्रमशः शाक्त सम्प्रदाय की अवर्णनीय विभीषिका का विकास होता है। तुलसीदास ने उत्तरी भारत को उससे बचा लिया।"

(३) एफ० एस० ग्राउज—

'मानस' काव्य हिन्दू जाति के सामान्य जीवन का विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक है। यह संस्कृत रामायण का अनुवाद नहीं है। दोनों में बड़ा अन्तर है। यद्यपि दोनों में प्रथम काण्ड राम और सीता का विवाह के साथ समाप्त होता है। फिर भी तुलसीदास का यह काण्ड ७ काण्डों में सबसे बड़ा है और पूरे काव्य का एक तिहाई है। इसके विपरीत संस्कृत का यह काण्ड करीब करीब सब से छोटा है। इस में वस्तु-विषय की सूची दी हुई है और यह बताया गया है कि किस प्रकार वाल्मीकि ऋषि ने इस कथा को नारद से सीखा और कुश तथा लव को सिखाया। इस प्रकार इन दोनों काव्यों में बहुत कम अनुरूपता है। सातवें काण्ड में यह विषमता और भी स्पष्ट हो जाती है जब ५० वें सर्ग में राम बन्दरों को उनके घर भेज देते हैं। राम-राज्य के वैभव और आनन्द के यदा-कदा संकेतों में ही दोनों में कुछ साम्य है। संस्कृत काव्य का शेषांश सीता के निर्वासन और अश्वमेध की कथा कहता है। इसके बाद राम और उनके भाई स्वर्गारोहण करते हैं। तुलसीदास ने इन घटनाओं को

हुआ भी नहीं और वह इनकी जगह काकभुशुण्डि की कथा और धार्मिक संवाद तथा भक्ति के स्वरूप को अधिक स्थान देते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कवियों ने जिन कथाओं और घटनाओं का समावेश किया है वे एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं और मुख्य कथा में भी कुछ प्रमुख घटनायें इस प्रकार रखी गयी हैं कि उनका रूप-रंग ही बदल जाता है। वाल्मीकि ने जिसे संक्षिप्तता से कहा है उसे तुलसीदास ने विस्तार दिया है और जहाँ संस्कृत का कवि अधिक वर्णन में प्रवृत्त हुआ है वहाँ तुलसी ने केवल संकेत मात्र किया है।

हमारे इस कवि के सबंध में पहला विवरण भक्तमाल में मिलता है। तुलसी के सम्बन्ध में एक छप्पय है। प्रियादास के भक्तमाल की टीका में इसका उल्लेख कुछ विस्तार से है।

प्रोफेसर विलसन ने अपने महत्वपूर्ण और मनोरंजक प्रबन्ध "हिंदुओं के धार्मिक संप्रदाय" में तुलसी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है और यह भी कहा है कि उनके इस कथन का आधार भक्तमाल है:—"अपनी पत्नी द्वारा राम की भक्ति में नियोजित होने पर वे (तुलसीदास) घूमने लगे। उन्होंने बनारस की यात्रा की और बाद में वे चित्रकूट गये जहाँ उनकी हनुमान से भेंट हुई और जिनसे उनको काव्य की प्रेरणा और अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हुईं। उनकी ख्याति दिल्ली पहुँची और बादशाह शाहजहाँ ने इनको बुलवाया। शाहजहाँ ने राम को प्रकट करने के लिये कहा और जब तुलसीदास ने इनकार किया तो उन्हें जेल में डाल दिया गया। आसपास के लोगों ने बादशाह से उनकी मुक्ति के लिये प्रार्थना की क्योंकि वे अपनी रक्षा के लिये चिन्तित हो उठे थे। बहुत से बन्दर जेल के चारों ओर एकत्रित हो गये और जेल तथा दूसरी इमारतों को नष्ट करने लगे। शाहजहाँ ने कवि को मुक्त किया और कुछ माँगने को कहा। तुलसीदास ने बादशाह से दिल्ली छोड़ देने की प्रार्थना की

क्योंकि वह अब राम की जगह हो गयी थी। बादशाह ने यह प्रार्थना मान ली और शाहजहांनाबाद के नाम से नया शहर बसाया। इसके बाद तुलसीदास वृन्दावन गये जहाँ नाभा जी से भेंट की। वह वहाँ बस गये और राधाकृष्ण की अपेक्षा सीता-राम की उपासना का प्रचार करने लगे।"

यह हिन्दू मस्तिष्क की ऐतिहासिक सत्य के प्रति उदासीनता और अद्भुत के प्रति प्रेम की विशिष्टता का विलक्षण उदाहरण है। यद्यपि भक्तमाल की टीका कवि की मृत्यु के सौ वर्ष के अन्दर ही लिखी गयी थी, फिर भी इसमें कवि के जीवन की ऐसी विश्वसनीय घटनाओं की सूचनाओं का अभाव है और कल्पनात्मक वर्णनों का आतिशय्य। कवि के जीवन की कुछ स्थूल घटनायें उनकी कृतियों और परम्पराओं से मिल जाती हैं। इस प्रकार हम जानते हैं कि रामायण १६७५ में अयोध्या में आरम्भ की गयी और यह भी कि उन्होंने कुछ समय तक सोरों में अध्ययन किया था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और भक्त सिन्धु (अप्रामाणिक ग्रंथ) में कहा गया है कि उनके पिता का नाम आत्माराम था और वह हस्तिनापुर में पैदा हुये। दूसरे चित्रकूट के निकट हाजीपुर को उनका जन्म-स्थान बताते हैं। उनके जीवन का अधिकांश काशी में बीता। यद्यपि उन्होंने कुछ समय सोरों, अयोध्या, चित्रकूट, इलाहाबाद और वृन्दावन की यात्रा में बिताया। संवत् १६८० में उनकी मृत्यु हुई। उनके हाथ की लिखी रामायण की एक प्रति राजापुर में थी, किन्तु वह १८०० में एक भक्त द्वारा चुरा ली गयी और फिर जमुना में फेंक दी गयी। उसका केवल अयोध्या काण्ड ही फिर प्राप्त हो सका।

उनके धार्मिक और विश्व-संबंधी विचार सर्ववादी हैं जिनका आधार उत्तरकालीन वेदान्तियों की वेदान्तसार में निहित शिक्षा है और जो भगवद्गीता में विस्तार के साथ प्रतिपादित हैं।

समग्र दृश्यमान जगत उनके विचारानुसार भ्रांतिमय दृश्य है जो अज्ञान या भ्रांति से उद्भूत है। सत् स्थिति का एकमात्र प्रतिनिधि परब्रह्म है जो पूर्ण और अपरिवर्तनीय है। अगोचर, अनन्त और सर्वव्यापी होते हुए भी उसका संसार से कोई संबंध नहीं है— क्योंकि इससे द्वैत की भावना का जन्म होगा, और इसी कारण ज्ञान, इच्छा, कर्म तथा अन्य गुणों से शून्य है। सारे दृश्य चाहे स्थूल हों या सूक्ष्म वैदिक देवताओं समेत केवल मस्तिष्क या कल्पना की उपज मात्र हैं। फिर भी निम्न देवताओं की उपासना और धार्मिक कर्म-काण्ड बुद्धि को शुद्ध करने वाले और उच्च सत्यों को ग्रहणशील बनाने में सहायता देते हैं। इस लिये आत्मा की पूर्णता की ओर यात्रा में यह सहायक और आवश्यक है। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति पर ही मोक्ष संभव है और आत्मा निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाती है।

मानव मुक्ति की इस प्रकार की भावना थियोसोफिस्ट को छोड़ कर दूसरों को न इतनी रोचक लगती है और न लोक-प्रिय नैतिकता के प्रचार लिये ही उपयुक्त या अनुकूल है; क्योंकि अच्छे और बुरे कर्म और उनका फल देने वाला ईश्वर सभी अवास्तविक हैं और कल्पनात्मक भासमान संसार की द्वैत मूलक भावना के क्षेत्र के हैं। इसलिये वास्तव में वे अयथार्थ और अस्तित्वहीन हैं। और परब्रह्म गुण रहित होने के कारण उपासना का विषय नहीं बन सकता। इस त्रुटि को दूर करने के लिये और लोभ से बचने के लिये तथा शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये भक्ति के सिद्धान्त का पूरकरूप में विकास किया गया। हिन्दू देव मंडल के कुछ अवतार देवत्व की आंशिक अभिव्यक्ति के रूप में न माने जा कर उसके पूर्ण रूप ठहराये गये। अनन्त आनन्द की प्राप्ति के लिये उस सगुण रूप के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति को उसका सरल और निश्चयात्मक उपाय बताया गया। यह स्वर्ग का भोग मात्र नहीं है

और न पूर्ण विलय की शून्यता, प्रत्युत है उस परमसौन्दर्य के या परमसत्ता के सम्मुख आत्मा की अमरता का चेतन आनन्दास्वादन।

रक्षा करनेवाले अवतार के रूप में भक्ति का सिद्धान्त और ईसाई विचारों से इसकी समानता ने बहुत से विद्वानों को यह अनुमान लगाने का अवसर दिया कि ब्राह्मणों ने इसे दक्षिण भारत के आरम्भिक ईसाई समुदाय से लिया। इस भावना को इससे और भी बल मिला, क्योंकि भगवद्‌गीता में कृष्ण परब्रह्म के स्वरूप माने गये और कृष्ण के नाम तथा कथाओं में ईसामसीह से कुछ ऊपरी समानता है। इस संबंध को मानने का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं हैं। नाम की समानता सर्वथा आकस्मिक है। यह सिद्धान्त यहाँ के विचारों के बीच अत्यन्त सहज रूप में विकसित हुआ। बौद्धमत के इतिहास में इसी के समानान्तर उदाहरण मिलता है जहाँ कि निर्वाण की शून्यता उसके आदि शिक्षक के ईश्वरीयकरण के क्रमिक विकास और उपासना के द्वारा अपदस्थ कर दी गई। कृष्ण की अपेक्षा राम को अपना आदर्श बना कर तुलसीदास निश्चय ही भागवत् की शिक्षा से आगे बढ़ गये। तुलसीदास की पूरी रामायण हिन्दू दर्शन के अनीश्वरत्व का आवेश पूर्ण विरोध है। उनके सामने जो समस्या थी वही बहुत-कुछ आज भी है। यदि परब्रह्म सगुण ईश्वर है तो वह व्यक्तित्व की सीमाओं से अवश्य संकुचित रहेगा और वह न सर्वदर्शी हो सकता है और न सर्वशक्तिशाली। इसके विपरीत यदि परमसत्ता सर्वव्यापी और निर्गुण है तो ऐसी सूक्ष्म सत्ता और वैयक्तिक आत्मा के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित और विकसित नहीं किया जा सकता। वस्तुओं के सहज स्वरूप (विषमता) में ही इस रहस्य का किसी भी प्रकार भेदन या उन्मूलन नहीं हो सकता जब तक कि हम यह न मान लें कि विश्वास और तर्क मनुष्य की दो पृथक विशेषतायें हैं जिनके पृथक् क्षेत्र क्रमशः अनन्त और सांत हैं।

तुलसीदास इस कथन पर विशेष जोर देते हैं कि वे देवत्व की पूर्णता को धूमिल करते हैं जो उसे व्यक्तित्व से विहीन करके सूक्ष्म सत्ता के रूप में सीमित करना चाहते हैं। ऐसे धार्मिकों के विरुद्ध वह विरोध में कहते हैं कि हम तो सगुण का ही गुणगान करेंगे दूसरे चाहे अज-अद्वैत का ध्यान करें:—

जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मांगहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

बालकाण्ड की आरम्भिक अंश में कवि और भाषा-शैली और पंडितों और आलोचकों के विरुद्ध स्वपक्ष और स्वमत का प्रतिपादन है। पंडितों ने कवि की इसलिये निन्दा की कि सामान्य जनों की भाषा में लिख कर उसने वस्तु-विषय की गरिमा को नीचा किया। फिर भी यह पुस्तक राजमहल से लेकर कुटी तक और पढ़े, अपढ़, ऊँच, नीच, अमीर, गरीब, वृद्ध और युवक सभी के हाथ पर और हृदय में है। इस की नैतिक भावनाओं की शुद्धता और निम्न भाग-वृत्ति के रंच मात्र का भी पूर्णतया निवारण इसकी महत्वपूर्ण विशेषतायें और गुण हैं।

फेयरी क्वीन में जिस प्रकार स्पेंसर के सम्बन्ध में कहा गया है उसी प्रकार तुलसीदास भी अपनी इच्छानुसार शब्दों के तोड़-मरोड़ में और छन्द के अनुरूप उनके उच्चारण को बनाने-बिगाड़ने में जरा भी संकोच नहीं करते। कठिन अवसरों पर उनका शब्द-प्रयोग अत्यधिक नियमविहीन हो जाता है। स्थिति के अनुरूप वह उसे कोई भी रूप-रंग दे देते हैं; कभी एक-दो अक्षर बदलते हैं और कभी उसकी सिर या पूंछ ही मरोड़ देते हैं।

द्वितीय काण्ड बहुत अधिक पढ़ा जाता है और हिन्दू आलो-

चक उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। दशरथ के मरण और विदा के दृश्यों के वर्णन करुणा के आदर्श-रूप में उद्धृत किये जाते हैं। जिन भावनाओं की कवि अभिव्यक्ति देता है और उनके निदशन में जिन उपमा आदि का प्रयाग करता है वे हिन्दू की कल्पना को बड़े प्रिय लगते हैं। अन्य कारणों का छोड़ कर कम से कम इसी लिये वे अंग्रेज विद्यार्थियों का मनारंजक लगेंगे क्योंकि इनसे लोगों की परम्परागत सहानुभूति और विरक्ति का पहचान प्राप्त होती है। "चरण कमल" "आनन्द पुलक" योरोपीय मन को अच्छी नहीं लगतीं। यद्यपि होमर का कविताओं में परम्परा प्राप्त उपमानों के व्यापक उदाहरण मिलते हैं और उनकी बार बार जी उबाने वाली पुनरावृत्ति होती है।

इसी प्रकार विभिन्न पक्षियों और पौधों से लिये गये कल्पनात्मक कृत्रिम उपमान विदेशी को विरत करते हैं और उस अर्थहीन प्रतीत होते हैं यद्यपि वे यहाँ की जनता से बराबर सराहना प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के संकेत कमल के प्रति हैं जो दिन में विकसित होता है और शाम को संकुचित हो जाता है, कुमुदिनी के संबंध में जो रात में खिलती है और सूर्योदय पर मुर्झा जाता है, जवास का वृक्ष जो वर्षा से मुर्झा जाता है, चकवा जो रात भर अपने प्रिय का विछोह सहता है, चकोर जो चंद्रमा की ओर देखता हुआ कभी नहीं थकता, चातक जो स्वाति बूंद की आशा में सब कुछ सहता है, हंस, जो दूध और पानी को अलग कर देता है और सांप की ओर संकेत जो अपने सिर पर बहुमूल्य मणि धारण किये रहता है। तुलसीदास के समकालीन शेक्सपीयर के समय में भी इस प्रकार की बातें यूरोप में जनता में स्वीकृत थीं। उदाहरणतः—पक्षी पेलिकन की मातृत्व भावना और प्यार, यह विश्वास कि गिरगिटान हवा पर रहता है, सांप बहरा है, हंस मरने के पहले गाता है, मगर अपराध करने पर आंसू बहाते हैं,

रीछ के बच्चों की कोई शकल नहीं होती, उनकी माँ उन्हें चाट चाट कर भालू की शकल देती है, कुछ साँपों की पूँछ में डंक होते और यह कि मेंढक के सिर में मणि होता है जो विष का शमन हैं करती है।

इन त्रुटियों के होते हुए भी रामायण के बहुत से अवतरण सच्ची काव्य-भावना से समन्वित हैं जिनकी लोकप्रियता सार्वजनीन है। मुख्य पात्रों का चित्रण भी स्पष्ट और स्थायी है लोग चाहे भरत की निःस्वार्थता, लक्ष्मण के साहस और उत्साह, सीता की पति-भक्ति और आदर्श पुत्र, पति भाई राम की शुद्धता, उदारता और आत्म-बलिदान की चाहे पूजा न करें, फिर भी उनकी सराहना अवश्य करेंगे।

बाद के काण्डों में कथा का प्रवाह अधिक तीव्र है और बहुत सी घटनाओं का केवल संकेत मात्र है। यह एक प्रकार का साहित्यिक दोष है कि कवि अपने रूप को छोड़ कर धार्मिक बन जाता है और प्रचार करता है। राम की स्तुतियाँ जी उबाती हैं किन्तु तुलसीदास का उद्देश्य इनको क्षम्य बना देता है। उपदेशात्मक रूप में कोरा कथन मात्र न करके कवि ने उसके स्थान पर अपनी भक्ति और आत्मा की अमरता आदि के सिद्धांतों को प्राचीन परिचित कथा के बाने में गूँथकर उसमें अपने विचारों को लोकप्रिय बनाने में सभी हिन्दू सुधारकों की अपेक्षा अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। इन सुधारकों का उद्देश्य भी जटिलताओं को सरल बनाकर तत्कालीन दोषों का सुधार करना था। किन्तु उनके प्रचार का एक ही परिणाम हुआ और वह यह कि मतभेद का एक और तत्व जुड़ गया और जिस अव्यवस्था को हटाने की उन्हें आशा थी वह कम होने की जगह और भी बढ़ी। इन सबों में सबसे अधिक विख्यात केवल तुलसीदास ने ही अपनी कोई शिष्य परम्परा नहीं बनायी। वल्लभाचार्य, राधा-वल्लभी, मलूक दासी,

प्राणनाथी आदि तो हैं; किंतु कोई तुलसीदासी नहीं मिलता। फिर भी सारी वैष्णवता पर उनका अधिकार है क्योंकि जिन सिद्धान्तों का उन्होंने प्रतिपादन किया, वे प्रकट या अप्रकट रूप में हर सम्प्रदाय में व्याप्त हो गये हैं और जनता के धार्मिक विश्वास के ठीक केन्द्र बन गये हैं।

(४) एफ. ई. केई—

केई ने अपने हिन्दी साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में तुलसीदास का उल्लेख किया है और अपनी विवेचना के बीच उनका हिंदी-साहित्य में स्थान निर्धारित किया है। रामायण के कलात्मक सौन्दर्य को प्रशंसा करते हुए भी केई का कहना है कि इस ग्रंथ का उद्देश्य चमत्कार न होकर भक्ति के सिद्धान्त का प्रचार है। भक्ति-परक उक्तियों में कवि की भावुकता और उसका आवेश प्रतिविम्बित है।

तुलसीदास का उद्देश्य सुन्दर काव्यात्मक ढंग से चमत्कारी कथा का कहना मात्र न था, प्रत्युत उसे रामोपासना के सर्वोच्च महत्व-प्रचार का माध्यम बनाना था। वैष्णव विचारधारा के अन्य आचार्यों के समान यद्यपि तुलसीदास को वेदान्त का सर्व-वादी सिद्धान्त स्वीकार्य था, फिर भी वह वैयक्तिक ईश्वर की भावना से समन्वित था जिसका उन्होंने रामावतार से तादात्म्य कर दिया था। तुलसीदास द्वारा धार्मिक विवाद और बहुत सी स्तुतियाँ आदि यद्यपि रामायण के साहित्यिक सौंदर्य को कम कर देती हैं, फिर भी उनके काव्य की शक्ति स्पष्ट है। जो लोग तुलसी के धार्मिक विचारों को नहीं स्वीकार करते, वे भी इन स्तुतियों में प्रदर्शित उनके आध्यात्मिक आवेश की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

केई ने वाल्मीकीय रामायण के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहा है कि मानस उसका अनुवाद नहीं है, केवल उसका ढाँचा ही है। लेखक का यह कथन कि तुलसीदास का धार्मिक दृष्टिकोण वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण के रचयिता की मनोदृष्टि के अनुरूप है, युक्तियुक्त ही है।

तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट कृति रामायण है। यह इसी नाम से सामान्यतया ज्ञात है। किंतु तुलसीदास ने स्वतः इसे रामचरितमानस कहा है। कवि ने इसे १५७५ में प्रारम्भ किया। राम की कथा बहुत पहले संस्कृत के कवि वाल्मीकि (४ शताब्दी ई० पू०) द्वारा कही जा चुकी थी और यह उस समय से अनेक भारतीय भाषाओं के कवियों की कथावस्तु रही है। फिर भी यह (रामचरित मानस) संस्कृत काव्य का अनुवाद नहीं है। कथा की सामान्य रूपरेखा तो समान है, किन्तु चित्रण में बड़ा भेद है। सबसे बड़ा भेद दोनों कवियों के धार्मिक दृष्टिकोण का है।

तुलसीदास के धार्मिक दृष्टिकोण के अनुरूप मनोदृष्टि अज्ञात कवि द्वारा रचित संस्कृत के अध्यात्म रामायण में मिलती है जिस का समय १४ वीं शताब्दी ई० से पहले का नहीं है। यह असंभव नहीं है कि यह ग्रंथ तुलसी की रामायण का वास्तविक पूर्वज या पूर्वगामी रहा हो। धार्मिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त दूसरी बातें भी समान हैं फिर भी दोनों काव्यों का सामान्य परिचय भी स्पष्ट कर देगा कि तुलसीदास की कृति काव्यात्मक गुणों में कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी है। संस्कृत के कतिपय पंडितों को छोड़ कर यह आज भी उत्तरी भारत के हिन्दू समाज के सभी वर्गों, धनी, निर्धन, विद्वान और अपढ़ द्वारा समादृत तथा पूजित है, इसे उत्तरी भारत के हिन्दुओं की बाइबिल कहा गया है।

रामायण की एक विशेषता उसका शुद्ध तथा उच्च नैतिक स्तर है। काव्य की इस विशेषता ने पाठकों के समक्ष उच्च नैतिक

आदर्श प्रस्तुत करने में उसके मूल्य और महत्व को बढ़ा दिया है।

यह तुलसी के ही प्रभाव का परिणाम है कि रामायण की भाषा ही रामकाव्य की भाषा बन गयी। लेखक ने कवि के परंपरा-पालन और भाषा के संबंध में कवि की निरंकुशता की ओर भी संकेत किया है, यद्यपि वह तुलसी की काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा भी करता है—

"तुलसीदास ने जिस विभाषा या बोली का प्रयोग किया वह प्राचीन बैसवारी या अवधी है। तुलसी के प्रभाव से यही आज तक राम-काव्य की भाषा रही है। फिर भी तुलसीदास दूसरी बोली विशेषतया व्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा बोलचाल के मुहावरों से आपूर्ण है। छन्द के अनुरूप बनाने में तुलसी को किसी भी शब्द के रूप-परिवर्तन करने या उच्चारण बिगाड़ने में किसी प्रकार का संकोच नहीं है। अन्य भारतीय कवियों के समान वह परम्परागत उपमा तथा रूढ़ मुहावरों का प्रयोग करते हैं; किन्तु ऐसे काव्यस्थल भी बहुत हैं जिनसे तुलसी के प्रकृति-प्रेम तथा प्रकृति-पर्यवेक्षण का स्पष्ट प्रदर्शन होता है

"राम-कथा सात काण्डों में विभाजित है। इनमें से द्वितीय काण्ड सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। पात्रों का चित्रण पूर्वापर अनुरूपता के साथ हुआ है और बहुत से दृश्य गम्भीर भावुकता से सम्पूर्ण हैं। तुलसी की प्रतिभा ने दशरथ-शोक, राम के पितृ-प्रेम, विनम्रता तथा उदारता, सीता की पति-भक्ति, लक्ष्मण के साहस और उत्साह, और भरत की निस्वार्थता का जैसा वर्णन किया है वह अनिवार्य रूप से पाठकों के हृदय में संवेदना जागृत करता है।"

तुलसीदास के जीवन के संबंध में लेखक स्वयं कहता है कि

कल्पनात्मक कथाओं के अतिरिक्त जीवन-संबंधी घटनाएँ बहुत कम ज्ञात हैं। लेखक इस संबंध में सार-रूप में उन्हीं अनुश्रुतियों का इन शब्दों में उल्लेख करता है—

"हिन्दी-साहित्य में सर्वमान्य और सर्वविदित नाम निस्सन्देह तुलसीदास का ही है, जिनको रामायण की ख्याति केवल भारत में सीमित न रह कर समस्त संसार में है। कल्पनात्मक कथाओं के अतिरिक्त उनकी जीवन-सम्बन्धी घटनाएँ भी बहुत कम ज्ञात हैं। उनका जन्म १५३२ ई० के आस पास कहा जाता है और उनके पिता का नाम आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी बताया जाता है। उनका निजी नाम पहले राम-बोला था किन्तु जब वह साधु हो गये तो इन्होंने अपना नाम तुलसीदास रखा। उनका जन्म-स्थान भी निश्चयात्मकता के साथ ज्ञात नहीं है। कुछ लोगों के मतानुसार उनका जन्म हस्तिनापुर में हुआ, दूसरों के विचारानुसार वह चित्रकूट के निकट हाजीपुर है। किन्तु सर्वमान्य परम्परा के अनुसार उनका जन्म बांदा जिले में राजापुर में हुआ। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, नरहरिदास उनके गुरु बताए जाते हैं जो रामानन्द की शिष्य-परम्परा में छठे हैं। तुलसीदास १६२४ में काशी में दिवंगत हुए।"

लेखक की दृष्टि से मानस की सर्वोच्च प्रतिष्ठा उसके उच्च नैतिक स्तर में है। कलात्मकता से समन्वित होकर इसने विश्व-साहित्य में अपना स्थान बना लिया है, और उत्तरी भारत में वैष्णवता के प्रसार में इसका महान योग है।

"रामायण निस्संदेह उच्च कोटि का काव्य है जो विश्व-साहित्य की सर्वमान्य कृतियों के समकक्ष प्रस्तुत किये जाने के योग्य है। इसमें साहित्यिक त्रुटियाँ भी हैं। काव्य-परिमार्जन और छंद-निर्वाह में सूर तुलसी से आगे बढ़ जाते हैं। फिर भी महान् साहित्यिक कृति के रूप में रामायण का अपना स्थान सदैव सुरक्षित है। इसके प्रभाव के महत्व के विषय में कोई अतिशयोक्ति या अतिरंजना नहीं है।

तुलसीदास ने किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की और न उन्होंने हिन्दुत्व की उस शाखा में अपनी ओर से कोई धार्मिक अभिवृद्धि की, जिसमें कि वह दीक्षित थे; फिर भी यह निर्विवाद है कि उत्तरी भारत के अधिकांश हिन्दुओं के बीच वैष्णवता की प्रतिष्ठा में रामायण का अत्यन्त शक्तिशाली योग रहा है।"

(५) एडविन ग्रीव्ज—

एडविन ग्रीव्ज़ ने अपने 'हिंदी के संक्षिप्त इतिहास' में तुलसी की महत्ता स्वीकार की है। उनका कथन है कि तुलसी के प्रामाणिक जीवन-वृत्त के अभाव में भी हम उनके व्यक्तित्व एवं उनकी आत्मा से परिचित हो जाते हैं। वे अपनी कृतियों में आज भी जीवित हैं। फिर भी उन्होंने तुलसी के जीवन का जो संक्षिप्त उल्लेख किया है उसमें अनुश्रुतियों की ही पुनरावृत्ति है। लेखक इसे स्वयं स्पष्ट कर देता है।

"इस महान पुरुष का पूरा जीवन-वृत्तान्त हमें प्राप्त नहीं है, फिर भी इनको वास्तविक और प्रिय व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करनेवाली सामग्री पर्याप्त है। अपनी कृतियों में वह आज भी जीवित और जीवन्त हैं। उनकी जन्म-तिथि अज्ञात है। १६२३ ई० में काशी में वह दीर्घायु होकर मृत्यु को प्राप्त हुए और १५७४ में उन्होंने रामायण की रचना प्रारम्भ की। यह तिथियाँ निश्चयात्मक रूप से मान्य हैं। परम्परा कहती है कि उनको १२० वर्ष की पूर्णायु मिली। इस प्रकार इनकी जन्मतिथि १५०३ ई० ठहरती है। किन्तु व्यावहारिक रूप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वास्तव में उनकी जन्म-तिथि इससे बहुत बाद १५४५ तथा १५५५ के बीच कहीं भी हो सकती है। उनका जन्म कदाचित राजापुर में हुआ। वह ब्राह्मण थे और उनके पिता का नाम आत्माराम

तथा माता का नाम हुलसी था। उनका अपना नाम रामबोला था। उनके गुरु ने उनका नाम बदल कर तुलसीदास रख दिया था। उनके गुरु का नाम नरहरिदास बताया जाता है जिनके साथ वह सूकरखेत में कुछ दिन रहे। यहीं पर उन्होंने गुरु के मुख से राम का वर्णन सुना, जिसका बाद में उन्होंने जीवनपर्यन्त कलात्मकता के साथ गुणगान किया।"

"तुलसीदास ने अपना विवाह किया और उनके एक पुत्र भी हुआ। पत्नी का नाम रत्नावली और पुत्र का तारक बताया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वे अपनी पत्नी को बहुत अधिक चाहते थे, किन्तु उनका विवाहित जीवन अचानक ही समाप्त हो गया। प्रेम के आधिक्य किन्तु औचित्य की न्यूनता पर पत्नी ने भगवत्प्रेम का व्यंगपूर्ण उपदेश दिया। परिणामतः पति घर-बार छोड़ तुरन्त चला गया। राम उसके प्रेम के सर्वस्व बन गये। उपरोक्त स्थल प्रियादास की टीका से लिया गया है जो उन्होंने नाभादास के भक्तमाल में तुलसीदास के ऊपर लिखे गये छप्पय पर लिखी थी।"

पश्चिमी पाठकों को सावधान करता हुआ लेखक कहता है कि मानस को पश्चिमी काव्य की कसौटी पर कसना उचित नहीं है। लेखक तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी की प्रतिभा का आकलन करता हुआ अपना निष्कर्ष इन शब्दों में व्यक्त करता है और कवि के उत्कृष्ट मानव तथा प्रकृति-प्रेम की ओर संकेत करता है—

"लघु कविताओं में चातक-काव्य में तुलसी की काव्य-प्रतिभा, प्रकृति-प्रेम, धार्मिकता बड़े सुन्दर ढंग से निदर्शित है। परम्परानुसार चातक स्वाति की बूँद पर रहता है और दूसरा पानी छूता भी नहीं। कवि अपनी तुलना इसी पक्षी से करता है और राम की समता स्वाति-बूँद से।

"यह काव्य पूर्वीय है, पश्चिमी नहीं। इसलिये अँग्रेजी कसौटी पर इसका कसना ठीक नहीं। भाषा और कल्पनाएँ कभी-कभी आतिशय्य से पूर्ण प्रतीत होती हैं और कभी-कभी जी उबाती हैं, फिर भी तुलसीदास महान कवि हैं। उनका प्रकृति-प्रेम और मानव प्रेम प्रशंसातीत है।

तुलसीदास की कविता के गुणों का उल्लेख करते हुए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उनकी अपनी सीमाएँ भी हैं। एक लेखक ने उनकी तुलना शेक्सपीयर से की है। ऐसी तुलना में अनुपात नहीं है। शेक्सपीयर का दृष्टि-विस्तार मानवता के समान ही व्यापक है जब कि दूसरे का क्षितिज स्पष्ट ही सीमित है। स्त्री-पुरुषों की विभिन्न स्थिति के संबंध और उनका ज्ञान तथा दृष्टि-विस्तार की खोज (दूसरे कवि में) व्यर्थ है। तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ हिन्दू हैं। ब्राह्मणों की महत्ता और हिन्दू कर्मकाण्ड की मान्यता निर्विवाद है। उदात्त गुणों की शिक्षा है, किन्तु परम्परागत रूप बिना तर्क-वितर्क के मान्य ठहराया गया है। इन बातों में तुलसीदास कबीर से पीछे रह जाते हैं यद्यपि वह बहुत बड़े कवि हैं और उनमें जो कोमलता तथा मधुरता है वह इस (कबीर) कवि में सामान्यतया नहीं मिलती।"

कवि के भाषाधिकार का उल्लेख करते हुए लेखक बताता है कि तुलसी भाषा के प्रयोग में पारंगत हैं। उनकी भाषा भावानुवर्त्तिनी है, वे भाषा को जैसा चाहते हैं, वैसा मोड़ देते हैं। कुम्हार की मिट्टी की तरह भाषा उनकी इच्छानुसारिणी है —

"कुम्हार के हाथ की मिट्टी की तरह हिन्दी भाषा, तुलसीदास के अधिकार में थी। कवि के स्पर्श तथा इच्छानुसार यह भाषा अपने रूप-रंग बदलती है। अधिपति के दासों के समान व्याकरण-रचना, शब्द-रूप उनके वशवर्ती हैं। शब्द उनकी आज्ञानुसार अपने रूप को धारण करते हैं तथा घटाते-बढ़ाते हैं

और अपने आत्म-सम्मान को गँवाए बिना बिल्कुल ठीक उपयुक्त स्थान ग्रहण करते हैं।"

रामचरित मानस की विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए लेखक उसकी लोकप्रियता का मूल कारण भी बताता है। इस संबंध में उसका यह कथन युक्ति-युक्त है कि तुलसी ने इस काव्य की रचना जनता के लिए की और वे पुरस्कृत भी हुए। तुलसी जनता के हृदय में आज भी जीवित हैं। वे जनता के कवि हैं।

"रामायण ने तुलसीदास को अमर कर दिया। रामायण की कथावस्तु और उसका सात कांडों में विधान बहुत कुछ वाल्मीकि के संस्कृत काव्य के समान ही है, किन्तु रामचरित उसका अनुवाद नहीं है। इस में १२००० या १३००० पंक्तियाँ हैं। वस्तु-विषय और चित्रण की अनेकरूपता, ओज, लय, भाषा की समृद्धि और सौन्दर्य भक्ति की भावना तथा अन्य दूसरी विशिष्टताओं ने रामायण को हिन्दी-भाषी हिन्दुओं की बाइबिल बना दिया। गोस्वामी तुलसीदास की विनम्रता तथा भक्ति-भावना उनके हिन्दी के सक्षम प्रयोग के साथ इस प्रकार समन्वित हुई कि कोई दूसरा कवि उनके समकक्ष नहीं पहुँच सका। दूसरों ने अधिक विद्वत्ता के साथ लिखा है। तुलसीदास ने पाण्डित्य-प्रदर्शन या विद्वज्जनों के लिये नहीं लिखा। उन्होंने जनता के लिये लिखा और वे पुरस्कृत भी हुए। इंगलैण्ड के किसी भी कवि का जनता से वह संबंध नहीं रहा, जैसा कि इस देश की जनता का तुलसीदास से है। अंग्रेजी साहित्य में केवल रावर्ट वर्न्स की कविताएँ निकटतम उदाहरण के रूप में प्राप्त हो सकती हैं।"

(६) जे० ई० कार्पेंटर—

तुलसीदास के जीवन के संबंध में कारपेंटर का भिन्न कथन

परंपरा पर ही आधारित है। इस संबंध में हमारे पास कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं है।

"कुछ लोग तुलसीदास को केवल हिंदी का अग्रगण्य कवि मानते हैं और दूसरे उत्तर-पच्छिम भारत के ६ करोड़ अधिवासियों के विश्वास का प्रेरक और व्याख्याता स्वीकार करते हुए उनको समग्र एशिया के तीन-चार महान कवियों में से एक मानते हैं। अनुश्रुति उनका जन्म सन् १५३२ में अकबर से दस वर्ष पूर्व हुमायूँ के शासन में बाँदा में बताती है। परम्परा यह भी कहती है कि वह अपने माता-पिता द्वारा परित्यक्त कर दिये गए थे और किसी साधु द्वारा पालित हुए। उन्होंने बहुत से राज्यों और तीर्थों की यात्रा की। इस पर्यटन में उनके 'मानस' पर जंगल की जन-कथाओं, नगर की संस्कृति, दरबारों की शान-शौकत, वैभव और साधुओं के आश्रम की शांति की जो छाप पड़ी उसका आगे चलकर रामचरित मानस में बड़ा भव्य चित्रण हुआ। १५७४ ई० में अयोध्या में उन्होंने 'रामचरित-मानस' की रचना प्रारम्भ की। कई वर्षों के उपरान्त यह कृति काशी में पूर्ण हुई, जहाँ ६१ वर्ष की अवस्था में सन् १६२३ में उनकी मृत्यु हुई।"

कारपेंटर ने 'थीज्म इन मेडिवल इंडिया' में आस्तिकवाद की चर्चा करते हुए तुलसीदास के भक्ति के सिद्धान्तों की विवेचना की है। भक्ति का सिद्धान्त भक्त और भगवान की एकता के घनिष्ठ संबंध पर आधारित है। निम्नलिखित उद्धरणों में इस भक्ति-संबंध की व्याख्या की गई है—

एक अन्तर-कालीन कथा के अनुसार एक भंगी गंदगी के बीच भीषण रोग से ग्रस्त राम-राम पुकार रहा था। राम के लोक को जाते हुए हनुमान ने क्रोध से उसकी छाती पर घात किया। रात में राम की सेवा करते हुए हनुमान को भगवान के शरीर पर उसी स्थल पर भयानक घाव दिखाई पड़ा। हनुमान के पूछने पर

राम ने कहा, "तुमने गरीब आदमी की छाती पर लात मारी जब कि वह मेरा नाम ले रहा था, तुमने मेरे निम्नतम व्यक्ति के लिए जो किया वह मानो मेरे ही ऊपर किया।

"भक्त और भगवान का ऐसा ही घनिष्ठ संबंध है। भक्त भगवान से अलग नहीं है। भक्त और भगवान के इसी घनिष्ठ संबंध को मोक्ष-मार्ग के रूप में सबके लिए—ब्रह्मा से लेकर निम्नतम जीव और भयानक राक्षस तक के लिए—प्रस्तुत और प्रवर्तित करना ही इस राम-कथा का उद्देश्य था। इसमें वाल्मीकि की रामकथा की रूपरेखा तो रखी गई, किन्तु कुछ घटनाएँ हटा दी गईं, कतिपय नए दृश्यों का समावेश हुआ और पूरी कथा पर भक्ति का रंग चढ़ा दिया गया। इसमें हिंदू-धर्म के मूल तत्व तो सुरक्षित हैं ही, शास्त्र और दर्शन सत्य के दो प्रधान स्रोत माने गये हैं। कर्म का सिद्धान्त निर्विवाद रूप से स्वीकृत है।

"पाश्चात्य विद्यार्थी को पौराणिक कथाओं के असंतुलन से क्षुब्ध न होना चाहिये। राम के वीर चरित्र, सीता के पातिव्रत्य, भरत के भ्रातृप्रेम, हनुमान की स्वामिभक्ति, व्यक्तिगत पवित्रता की उच्चता और मोक्षमार्ग के रूप में ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति प्रेम या भक्ति में असंख्य जनता को तीन शताब्दी से अधिक समय से अपने धार्मिक जीवन को पुष्ट करने की सामग्री मिलती रही है।

"अज, अद्वैत ब्रह्म, भक्त के प्रेमवश अवतार लेता है। भक्त को इसी सगुण अवतार का आश्रय है। राम भक्तों के लिए संसार-सागर से पार कराने वाले सेतु हैं, 'भव-सेतु' हैं।

"परब्रह्म अद्वैत, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिशाली है। यही पूर्ण ब्रह्म भक्त के प्रति प्रेम से द्रवित होकर अवतार ग्रहण करता है, यही कवि का महत्वपूर्ण विश्वास और सिद्धान्त है। तुलसीदास का प्रस्थान बिंदु निर्विकार, निराकार, अनन्त ब्रह्म है जो निर्गुण है

और फिर भी सत्व से पूर्ण है, वह इन गुणों की पूर्णता और निराकरण साथ साथ है, वही अज, अद्वैत, गुणातीत ब्रह्म कृपाकर संसार को मोक्ष और आनन्द देने के लिए और मोहलिप्त मनुष्यों के उद्धार करने के लिए 'भवसेतु' बनता है।

"इस अवतार का दृश्यमान संसार से संबंध कहीं तो लोकप्रिय पौराणिक कथाओं के आधार पर व्यक्त किया गया है और कहीं वेदान्त दर्शन की शब्दावली के द्वारा। त्रिमूर्ति की उपेक्षा नहीं की गई है यद्यपि वे राम के अधीन हैं। वे राम के हाथ की कठपुतली हैं।

"माया के सिद्धान्त की विवेचना करते हुए उसके भ्रमात्मक रूप को स्पष्ट किया गया है। राम को छोड़कर सभी माया है। सारा दृश्यमान् जगत् स्वप्नवत् है जिसकी सृष्टि राम की रचनात्मिका शक्ति माया द्वारा हुई है। राम का अनुग्रह उनके सेवकों को इस माया के प्रभाव से बचा लेता है। इस प्रकार दार्शनिक तत्व-चिंतन के स्थान पर भक्ति की अनुभूति प्रधान हो जाती है।

"गुह के दुखी होने पर लक्ष्मण समझाते हैं कि जन्म और मृत्यु, समृद्धि और दरिद्रता, स्वर्ग और, नरक, सब अवास्तविक, भ्रम और माया हैं; हमारा अस्तित्व रात के स्वप्न की तरह है जिसमें सब पड़े सो रहे हैं। वे माया की इस रात को जागकर बिता पाते हैं जो मन, वचन और कर्म से राम के सेवक हैं। यह जागरण एक प्रकार का नैतिक जागरण है जिसमें भक्ति और आचरण की पवित्रता पर विशेष आग्रह है। धन, शक्ति और रूप माया के उपकरण हैं, मोह उसकी सेना का अधिपति है। ब्रह्मा और शिव भी इस माया से डरते हैं, सीता माया और राम की रचनात्मिका शक्ति है। परम सत्ता के रहस्य को छिपानेवाली आवरण मात्र नहीं है किन्तु रचनात्मक शक्ति का प्रकाश पुंज है। कवि की भावना

के बीच दर्शन का रूप ही बदल गया। प्रकृति का वैभव ईश्वर की गरिमा और महिमा का द्योतक बन गया।

"राम के समक्ष संसार उतना ही अवास्तविक है जितना कि शिव और ब्रह्मा। लक्ष्मण द्वारा माया की व्याख्या पूछने पर राम का कथन है कि ईश्वर और जीव (या आत्मा) वास्तव में एक ही हैं। किन्तु अद्वैत का यह सिद्धान्त तुरन्त ही परित्यक्त कर दिया जाता है। योग और ज्ञान की जगह भक्ति ले लेती है—वह भक्ति जो पारस्परिक प्रेम में आबद्ध व्यक्तियों की स्थिति को जोर देकर वास्तविक कहती है जिसे एक का दूसरे में पूर्ण लय या विलय स्वीकार्य नहीं है। ईश्वर की करुणा और दया निर्विवाद रूप से वास्तविक है और जिसे प्रसादरूप इनकी अनुभूति होती है वह भलीभाँति जानता है कि ईश्वर उनका भ्रान्तरूप में उसके (मनुष्य) भ्रममय रूप पर विस्तार नहीं कर रहा है, प्रत्युत वे सच्चा हैं और वह भी सच्चा है।

"इस प्रकार दर्शन हृदय की पुकार के सामने झुक जाता है। रावण के वध के उपरान्त सभी देवता उनकी स्तुति करते हुए भक्ति के वरदान की याचना करते हैं। काकभुशुण्ड भी इस सगुण रूप का दर्शन और भक्ति चाहते हैं और लोमष ऋषि के शाप को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।"

राम के अवतार के कारणों का उल्लेख भी किया गया है और यह बताया गया है कि राम के अवतरण के कारण एक नहीं, अनेक हैं। प्रधान कारण भक्तों पर भगवान का अनुग्रह ही है—

"अवतार का कारण एक नहीं, अनेक हैं। इस विषय में 'इदमित्थम्' नहीं कहा जा सकता। फिर भी भक्तों के प्रति द्रवित होने के कारण, और असत् के विनाश तथा सत् की स्थापना और गाय तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिए वह अवतार लेते हैं। काव्य-परम्परा के अनुसार तुलसीदास ईश्वर के तीन रानियों के चार पुत्रों के रूप

में अवतार लेने की प्राचीन कथा का अनुसरण करने को बाध्य हुए। फिर भी तुलसीदास ने बड़े कौशल से ईश्वरत्व की पूर्णता राम में ही दिखाई। ईश्वर होते हुए भी राम मनुष्य के समान आचरण करते हैं और संसार को मुक्ति प्रदान करते हैं। ईश्वरत्व और मनुष्य रूप में आचरण में जो वैषम्य निहित है, उसकी ओर तुलसीदास बराबर संकेत करते हैं।"

भक्ति यद्यपि केवल भगवान के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है और शिव, ब्रह्मा जैसे देवता भी इसकी याचना करते हैं फिर भी अटल विश्वास और शुद्ध नैतिक आचरण इसके प्रधान साधन हैं। रामायण में भक्ति के इसी शुद्ध नैतिक आचरण पर जोर देकर मनुष्य शरीर को उच्च उद्देश्य की ओर प्रवृत्त करने का उपदेश दिया गया है।

"रामायण इसी विश्वासपूर्ण, प्रेमपूर्ण भक्ति की स्तुति, आदर्श और निदर्शन है। धन, शक्ति, गुण, कर्मकाण्ड की ओर ध्यान न देकर राम केवल इसी भक्ति के संबंध को मानते हैं। यह भक्ति स्वयं ईश्वर का प्रसाद है। ब्रह्मा और शिव भी इसी के लिए प्रार्थना करते हैं। किन्तु इसका वरदान यों ही नहीं मिल जाता। नौ प्रकार के आचरणों के द्वारा नवधाभक्ति, हृदय में जन्म लेती है—सत्संग, रामकथा का गुण-गान, गुरुभक्ति, स्तुति-वंदना, आत्म-संयम, दया, संतोष, परदोष-कथन से विरक्ति आदि। भक्त के लिए संसार को भगवानमय देखना और उसमें पूर्ण विश्वास रखना परम आवश्यक है। पापकर्मों का परिणाम गंभीर होता है। वह ज्ञान-ध्यान या तपस्या से नहीं टल सकता। भक्ति और प्रेम के जल से ही अन्तर का मल छुड़ाया जा सकता है। इस प्रकार तुलसीदास ने व्यक्ति के जीवन में आचरण की शुद्धता और पवित्रता पर बड़ा जोर दिया। मनुष्य का शरीर दुर्लभ है। भगवान ने इसी में अवतार लिया। 'यह मानुषतन' बड़े भाग्य से मिलत

है। राम का अवतार सृष्टि के प्रति उनके असीम प्रेम का प्रमाण है और साथ ही वह आदर्श है जिसकी प्राप्ति के लिए साधक को सदैव यत्नशील रहना चाहिए। राम केवल प्रेम का ही नाता मानते हैं और यही उनको करुणा को जाग्रत करता है।"

इस प्रकार तुलसी के द्वारा भक्ति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया। भगवान के चरणों में आत्म-समर्पण करके भक्त सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। भगवान माता की तरह भक्तों की हित-चिन्ता में लगे रहते हैं। भक्ति को अपनाकर बड़े से बड़े पापी का भी उद्धार हो जाता है।

"इस प्रकार भक्ति-मार्ग वैदिक कर्मकाण्ड और यौगिक साधना से उत्कृष्ट हो जाता है। राम, माता के समान अपने भक्तों की हित-चिन्ता करते हैं। उनका नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण-अवतार दोनों से अधिक शक्तिशाली और उद्धार करने वाला है। बड़े से बड़े पतित को यह साधु बना देता है। जो गर्व और वासना को छोड़ कर राम का नाम लेता है उसे वे अपनी शरण में ले लेते हैं, चाहे वह कितना ही बड़ा अधम और दुष्ट क्यों न हो। राम के बाण से हत सभी राक्षस राम के लोक या मोक्ष को प्राप्त होते हैं। राम के चरणों में अनुरक्त भक्तों पर कलियुग का प्रभाव नहीं पड़ता।

"रामायण भक्ति के सिद्धान्त का प्रचार कर, नीति और धर्म की विजय घोषणा कर रही है। रामायण जीवन को उच्चता की ओर ले जाने वाले शुद्ध सरल एवं सत्य आचरण पर विशेष आग्रह दिखाती है। रामायण की लोकप्रियता और शक्ति उत्तर भारत की सामान्य जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में सफल और समर्थ हुई। इसका श्रेय रामायण के रचयिता तुलसीदास को है।

"यह काव्य धर्म की विजयिनी शक्ति और उसके सौंदर्य का

विस्तृत अन्यापदेश है। राम के निवास के आसपास धर्मपूर्ण मृग और सिंह वैर-विरहित होकर रहते हैं। लंकाकांड में राम उस पवित्र आचरण का वर्णन करते हैं जो संसार को जीतने के लिए अजय रथ बन सकता है। राम के राज्याभिषेक पर दुःख का अन्त हो जाता है और त्रिभुवन में हर्ष छा जाता है। अन्धकार दूर हो जाता है। धर्म के चार स्तम्भ सत्य, शुद्धता, करुणा और उदारता की संसार में स्थापना हो जाती है। लोग राम का गुण-गान करते हैं उनके चरणों में अनुगामिनी भक्ति का वरदान माँगते हैं।

"तुलसी ने महाकाव्य को धार्मिक सत्य के प्रचार का माध्यम बनाकर संक्षेप में यही शिक्षा दी। तुलसीदास ने न बहुत से शिष्य बनाए और न कोई पृथक् मतवाद ही स्थापित किया। उनके उद्देश्य और उनके कार्य को उनकी रचनाओं ने ही पूरा किया। पूर्वी-अवधी का प्रयोग कर उन्होंने अपने विचारों से सबको अवगत करा दिया, रामचरित-मानस हिंदुओं की बाइबिल बन गई। तुलसी के बाद अन्य मधुर गायक और कवि हुए, किन्तु हिंदुओं के विचार, विश्वास और आचरण को नव दिशा की ओर संचालित करने वाले किसी अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का उदय न हुआ।"

(७) डब्ल्यू डगलस पी० हिल—

हिल ने मानस के अंग्रेजी के अनुवाद में भूमिका रूप में तुलसीदास सबंधी अपने विचारों को व्यक्त किया है।

तुलसी के जन्म स्थान के संबंध में हिल ने अनेकानेक सूत्रों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे भक्तसिन्धु और बृहद रामायण माहात्म्य के अनुसार राजापुर के निकट हस्तिनापुर में, कुछ जन-

श्रुतियों के अनुसार चित्रकूट में, जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार तारी में तथा रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार सूकर क्षेत्र या सोरों में पैदा हुए थे। परन्तु इस संबंध में सामान्य परम्परा यह है कि वे राजापुर में पैदा हुए थे। यह स्थान बांदा जिले में यमुना के तट पर बसा हुआ है। उनका जन्म सन् १५३२ में हुआ था।"

तुलसीदास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अन्य लेखकों के समान हिल को भी परम्परा का ही आश्रय लेना पड़ा है, इस सम्बन्ध में लेखक का निम्न कथन अनुश्रुतियों का संकलन मात्र है।

"तुलसी की माँ का नाम हुलसी तथा पिता का आत्माराम था। पिता एक गाँव के मुखिया थे। यह ग्राम यमुना के निकट था जहाँ तुलसी के पूर्वज पत्यौजा ग्राम से आकर बस गये थे। परम्परा के अनुसार तुलसी सरयूपारी ब्राह्मण और पाराशर गोत्र के दुबे थे। अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुए थे। कहते हैं कि इस नक्षत्र में जो पुत्र पैदा होता है उसे उसके माता-पिता छोड़ देते हैं। पिता ने इन्हें राक्षस समझ कर त्याग दिया, परन्तु माता ने पुत्र-प्रेम से प्रेरित होकर उसे एक दासी को दे दिया, जिसका कुछ समय बाद स्वर्गवास हो गया। आत्माराम ने पुत्र लेने से इन्कार कर दिया और उसे भीख मांग कर दिन काटने पड़े। बाद में तुलसी का पालन-पोषण एक रामानन्दी साधु ने किया जिसका नाम नरहरि था।

"तुलसी नाम कदाचित उनके गुरू नरहरि का दिया हुआ है। उनका वास्तविक नाम रामबोला था। उन्हें शेष सनातन जी से वेद-वेदान्त, दर्शन, इतिहास और पुराणों की शिक्षा मिली थी। शिक्षा समाप्त कर वे अपने गाँव वापस आ गये, किन्तु तब तक माता-पिता का कोई चिन्ह न बचा था और वह मकान भी गिर गया था जसमें उनका जन्म हुआ था।

"तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली था और कहा जाता है कि वे उसे बहुत प्रेम करते तथा उसी की बातों से मर्माहत होकर साधु हो गये थे। उनके तारक नाम का पुत्र भी हुआ, किन्तु वह बचपन ही में मर गया। तुलसी ने अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरिकाश्रम, कैलाश, मानसरोवर आदि की यात्रा की। कहते हैं कि चित्रकूट में सूरदास से उनकी भेंट हुई थी। उन्होंने अयोध्या में ३० मार्च १५७४ को रामचरितमानस, लिखना आरम्भ किया।"

तुलसीदास की गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए लेखक ने तुलसीदास का रामानन्द से सम्बन्ध स्थापित कर रामानन्द की उन मूलभूत शिक्षाओं का उल्लेख किया है जिनसे कवि सदैव प्रभावित रहा है।

"तुलसीदास के गुरू नरहरि थे जोकि रामानन्द की शिष्य परम्परा में छठे हैं। यह सम्प्रदाय स्वत: रामानुज का अनुयायी था। रामानुज के श्री सम्प्रदाय से रामानन्द प्रयाग के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परम्परानुसार १२९९ से १४१० ई० का झगड़ा हो गया और वह इस सम्प्रदाय से बहिर्गत कर दिये गये। रामानन्द ने अवधूत संप्रदाय की स्थापना की और ईश्वर के प्रति प्रेम, पड़ौसी के प्रति कर्तव्य और अपेक्षाकृत अधिक उदार भ्रातृ-भावना का प्रचार किया।"

तुलसीदास के दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए सभी विद्वानों ने कवि के धार्मिक समन्वय और सामञ्जस्य-स्थापन के प्रयत्न की महत्ता को स्वीकार किया है। लेखक भी इससे अवगत है और इन शब्दों में बता रहा है कि अनेक कठिनाइयों के बीच भी उसने किस प्रकार उसका दृढ़ता के साथ पालन किया—

"तुलसी स्मार्त वैष्णव थे। कुछ लोगों का मत है कि वाल

कांड का पूर्वार्द्ध, अयोध्याकांड का उत्तरार्द्ध, तथा अरण्यकांड, कट्टर पंडितों की आलोचना के उत्तर में लिखा गया था, जो संस्कृत के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा में की गई रचना को पांडित्य से हीन मानते थे। अरण्यकांड की समाप्ति पर अयोध्या के वैरागियों से झगड़ा हो जाने के कारण वे काशी चले आये, वहाँ उन्होंने ढाई वर्ष से अधिक में पूरा किया। किष्किन्धाकांड के आरम्भ में काशी की प्रशंसा में रचित छंद इसी कारण हैं। काशी में वे क्रमशः हनुमान फाटक, गोल मंदिर और असी घाट पर रहे। इसी घाट पर उनकी बृहस्पतिवार २४ जुलाई, १६२३, को मृत्यु हुई। काशी-वास के काल में उन्हें शैव, वल्लभ मतावलम्बी, मुसलमान आदि सभी परेशान करते थे। तुलसीदास पर वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव का प्रभाव पड़ा था। तुलसी ने संस्कृत के स्थान पर भाषा में रामचरितमानस काव्य लिखना, ३० मार्च मंगलवार सन् १६७५ को आरम्भ किया। इस समय उनकी अवस्था ६२ वर्ष की थी।

"तुलसीदास ने शैव और वैष्णव मतों में सामंजस्य स्थापित करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा। इस प्रकार राम रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना करते हैं। वह उन सबको मुक्ति का वचन देते हैं जो यहां का यात्रा करते हैं। वह यह भी कहते हैं कि जो शिव का द्रोही है वह कभी मेरा दास नहीं हो सकता। काकभुशुंडि को उनके गुरू भी यही पाठ सिखाते हैं।"

हिल ने मानस में समाविष्ट देवी-देवताओं का विस्तार से विचार किया है। लेखक ने विभिन्न देवी-देवताओं का स्वरूप तथा उनके कार्यकलाप का इन शब्दों में वर्णन किया है। यह वर्णन हिंदू-धर्म द्वारा स्वीकृत परम्परा के अनुरूप ही है।

धर्म और दर्शन की विवेचना करते हुए हिल का मत है कि धर्म और दर्शन में तुलसीदास का रामानुज से मतैक्य है

किन्तु उसके साथ यह भी स्पष्ट है कि उनके पूर्ण ब्रह्म और माया के सिद्धान्त का अद्वैत की ओर अधिक झुकाव है और उनकी भक्ति अधिक भावुक और श्री सम्प्रदाय की अपेक्षा कम कर्मकांडी है। उनकी भक्ति पर वैष्णव पुराणों का अधिक प्रभाव है। कवि की उक्तियों के विशेषण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा।

मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए लेखक ने तुलसीदास की भावना का रामानुज की भावना से पार्थक्य प्रदर्शित किया है और यह बताया है कि भक्त होने के कारण तुलसीदास मोक्ष में विलयन को क्यों नहीं स्वीकार करते।

"त्रिमूर्तिः-तुलसीदास परम्परा-प्राप्त ब्रह्म की त्रिगुणात्मक अभिव्यक्ति, ब्रह्मा, विष्णु, शिव को मानते हैं। तीनों अलग अलग अपना काम करते हैं। ब्रह्मा रचयिता हैं, विष्णु पालक, और शिव विनाशकर। शिव को ऊँची उपाधियाँ दी गई हैं, उन्हें भगवान, चिदानन्द, जगदात्मा, जगतजनक कहा गया है। यह कदाचित् इसलिए भी है क्योंकि तुलसीदास शैव और वैष्णव मतों के बीच सामंजस्य स्थापित करते थे और कदाचित हिन्दू उपासना में व्याप्त प्रवृत्ति के कारण फिर भी वह शिव को विष्णु के अधीन ही रखते हैं। विष्णु का उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि मानो वह राम अवतार से अलग हैं, वह राम का विवाह देखते हैं। राम इस त्रिमूर्ति को कठपुतली की तरह नचाते हैं, फिर भी तुलसीदास ने वैष्णव भक्तों की तरह विष्णु को ब्रह्मा और शिव से ऊँचा बताया है जोकि पूर्ण ब्रह्म के साथ एक है। विष्णु के मुख्य अवतार के रूप में राम समस्त शक्ति से समन्वित हैं और राम की स्तुतियाँ इन दोनों में कोई भेद नहीं रखतीं। राम ब्रह्मा और शिव के उपास्य देव कहे गये हैं।

"अन्य देवता—त्रिमूर्ति के अतिरिक्त तुलसीदास हिन्दू देवमंडल के अन्य देवताओं की सत्ता भी स्वीकार करते हैं, किन्तु

उनका कार्य-कलाप इतना सीमित और उनका व्यवहार इतना स्वार्थी है कि कवि उनकी, विशेषतया इन्द्र की, अवमानना करता है। इन्द्र को स्वार्थी और कौवे की तरह चतुर और कुत्ते की तरह बेशरम बताया गया है। अग्नि का आदर किया गया है। वह राम के विवाह के समय, राम और सुग्रीव के मित्र-सम्बन्ध के समय और सीता की अग्नि-परीक्षा के समय साक्षी बनता है।

"ब्रह्मा की स्त्री या शक्ति सरस्वती का वाणी की अधिष्ठात्री के रूप में प्रायः उल्लेख हुआ है जो कवियों की सहायता के लिये आती है और मनुष्यों पर देवताओं की ओर से मत पलटने के लिये आती है। यह शेषनाग तथा दूसरों के समान ही अनिर्वचनीय दृश्यों के वर्णन में अक्षम है। उसकी प्रेरणा के मूल आधार भी राम ही हैं और वह कठपुतली की तरह राम द्वारा नचायी जाती है।

"पार्वती का सम्मान किया जाता है, यद्यपि वह शिव से झूठ बोलने के कारण दण्डित होती है, फिर भी उनका आदर होता है। सीता के समान ही उन्हें जगत-जननी कहा जाता है। किन्तु सर्वोच्च सम्मान विश्व की प्रिया लक्ष्मी के लिये सुरक्षित है। सीता उनका अवतार है। अन्य देवताओं का काम केवल विमान में बैठकर घूमना, महत्वपूर्ण घटनाओं के साक्षी बनना और फूलों की वर्षा करना है। गन्धर्व, किन्नर और अप्सरायें शुभ अवसरों पर गीत गाती हैं और नाचती हैं। राक्षसों में मुख्य विभीषण राम की उच्चता से अवगत हैं और रावण को युद्ध से विरत करने का प्रयत्न करते हैं। विभीषण और त्रिजटा राम के सच्चे भक्त हैं और जो राम के बाणों द्वारा प्राण-त्याग करते हैं, वे उनके लोक या स्वर्ग के अधिकारी हैं।

"राम—राम का विष्णु और ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित किया गया है। वह पूर्ण ब्रह्म के सगुण रूप हैं, मुक्ति के एकमात्र साधन हैं, माया के अधीश हैं। वह प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। कृष्ण के समान वह अपने विश्वरूप को प्रकट करते हैं। शैशव में अपनी माँ को उन्होंने यह रूप दिखाया और काकभुशुण्डि को शिशु के रूप में अपने विश्व रूप का परिचय दिया।

"तुलसीदास जी यह बताने के लिये बार बार चिन्तित हैं कि राम का यह मानव रूप वास्तविक नहीं है—केवल दैवी लीला का प्रदर्शन-मात्र है। लक्ष्मण की मूर्छा पर जब राम शोक प्रकट करते हैं तो तुलसीदास यह कहते हैं कि राम लौकिक मनुष्य का अभिनय-मात्र कर रहे हैं। इसी प्रकार लंका में नागपाश से बंधने पर कवि उनकी तुलना जादूगर से करता है। काकभुशुण्डि उनकी तुलना उस नट से करते हैं जोकि रंगमंच पर अनेक वेश बदल कर आता है किन्तु उसका असली रूप सदा वही रहता है। इस प्रकार अवतार की भावना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बराबर चलती है।

"मोक्ष—मोक्ष की चार कोटियाँ हैं—(अ) सायुज्य अर्थात पूर्ण ब्रह्म में विलय या तादात्म्य। (ब) सारूप्य ईश्वर या देवता के रूप के अनुरूप हो जाना। (स) सामीप्य या देवता का नैकट्य। (द) सालोक्य या देवता के लोक में ही निवास। रामानुज अपने भेद-भक्ति के सिद्धान्त के कारण प्रथम दो प्रकार के मोक्ष को नहीं स्वीकार करते। तुलसीदास इसी भेद-भक्ति का समर्थन करते हैं। यद्यपि अद्वैत की ओर उन्मुख होने के कारण वह जीवन-मुक्ति के लिये इस स्थिति और इस अनुभूति की संभावना को स्वीकार करते हैं। वह कहते हैं कि भेद-भक्ति के कारण ही सर्मद हरि में लीन न हुए। लंकाकाण्ड में दशरथ जब राम से मिलने आते हैं तो वहाँ भी तुलसीदास यही कहते हैं कि दशरथ को मोक्ष इसी लिए

न मिला, क्योंकि उन्होंने भेद-भक्ति में अपना चित्त लगाया था—

तातें उमा मोच्छ नहीं पावा। दसरथ भेद भगति मन लावा।

इससे तादात्म्य की संभावना अपने आप स्पष्ट हो जाती है।

"सामान्य सामाजिक क्षेत्र में तुलसीदास काफी कट्टर थे। गुरू के बाद वह ब्राह्मण की वंदना करते हैं जिनको कि वह भूसुर कहते हैं। सबसे बड़ा पाप जो भुशुण्डि ने किया, वह ब्राह्मण की अवमानना थी। ब्राह्मण प्रत्येक दशा में पूजनीय है।

"तुलसीदास के इस दृष्टिकोण के विपरीत उनका यह सिद्धान्त है कि संसार के सभी जीव, स्त्री-पुरुष, वर्णविहीन, राक्षस और पशु सभी मोक्ष के अधिकारी हैं, यदि वे राम का भजन करें और उनका नाम लें। चंडाल, सबर, खस, यवन, कोल-किरात सभी राम का नाम लेकर पवित्र हो गये। उन्होंने गणिका, गीध, अजामिल और गज को तारा। राम, उनके भाई और वशिष्ठ यद्यपि निम्न जाति के निषाद-गुह के प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं करते फिर भी राम भक्त के रूप में उसके प्रति प्रेम दिखाते हैं। मारीच, कुम्भकर्ण, रावण और राम के द्वारा मारे गये सभी राक्षस स्वर्ग पहुँच जाते हैं। किन्तु गिद्ध और गज का स्वर्ग में समावेश बड़ी कठिनाई से इस सिद्धान्त के अनुरूप हो पाता है कि केवल मनुष्य-योनि में उत्पन्न व्यक्ति ही भविष्य में जन्म लेने से छुटकारा पाकर मोक्ष के अधिकारी हैं।

"माया—तुलसी के माया-संबंधी विचारों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का विचार है कि तुलसी का विचार रामानुज द्वारा शंकर के अद्वैत मायावाद के विरोध के प्रतिकूल नहीं है। अन्य लोगों की यह धारणा है कि कवि काशी के अद्वैत वेदान्तियों से प्रभावित था। यह दूसरी ही विचारधारा अधिक समीचीन ज्ञात होती है। राम माया के पति हैं—मायाधनी, मायाधीश, मायानाथ। सारा संसार उनकी माया के अधीन है। और

यह माया राम के अधीन है। किन्तु इससे वह स्वयं मुक्त हैं। राम इस माया से अपने भक्तों को मुक्त कर सकते हैं। इस माया के द्वारा ही राम सृष्टि की रचना करते हैं। माया का राम की शक्ति सीता के साथ तादात्म्य स्थापित है। वन में जाते हुए राम, सीता और लक्ष्मण की तुलना कवि पूर्ण ब्रह्म माया और जीव से करता है।

"माया शब्द का प्रयोग उस भ्रांति के लिये किया गया है जो कि राम ने मनुष्य या दूसरों को धोखा देने के लिये रची है। माया से ही नारद को धोखा हुआ। माया ने ही सती से झूठ बुलवाया। माया जादू के रूप में भी प्रयुक्त है। राम युद्ध में अपनी ओर से इस जादू का प्रयोग नहीं करते, केवल शत्रु के जादू को तोड़ देते हैं। वह केवल खरदूषण और त्रिसिरा से लड़ाई में माया का प्रयोग करते हैं, जबकि सारी सेना एक दूसरे को राम समझ कर दूसरे का नाश कर देती है। तुलसी के माया-संबंधी विचारों के तीन मुख्य स्थल हैं जिनका अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि तुलसीदास रामानुज के संसार की वास्तविकता के विश्वास की अपेक्षा शंकर की भावना की ओर अधिक उन्मुख हैं। अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण राम से ईश्वर-माया और जीव के भेद को समझाने की प्रार्थना करते हैं। राम कहते हैं कि सभी जीव इस भ्रान्तिपूर्ण विचार के अधीन हैं कि उनकी पृथक् स्थिति है। माया दो प्रकार की है—विद्या और अविद्या। विद्या सृष्टि की रचना करती है और अविद्या लोगों को जन्म-मरण के चक्र में डालती है—

माया ईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव॥

"उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि, गरुड़ को शिक्षा दे रहे हैं। उनके कथनानुसार माया राम की दासी हैं आर उनके अधिकार में है,

किन्तु वे उसके प्रभाव से मुक्त हैं। मनुष्य की दुर्बलतायें-काम, क्रोध आदि इस सेना के सेनापति हैं—

व्यापि रहेह संसार महं माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड॥
सो दासी रघुबीर की समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिन नाथ कहउँ पद रोपि॥

"राम को अज्ञानी मायावश समझते हैं। वास्तव में वह उन लोगों का अज्ञान है। राम के प्रसंग में अज्ञान का लेश भी नहीं हो सकता—

नयन दोष जा कहुँ जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई।
नौका रुढ़ चलत जग देखा। अचल मोहबस आपुहि लेखा॥
हरि विषैक अस मई बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अज्ञान प्रसंगा।
ते सठ हठ वस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं॥

"गरुड़ काकभुशण्डि से भक्ति औरज्ञान के भेद को स्पष्ट करने की प्रार्थना करते हैं। उत्तर देते हुए काकभुशण्डि कहते हैं कि ज्ञान वैराग्य, योग, विज्ञान यह सब पुरुष हैं, किन्तु माया स्त्री है। पुरुष के लिये स्त्री के वश में पड़ जाना स्वाभाविक ही है। इसलिये माया के जाल से बचने के लिये ज्ञान आदि को भक्ति का सहारा लेना पड़ता क्योंकि भक्ति राम की स्त्री है और स्त्री होने के कारण दूसरी स्त्री के जाल में नहीं पड़ती और अपने अनुयायियों को बचा लेती है।

माया भगति सुनह तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानहि सब कोऊ।
पुनि रघुवीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी विचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ता तें तेहि डरपति अति माया।
अस विचारि जे मुनि विज्ञानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

काकभुशुण्डि यह भी कहते हैं कि जीव वास्तव में ईश्वर का अंश है। किन्तु माया के अधीन होने के कारण यह अपने को जड़ तत्व में बँधा हुआ पाता है यद्यपि यह भ्रम है और मिथ्या है। यद्यपि यह ज्ञान के द्वारा अपना उद्धार करना चाहता है किन्तु असम्भव हो जाता है, क्योंकि माया प्रत्येक पद पर विघ्न डालती है। केवल भक्ति से ही उसका उद्धार हो सकता है।

"भक्तिः—भक्ति का मार्ग ईश्वर या सगुण ब्रह्म के प्रति प्रेम का मार्ग है। इसका आधार श्रद्धा है और यह राम के प्रसाद या कृपा से ही प्राप्त हो सकती है और इसी से राम-भक्ति की ओर उन्मुख भी होते हैं। तुलसी की राम भक्ति कृष्ण-भक्ति की अपेक्षा कम सीमित है और यह रामानुज की बौद्धिक और गंभीर भक्ति की अपेक्षा अधिक भावावेश से युक्त है। सुतीक्ष्ण का भावावेश इसका उदाहरण है, फिर भी तुलसीदास द्वारा प्रचारित भक्ति दैनिक व जीवन के कर्तव्यों से विरत नहीं है। भक्ति धार्मिक मनोदृष्टि का आवश्यक तत्व है जिसमें ज्ञान और कर्म अपना अपना काम करते हैं। तुलसीदास रामानुज की अपेक्षा आगे बढ़ जाते हैं जब वह ज्ञान को मुक्ति का साधन स्वीकार करते हैं। उनका केवल यही कहना है कि यह मार्ग अत्यन्त सुगम है।

धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना। ज्ञान मोच्छ पद बेद बखाना।
जा तें वेगि द्रवउं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुख दाई।

"फिर भक्ति के साधन बताते हुए राम लक्ष्मण से कहते हैं कि सबसे बड़ा साधन ब्राह्मण की चरण-भक्ति और अपने कर्तव्य का पालन है—

भगति के साधन कहउं बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती। निज निज धरम निरत श्रुति रीती।
वचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम॥

"कतिपय लोगों को ज्ञान-मार्ग अच्छा लग सकता है किन्तु सच्चे भक्त सगुण ईश्वर में अपने को समर्पित कर देते हैं। काकभुशुण्डि ने इसी प्रकार लोमस ऋषि की अद्वैत शिक्षा को न ग्रहण किया और सगुण उपासना में लगे रहे। काकभुशुण्डि कहते हैं कि ज्ञान और भक्ति में कोई विशेष भेद नहीं है क्योंकि "उभय हरहिं भव संभव खेदा" किन्तु ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार है जिस पर चलना अत्यन्त कठिन है।

"राम की भक्ति या उपासना से मोक्ष अपने आप मिल जाता है।

"इस भक्ति में तुलसीदास सेव्य-सेवक भाव पर विशेष आग्रह दिखाते हैं जिस प्रकार कि स्वामिभक्त सेवक सब-कुछ दे देता है उसी प्रकार भक्त सब-कुछ छोड़कर राम के प्रति अपने को समर्पित कर देता है।

"तुलसीदास साधुओं की प्रशंसा करते नहीं थकते। साधु चन्दन वृक्ष की तरह हैं जोकि काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगंधित बना देते हैं। भक्ति यद्यपि व्यक्तिगत साधना की वस्तु है फिर भी वह सत्संग के बिना नहीं हो सकती है।

"उत्तरकाण्ड में कलियुग का वर्णन किया गया है। कलियुग में केवल भक्ति का ही आधार है। केवल इसी के सहारे मुक्ति मिल सकती है। राम के गुणगान से ही मुक्ति सुलभ है। कलियुग में योग, तपस्या या ज्ञान की आवश्यकता नहीं।

"पूर्वी दृष्टिकोण से काव्य उच्च कलात्मकता की पूर्ण कृति है। पाश्चात्य मनोदृष्टि इसमें प्रशंसा के साथ साथ आलोचना की बहुत सी बातें देखती है। जब कवि प्रचारक बन जाता है और लम्बे दार्शनिक और नैतिक सम्वादों में उलझ जाता है, वह अत्यन्त भावुक मिलन और विदा के वर्णन में पन्ने रँगता है तो पाश्चात्य पाठक ऊब जाता है। फिर भी यह न भूलना चाहिये कि यही स्थल

पूर्वी पाठक को सबसे अधिक प्रिय लगते हैं। इसलिये पूर्वी कला की परीक्षा पाश्चात्य कसौटी पर न होनी चाहिए।

"रामचरितमानस वाल्मीकि का अनुवाद मात्र नहीं है। कतिपय उदाहरणों ारा दोनों का भेद स्पष्ट हो जायगा। संक्षिप्त आरम्भिक परिचय के उपरान्त वाल्मीकि कथा को अयोध्या के वर्णन और राजा दशरथ की पुत्र इच्छा के साथ शुरू कर देते हैं। किन्तु तुलसीदास बहुत की कथाओं के बाद कथा शुरू करते हैं। वाल्मीकि राम की मिथिला-यात्रा को कई कथाओं के वर्णन का अवसर बना देते हैं—सागर और उनके पुत्र की कथा, भगीरथ द्वारा गंगावतरण और सागर-मंथन। तुलसीदास इन कथाओं को छोड़ देते हैं और अपने काव्य में उनका संकेत-मात्र करते हैं। मिथिला में राम के आने पर वाल्मीकि शतानन्द द्वारा विश्वामित्र और वशिष्ठ के विरोध का वर्णन करते हैं किन्तु तुलसी में इसका उल्लेख ही नहीं मिलता। वाल्मीकि में धनुष तोड़ने का दृश्य नहीं है, धनुष राम के पास लाया जाता है और वे तोड़ देते हैं। परशुराम-मिलन वाल्मीकि ने बरात के अयोध्या लौटने के समय दिखाया है। कबन्ध वध का वाल्मीकि में बड़ा विस्तृत वर्णन है, जिसे तुलसी दास कतिपय छन्दों में ही समाप्त कर देते हैं। इसी प्रकार दुन्दुभी अस्थिका जो संकेत तुलसीदास में मिलता है, उसका विस्तृत वर्णन वाल्मीकि ने किष्किन्धा में किया है। तुलसीदास लक्ष्मण के उन उग्र वचनों का उल्लेख नहीं करते जो कि दशरथ के सम्बन्ध में वन-गमन पर उन्होंने कहे, किन्तु जो वाल्मीकि में हैं। इसी प्रकार तुलसी ने सीता के उस विचार का उल्लेख नहीं किया जिसे उन्होंने लक्ष्मण के प्रति यह कह कर प्रकट किया कि लक्ष्मण कदाचित उन्हें चाहते हैं और इसीलिये मृग-वध में राम की सहायता के लिये नहीं जाते। इसी प्रकार राम द्वारा बालि-वध का समर्थन भी नहीं है। अत्यन्त प्रमुख रूप से तुलसीदास ने राम द्वारा सीता

को वन भेजे जाने का उल्लेख नहीं किया है। तुलसीदास सीता की प्रतिष्ठा, रक्षा और कलंक-निवारण में अध्यात्म्य रामायण की युक्ति का सहारा लेते हैं जिसमें कि सीता हरण के पूर्व आग में समा जाती हैं और रावण-वध के पश्चात् फिर अपने असली रूप में आती हैं। वाल्मीकि के वर्णन में राम सीता को रावण के यहाँ रहने के कारण नहीं स्वीकार करते हैं। सीता राम की निन्दा करती हैं और अपने को अग्नि-चिता पर जला देती हैं, किन्तु अग्नि उन्हें वापस कर देती है। राम यह कहते हैं कि उन्होंने सीता की शुद्धता जनता को दिखाने के लिये ऐसा किया। तुलसी दास के उत्तरकाण्ड की वाल्मीकि के इस काण्ड से कोई समानता नहीं। गरुड़ और काकभुशुण्डि का संवाद रामचरित मानस की अपनी निजी चीज है।

"स्त्रियों के प्रति तुलसीदास की मनोदृष्टि की प्रायः आलोचना हुई है। वे स्त्रीत्व के पूर्ण आदर्श को चित्रित करने में समर्थ हैं, फिर भी अनुसूया कहती हैं कि स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र है। पति की सेवा द्वारा ही वह शुभ गति प्राप्त कर सकती है—

सहज अपनावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

"शबरी तथा दूसरे स्त्री-भक्त भी हैं। कौशल्या मातृत्व की पूर्ण आदर्श हैं, फिर भी तुलसीदास के हृदय में स्त्रियों के प्रति ऊँची भावना नहीं है। काव्य के पात्र स्त्रियों के विषय में निन्दनीय वाक्य कहते हैं। नारद के मतानुसार स्त्री अन्धकारमय रात्रि है। बुद्धि, बल, शील, सत्य सब मछली हैं और स्त्री उनको फँसाने वाली बंसी है। सागर का कथन है कि "शूद्र गँवार ढोर पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।" रावण स्त्रियों के स्वभाव के ८ अवगुणों की चर्चा करता है। लक्ष्मण-मूर्छा पर शोक करते हुए स्वयं राम यह कहते हैं कि "सुत वित्त नारि भवन परिवारा, होहि

जांहि जग बारहिवारा" अर्थात स्त्री की हानि कोई बड़ी चीज नहीं है। संक्षेप में तुलसी दास स्त्री को संसार में बड़ा निम्न स्थान देते हैं और उसको पुरुष को फँसाने वाली मानते हैं। यद्यपि वह उनके मोक्ष की संभावना को भी स्वीकार करते हैं यदि वे सीता की तरह सच्चे भक्त के समान राम की उपासना करें और पत्नी रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करें।

"इस लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि राम चरित मानस ३०० वर्ष से उत्तरी भारत की सामान्य जनता का धर्म-ग्रन्थ बना हुआ है। राम के चरित्र और स्वरूप का सौन्दर्य और उनकी उच्च नैतिकता हिन्दुओं की पीढ़ियों के लिये आदर्श उदाहरण और प्रेरणा बने रहे हैं। लक्ष्मण की भक्ति, भरत की निस्वार्थता, सीता की पति-भक्ति-ये सब उन मनुष्यों के हृदय को अपने वश में कर लेते हैं जो इन पात्रों में उस स्वरूप को देखते हैं जोकि उनका अपना होना चाहिये और जो कि वे स्वयं होना भी चाहते हैं। काव्य की लोकप्रियता का दूसरा प्रमाण रामलीला है जोकि उत्तरी भारत के प्रत्येक गाँव व शहर में हर साल होती है और जिस के विषय में कहा जाता है कि इसे तुलसीदास ने शुरू किया था।

"तुलसीदास ने रामचरितमानस को प्राचीन बैसवारी या अवधी में लिखा। इस काव्य में व्रज, बुन्देलखण्डी और भोजपुरी के रूप भी हैं और अरबी तथा फारसी के साठ शब्द हैं। कहा जाता है कि तुलसीदास के हाथ की लिखी रामायण एक समय राजापुर में थी। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व कोई चोर उसे उठा ले गया और जब लोगों ने उसका पीछा किया तो उसने उसे यमुना में डाल दिया। उसमें से केवल अयोध्याकाण्ड ही अच्छी हालत में प्राप्त हो सका। ग्रियर्सन एक दूसरी मौलिक प्रति का उल्लेख करते हैं जो कदाचित मलीहाबाद में है। रामचरित-मानस ने जनता की सहज बोल-चाल की

भाषा में अत्यन्त सरल और शुद्ध सिद्धान्त मुक्ति का संदेश प्रत्येक हिन्दू को दिया। इसने उन लोगों को आशा दिलाई जिन लोगों को अद्वैत मत का ज्ञान करना असम्भव था। इस काव्य ने न केवल आदर्श प्रेम और आचरण का ही प्रदर्शन किया प्रत्युत निम्नतम जाति-बहिर्गत को भी मुक्ति का वचन दिया, यदि वह केवल राम का नाम विश्वास और प्रेम के साथ ले सके।

———

शुद्धि-पत्र

वक्तव्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१३	के अनिवार्य	के लिए अनिवार्य
८	१	उदान्त	उदात्त
९	१	भरी	मरी
१४	२	के इस	के छिन्न-भिन्नता का संकट।
१६	६	कहिअ	करिय
२१	१०	साहिब	साखि
२४	२४	कुजाति के कुजाति के	कुजाति के
२४	२५	बिद्धित	बिदित
२७	१२	कुपरि	कुपीर
,,	२५	मारग मारी	मारग मारि
,,	२६	जारी	जारि
३७	२६	विस्तृत	निसृत
३९	१६	विधान के	विधान
४१	१७	दोनों पूरी	दोनों के पूरी
,,	४	अंतर होते	अंतर न होते
४६	७	मुक्ति	भक्ति
,,	११	स ाइ	सोइ
५०	१३	कारणीय	करणीय
,,	,,	अकारणीय	अकरणीय
५१	२१	वाक्य	वाह्य
५२	२६	विनती	विनति
५९	२०	किया।	किया है।
६०	१८	होंगे	होगा
६१	१०	उनकी	उसकी
,,	१५	बंचक	बेचक
६२	२	के, जिस	के,—जिस
,,	,,	है,	है—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१	कवि	कवि के
”	११	इसी में	इसी से
”	१४	ब्रह्म	ब्रह्मा
६४	३	भावना	भावना भी
६५	१६	है—	है।
६६	१६	विद्वता	विद्वत्ता
७१	६	सुन्दर	"सुन्दर
७१	७	जीवित हैं।	जीवित हैं।
”	१०	दी।	दी।"
”	१५	प्रतिस्पर्धा	प्रतिस्पर्धी
७२	१६	सूत्राधार	सूत्रधार
७६	१०	चाहिए,	चाहिए।
७७	०२	दिया	किया
७८	२०	मानि	मनि
७६	२	वह एक	वह
”	१६	मीप	सीप
८०	५	उठाता	उठाती
”	११	वस ि ति	वस्तुस्थिति
”	”	प ड़ा	पीड़ा
”	१६	रगं	रंग
”	१७	सबोधन	संबोधन
”	१८	कष्टा	कष्ट
”	२०	दरिद्रों का	दरिद्रों की
”	२२	कृपित	कुपित
”	२३	पोपक	पोषक
”	”	निदक	निंदक
८१	४	रक	रंक
८२	४	दिये हैं जो	दिये हैं। जो
”	”	गये हैं।	गये हैं
८२	७	शायद उनका	शायद उनको
”	”	और उनका	और उनको
”	”	सच्च	सच्चे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१०	रहा	रहा।
,,	१३	सर्वांग	सर्वांगी
,,	१४	विशषता	विशेषता
,,	२२	ग्रह्य	ग्राह्य
८७	२०	गहहि	गर्हहि
Title		(रूसी) भूमिका	रूसी भूमिका

तुलसी के मानस की रूसी भूमिका

१	१५	ग्रताप	प्रताप
२	१०	उनके	उसके
५	१०	भई	भइ
१०	५	हैं। जो	हैं जो
१०	८	थ्वी	पृथ्वी
१३	१	द्वाराया	द्वारा पा
१३	६	१३२४	१६२४
२१	७	करता है	करते हैं
,,	२७	दैव	दैवी
२५	२६	अविलम्न	अविलम्ब
२८	१३	अगस्त	अगस्त्य
२६	३	प्रतीकार	प्रतिकार
,,	२३	(जोर से)	जोर से
३२	११	लका	लंका
३३	३	उनका	उनकी
,,	४	उसक	उसके
३४	६	संदश	संदेश
३५	६	दाग़ी	दागों
,,	६	बातचात	बातचीत
३६	४	लेसा	लेता
,,	१३	लौटाने	लौटने
,,	१८	आर	ओर
३७	६	उपास्थित	उपस्थित
,,	१४	उसक	उसका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७	४	स्थित हें	स्थित है
३८	१६	राज्य सिंहासन	राज सिंहासन
३९	१	देते थे	देते
,,	१४	देवी	दैवी
४०	६	विरोधी	विरोध
,,	१७	सामग्रा	सामग्री
४१	१	साथ से	साथ
४२	४	सम्बन्ध	सम्बन्धित
४४	२	पाती	पाता
४५	१३	विलास	बिलास
४६	१६	प्रबन्धात्मक	प्रबन्धात्मकता
,,	,,	प्रभावित हुए	प्रभाव डालते
,,	२५	जिनको	जिनकी
४७	१	देवी	दैवी
,,	६	स्वरूप	रूप
,,	७	है,	है।
,,	११	स्वरूप	रूप
४८	२	है	हैं
,,	२०	वाल्मीकि	वाल्मीकी
,,	२१	भिन्न	भिन्नता
४९	१०	प्रापयँ	प्राप्नोतु
५१	२०	राम	राज
५२	३	करे	केर
५३	२६	पथुराज	पृथुराज
५५	१६	वि शष्ट	विशिष्ट
५८	१६	वष	वर्ष
६०	१३	नीरघर	नीरघर
६१	१०	एक	श्रोक
,,	,,	श्रावा	पावा
,,	११	हियँ	हिय
,,	२४	परिणाम	परिमाण
६२	८	मनसिजु	मनसिज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	४	घनु	घनु
„	२७	वत्त	वत्त
६५	६	समय के	समय की
६६	१३	जीनु	जीन
„	२७	बालविषर्गले	बालविघुर्गले
६७	३	मम्ले	मम्लो
६९	१७	भुता	प्रभुता
७५	१५	कृपाल	कृपालु
७६	३	स्वकं	स्वकां
„	१२	सामान्य	सामान्य ध्वनि
७७	४	पूवंज	पूर्ववर्ती
„	२०	वाह्यत्मक	वाह्यात्मक
७९	४	स्वच्छंता	स्वच्छंदता
„	„	प्राप्त है	प्राप्त हैं
८०	२०	के चे	के ढाँचे
„	२५	परिचर्यात्मक	परिचयात्मक
„	२७	बनाता	बनाती
८४	११	काल	कमल
„	१२	बबुल	बनुल
८५	१	की छलियाँ	की मछलियाँ
„	१९	musselroft	musselraft
„	२६	knass	kvass
८७	३	नहारू लागी	नहारू हि लागी
८९	२३	स्मृद्धिशाली	समृद्धिशाली
९०	१५	अध्यामिकता	आध्यात्मिकता
९०	१६	सामान्यता	सामान्यतया
९१	२०	सैनी	लेनी
९४	२०	धमो	धर्मो
९८	२७	मनहु	मानहु
१००	४	मामप्रव	मामव
१०१	८	देव	दिव
„	१६	भयउ	उयउ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	१२	यह	मह
१०५	२१	प्रदर्शन	प्रदर्शित
”	२५	भरमारथ	परमारथ
१०६	६	अविद्या सोउ	अविद्या दोऊ
१०९	१२	समुर्झहि	समुझहि
	१४	प्रपेट	प्रगट
”	२१	सके	सकई
	२२	आसृत	आस्रित
११०	१४	सामान्यता	सामान्यतया
	१६	स्रति	स्तुति
”	२५	भगतवर	भगत नर
१११	१२	जानहि	जानहि
१११	१३	होई	होइ
११२	२४	सोहित	सोहति
११३	२६	पारमाथक	परमार्थिक
११५	५	तिथ्रि	थिति
”	२५	मुक्त	युक्त
११८	६	होता	होती
”	१३	मम	अन
१२०	१०	सत्	तत्
१२४	१६	हरष	हरषे
१२६	२०	कपालं	कृपालं
	२२	प्रकष्टं	प्रकृष्टं
	२३	सज्जदानन्द	सज्जनानन्द
१२७	९	अदग्र	अदभ्र
	१६	जनु	जन
१२८	२७	रूप	रूप से
१३१	२०	करहि	करहि
१३४	१६	पुनरावृत्त	पुनरावृत्ति
१३५	६	हनहि	इनहि
१३८	१५	ज्ञन	ज्ञानी
१३९	११	तप	तप मखध्याना बैठि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	१७.	लीन्हि	लीन्ह
१४०	२	छघा	छुधा
१४२	६	उनक	उनका
१४३	१२	में द	में छंद
१४८	११	का भिन्न	से भिन्न
१५०	१६	मध्ययुगीय	मध्ययुगीन
”	२४	सामविधान	साम्यविधान
”	२७	परिवेक्षण	पर्यवेक्षण
१५१	१६	दुःख-सुख से	दुःख सुख में
१५२	३	अस्पष्ट	अस्पृष्ट
”	१२	बर्बस आता है	बरवस आता है
१५३	३	शब्द को	शब्द का
१५४	६	वेश	आवेश
१५७	१५	नेतिकता	नैतिकता
१५६	१०	की	के
”	१६	भाग	भोग
”	१०	इस्पेंसर	स्पेंसर
१६४	२३	विम्रता	विनम्रता
१६५	५	जिनका	जिनकी
१६६	१५	इनकी	इनको
१६६	२६	भिन्न	निम्न
१७२	६	ही है	ही हैं
”	७	याग	योग
	६	कहता	कहती
	१०	स्वीकाय	स्वीकार्य
१७३	१०	आर	और
	१२	इश्वर	ईश्वर
१७३	१४	सच्चा	सच्ची
१७४	६	भौतिक	नैतिक
	२०	विरक्ति	विरति
१७६	२	बेर	बैर
	८	अनुपायिनी	अनपायिनी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	११	दा	दी
१७८	२	उसे	उससे
१७९	८	गोल	गोपाल
	१९	का यात्रा	की यात्रा
	२४	का इन शब्दों में	का
१८०	५	विशेषण	विश्लेषण
	२२	एक है	एक हैं
१८१	१५	उनका	उनकी
	,,	अवतार है	अवतार हैं
१८२	२५	समंद	सरभंग
१८४	४	जाते राम	जाते हुए राम
	१३	कर दूसरे	कर एक दूसरे
	२६	हैं	हं
१८५	६	बिन	बिनु
	७	माया वश	माया के वश
	१३	भहै	अहैं
	२०	पड़ता	पड़ता है
१८६	९	की ओर	की ओर लोग
१८७	३	लोमस	लोमश
१८८	२	पर होनी	पर न होनी
	३	नहीं ।	नहीं है
	४	रा	द्वारा
	७	की कथाओं	सी कथाओं
	२२	किष्किन्धा	किष्किन्धा में
१८९	२४	ढोर	ढोल
१९०	२७	बालचाल	बोलचाल की
१९१	३	ज्ञाव करना	ज्ञान प्राप्त करना